जिज्ञासा

साम्प्रदायिकता

भारत में साम्प्रदायिकता

इतिहास और अनुभव

असगर अली इंजीनियर

साम्प्रदायिकता

जिज्ञासा

साम्प्रदायिकता पर यदि उसके तमाम आवरणों को हटाकर नजर डाली जाय तो भीतर एक बेहद संकुचित, भयाकुल, स्वार्थी, भ्रामक, अतीतग्रस्त अन्तर्वस्तु मिलेगी। ये आवरण क्या हैं? साम्प्रदायिकता के पास धर्म का स्वाभाविक कवच तो होता ही है, वह संस्कृति, भाषा, राष्ट्र, सभ्यता, कौमियत को भी मौके के मुताबिक बतौर खोल इस्तेमाल करना जानती है। पर लालच और लम्पटता के हथियार से चलायी जाने वाली साम्प्रदायिक मुहिम न सहज मानवीय समीकरणों से ताल-मेल हासिल कर पाने में समर्थ है और न वैज्ञानिक जांच की तर्क-पद्धति का सामना करने में।

हिन्दुत्ववादियों ने मुस्लिम इतिहास, मुस्लिम जनसंख्या, मुस्लिम आतंकवाद एवं मुस्लिम व्यवसाय के मनचाहे घालमेल से ऐसा भस्मासुर गढ़ना चाहा है जो हिन्दुओं में भय, घृणा एवं अविश्वास को व्याप्त रखे। ताकि इस भस्मासुर से हिन्दुओं को अभयदान के लिए 'हिन्दू राष्ट्र' द्वारा 'मुस्लिम उपनिवेश' को समय समय पर उसकी औकात दिखायी जा सके। असगर अली इंजीनियर का आग्रह इस परिघटना को समग्रता में देखने का रहा है। स्वतंत्र भारत में हुए बहुत से साम्प्रदायिक दंगों को उन्होंने अपने अध्ययन का विषय बनाया है और उन आंकड़ों के आधार पर सटीक निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं।

प्रथम संस्करण, मई 2003
द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण, जनवरी 2004
पुनर्मुद्रण : 2007

प्रकाशक
इतिहासबोध प्रकाशन
बी-239, चंद्रशेखर आजाद नगर
इलाहाबाद-211004
दूरभाष : 0532/2546769

467, सेक्टर 9, फरीदाबाद, हरियाणा
दूरभाष : 0129-5007467

लेज़र टाइपसेटिंग
उमेश लेजर प्रिंट्स
शाहदरा-110 032

मुद्रक
अर्पित प्रिंटोग्राफर्स
बी-7, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर
दिल्ली-110 092

आवरण :
अशोक लवासा

मूल्य : **75 रुपये**

भारत में साम्प्रदायिकता
इतिहास और अनुभव

असगर अली इंजीनियर

अनुवाद
सुभाष चन्द्र

साहित्य उपक्रम

वे
पेड़ नहीं
शाखा लगाते हैं

—राजीव रंजन

अनुक्रम

अनुवादक की ओर से

साम्प्रदायिकता सत्तासीन तबकों के लिए एक राजनीतिक हथियार है। समाज में दो तरह की राजनीति होती है। एक राजनीति लोगों को जोड़ती है, लोगों का भाईचारा मजबूत करती है। दूसरी, लोगों की समन्वयता को तोड़ती है, उनमें फूट डालती है। पहली राजनीति लोगों में मौजूद समान बिन्दुओं को उजागर करती है; दूसरी राजनीति चालाकी पूर्ण शब्दाडम्बर प्रयोग करके लोगों में व्याप्त धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र, भाषा, नस्ल आदि की विविधताओं को अनिवार्यतः परस्पर विरोधी होने का भ्रम फैलाती है। यह राजनीति अर्धसत्यों व तथ्यों को तोड़-मरोड़कर चलती है। इतिहास को, संस्कृति को, धर्म को साम्प्रदायिक रंग देकर प्रस्तुत करती है और एक से दूसरे के प्रति संदेह, अविश्वास एवं घृणा का प्रचार करती है। पहली किस्म की राजनीति लोगों को धर्म, जाति, क्षेत्र, भाषा व नस्ल आदि की सीमाओं को लांघकर बृहत्तर समाज से जोड़ती है, वर्तमान में मौजूद शोषण व अत्याचार से छुटकारा पाने के लिए समाज में परिवर्तन के लिए मानव एकता की बात करती है। दूसरी राजनीति परिवर्तन व सीमाओं को लांघने के बजाए 'जैसा है वैसा ही रहे' और अपनी सीमाओं के खोल में गर्व महसूस करने को प्रेरित करती है। 'जैसी है वैसी बनी रहे' की स्थिति में उस वर्ग को लाभ होता है जिसका समाज में प्रभुत्व है यानि साधनों पर कब्जा है। प्रभुत्वशाली वर्ग प्रचार-माध्यमों का सहारा लेकर लोगों में इतनी घृणा फैला देता है कि इन्हें आपस में स्वाभाविक दुश्मन की तरह प्रस्तुत कर देता है। भारत में अंग्रेजों ने इस 'फूट डालो राज करो' की नीति का सहारा लेकर अपना राज्य चलाया और अपनी मदद के लिए साम्प्रदायिक शक्तियों की मदद ली। स्वतन्त्रता के बाद भी वैसे ही स्वार्थ भारत में साम्प्रदायिकता फैला रहे हैं।

साम्प्रदायिकता के तौर-तरीकों में बहुत बदलाव आया है। साम्प्रदायिकता ने अब पूरा राजनीतिक दर्शन गढ़ लिया है। इसने फासीवाद व तानाशाही को अपना राजनीतिक लक्ष्य बना लिया है। साम्प्रदायिक दृष्टि से परम्परा की, इतिहास की, धर्म की, संस्कृति की, यहां तक कि अर्थव्यवस्था की भी व्याख्या होने लगी है

जो भारत के धर्मनिरपेक्ष-लोकतान्त्रिक राज्य के लिए तथा विविधतापूर्ण समाज के लिए, साझी संस्कृति के लिए, उदार व मानवतावादी धर्म के लिए खतरा है। भारत की एकता व अखण्डता के लिए तथा समाज के विकास व शान्ति के लिए चुनौती बनी साम्प्रदायिकता को समग्र में समझना आवश्यक है।

हिन्दी भाषी क्षेत्रों में साम्प्रदायिकता जब तब हावी होती रही है लेकिन इसको समझने के लिए हिन्दी में खोज पूर्ण वैज्ञानिक साहित्य का अभाव है। असगर अली इंजीनियर की इस पुस्तक को हिन्दी में अनुवाद करने के पीछे यही कारण रहा है कि साम्प्रदायिकता को समग्र दृष्टि से ऐतिहासिक सन्दर्भों में समझने वाला साहित्य हिन्दी में हो। पुस्तक में लेखक ने साम्प्रदायिकता को मध्यकाल, अंग्रेजी शासन, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, स्वतन्त्रता के बाद की सामाजिक स्थितियों में समझा है। स्वतन्त्रता के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों का विशेष अध्ययन किया है। भारत में साम्प्रदायिकता को समझने के लिए यह पुस्तक बेहद जरूरी है। अनुवाद में श्रीमती विपुला, डॉ. राजवीर पाराशर, श्री पवन शर्मा व श्री अशोक गर्ग ने बहुत अधिक मदद की है। उनके सक्रिय सहयोग के बिना यह कार्य असम्भव-सा होता।

मैं श्री विकास नारायण राय का आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित करने व लोगों तक पहुंचाने में उत्सुक भूमिका निभाई। उनकी कल्पनाशक्ति व सहयोग के बिना यह इस रूप में सम्भव नहीं थी। आशा है पुस्तक हिन्दी-पाठकों के लिए महत्त्वपूर्ण होगी।

—डॉ. सुभाष चन्द्र
मारकण्डा नैशनल कॉलेज
शाहाबाद (मा.), कुरुक्षेत्र

भूमिका

साम्प्रदायिकता जटिल परिघटना है। इसे सिर्फ समसामयिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों में ही नहीं समझा जा सकता। इसकी एक ऐतिहासिक मध्यकालीन एवं आधुनिक पृष्ठभूमि है। इसे समूचे तौर पर समझने के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। टुकड़ों-टुकड़ों में इसे नहीं समझा जा सकता। साम्प्रदायिक शक्तियां अपने आजकल के कृत्यों को वैधता प्राप्त करने के लिए जड़ें मध्यकाल में तलाशती हैं। जैसे बाबरी मस्जिद पर इस आधार पर दावा किया गया कि विदेशी आक्रांता बाबर ने उस स्थान पर स्थित रामजन्म भूमि मंदिर को 'गिरा' दिया था। साम्प्रदायिक शक्तियां यह भी मानती हैं कि मुस्लिम शासन हिन्दुओं पर अत्याचार और अपमान का युग था। उनका कहना है कि आज जब हिन्दुओं के पास राजनीतिक एकाधिकार है तो उन्हें बदला लेना चाहिए।

यह भी कहा जाता है कि अधिकतर मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं के मन्दिर गिराए और उन पर मस्जिदें बनवाई। जिन्होंने भी सुल्तानों और मुगल शासकों के खिलाफ विद्रोह किया वे वीर हैं और उनको राष्ट्रीय नायकों की संज्ञा दी गई। इस तरह राणा सांगा, राणा प्रताप, शिवाजी और उन जैसे इस श्रेणी में हैं। उनको इस तरह प्रस्तुत नहीं किया गया कि वे अपनी राज-सत्ता के लिए लड़ रहे थे, बल्कि उन्हें मुस्लिम शासन से हिन्दुओं की स्वतन्त्रता के लड़ाकों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

यह इतिहास के प्रति सरलीकृत दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार शासक धर्मों के आधार पर बंटे हुए थे न कि अपने राजनीतिक मंतव्यों से। यह माना जाता है कि सभी मुस्लिम शासक स्वभाव से दुराचारी थे और उनका धर्म उन्हें कट्टर, उग्र और हिंसक बनाता था। इसी तरह सभी हिन्दू शासक सहनशील व दयालु थे और वे 'धर्म' से मार्गदर्शन लेते थे। यह भी माना जाता है कि भारतीय इतिहास में 'हिन्दू काल' स्वर्ण युग था और पतन मुसलमानों द्वारा सत्ता प्राप्त करने के बाद ही शुरू हुआ।

दूसरी ओर मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादी मानते हैं कि मुस्लिम काल भारतीय

इतिहास का स्वर्ण युग है, मुसलमानों के आने से पहले अंधकार था और भारतीय भद्दे और असभ्य थे। मुसलमानों ने उनको सुसभ्य और सुसंस्कृत बनाया। इस श्रेणी के मुसलमान इतिहासकारों ने काफिरों को नीचा दिखाने के लिए मुस्लिम शासकों को महिमामंडित किया।

इतिहास में 'स्वर्ण युग' की आवधारणा ही गलत है। इतिहास का कोई भी काल हिंसा और द्वन्द्व से रहित नहीं होता और कोई शासक पूरी तरह अच्छा या पूरी तरह खराब नहीं होता। इसके साथ ही यह भी समझना चाहिए कि किसी ऐतिहासिक शासक का व्यवहार धार्मिक विश्वासों से नहीं, बल्कि उसके अन्य स्वार्थों से तय होता है। यहां तक कि महमूद गजनवी और औरंगजेब जैसे शासकों को भी महज धार्मिक विश्वासों से प्रेरित मानना गलत होगा। लगभग सभी शासक–हिन्दू या मुसलमान–चाहे किसी भी धर्म से हों प्रथमतः अपने राजनीतिक हितों से प्रेरित होते हैं। उनके धार्मिक विश्वास या तो कोई महत्त्व नहीं रखते या फिर गौण होते हैं। अन्ततः जो बातें उनके व्यवहार को तय करती हैं वे राजनीतिक हित हैं।

सच्चाई यह है कि प्रायः एक शासक ने दूसरे धर्मों के शासकों से गठबन्धन किए बिना शासन नहीं किया, इस तथ्य को भी अनदेखा किया जाता है। मुस्लिम शासकों का राजपूतों या मराठों से गठबन्धन रहा और हिन्दू विद्रोहियों ने मुगलों या अन्य राजवंशों को पठानों या अन्य मुसलमानों से मिलकर चुनौती दी। इस तथ्य को भी अनदेखा किया गया कि एक ही धर्म से सम्बन्धित शासक एक-दूसरे से उसी तरह लड़ते थे जैसे कि विभिन्न धर्मों के शासक। बाबर व इब्राहिम लोधी के बीच और शेरशाह सूरी व हुमायूं के बीच लड़ाई हुई। यही नहीं बल्कि एक बेटा अपने पिता के खिलाफ लड़ा जैसे सलीम अपने पिता अकबर से और खुसरो अपने पिता जहांगीर से। औरंगजेब अपने पिता को कैद करके और भाइयों की हत्या करके सत्ता पर काबिज हुआ। इसी तरह सत्ता के लिए संघर्ष में धर्मों से इतर भी गठबन्धन बने। यह भी विख्यात है कि महमूद गजनवी की सेना में हिन्दू भी थे। इसका एक सेनापति तिलक नामक ब्राह्मण था। जब उसने सोमनाथ पर हमला किया था तो उसके साथ मुस्लिम सेना के साथ हिन्दू सेना भी थी। जब बाबर ने इब्राहिम लोधी पर हमला किया तो राणा सांगा बाबर के साथ था और जब अकबर राणा प्रताप के विरुद्ध लड़ा तो राजा मानसिंह अकबर की ओर था और हाकिम खान सूर राणा प्रताप की ओर। यह हाकिम खान सूर था जो हल्दी घाटी की रक्षा कर रहा था। इसी तरह जब औरंगजेब और शिवाजी में युद्ध हुआ तो मिर्जा राजा जयसिंह औरंगजेब की सेना का सेनापति था और शिवाजी के तोपखाने का मुखिया एक पठान था। दोनों समुदायों के साम्प्रदायिकतावादी इतिहास के इन तथ्यों को अनदेखा करते हैं।

एक और बात देखने की यह है कि साम्प्रदायिक इतिहास लेखन निहित

दृष्टिकोण लेकर चलता है। उदाहरण के लिए, हिन्दू साम्प्रदायिकतावादी कुछ मुस्लिम शासकों द्वारा मन्दिर तोड़ने के उदाहरण देते हैं लेकिन हिन्दुओं और बौद्धों ने एक-दूसरे के पूजा-स्थल तोड़े हैं, उनके बारे में चुप हैं। काश्मीर के बौद्ध राजा हर्ष ने हिन्दू मन्दिरों को योजनाबद्ध ढंग से तोड़ा और मूर्तियों को गलियों में घसीटा। उसने मन्दिरों को तोड़ने के लिए अधिकारी की नियुक्ति की जिसका नाम 'देवोत्पदनायक' रखा। इसी तरह बहुत से हिन्दू शासकों ने बौद्ध मन्दिरों को नष्ट किया। पाटलीपुत्र के हिन्दू शासक ने, जहां महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था, बोधिवृक्ष कटवा दिया और उस जगह एक हिन्दू मन्दिर बनवा दिया। इसी तरह हिन्दू राजाओं ने जैन मन्दिरों को भी नष्ट किया। यह भी अनदेखा किया जाता है कि औरंगजेब और महमूद गजनवी जैसे मुस्लिम शासकों ने मस्जिदें भी तुड़वाईं। महमूद गजनवी ने सोमनाथ पर हमला करने से पहले लाहौर के हिन्दू राजा के साथ मिलकर मुल्तान में कई मस्जिदें नष्ट कीं। औरंगजेब ने जब गोलकुण्डा के आदिलशाही शासक पर हमला किया तो उसने भी एक मस्जिद तुड़वाई। यह भी अनदेखा किया जाता है कि औरंगजेब ने बनारस, उज्जैन आदि मन्दिरों को 'जागीरें' दी थीं।

इस तरह का एकतरफा और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण इतिहास को केवल तोड़ता-मरोड़ता ही नहीं बल्कि धार्मिक भावनाओं को भी बढ़ावा देता है। साम्प्रदायिक राजनीतिज्ञ भी साम्प्रदायिक आधार पर मतदाताओं को अपने पीछे एकत्रित करने के लिए इसे एक शक्तिशाली हथियार के तौर पर प्रयोग करते हैं। जरूरी है कि इतिहास को भी दूसरे समाज विज्ञानों की तरह एक विज्ञान माना जाए और इसे समझने के लिए एक सटीक पद्धति विकसित की जाए। इसे धार्मिक, साम्प्रदायिक या संकीर्ण-मतों से ऊपर उठकर समग्रता में समझा जाना चाहिए। साम्प्रदायिकतावादियों को अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए इतिहास के अपहरण की छूट नहीं मिलनी चाहिए।

II

यहां यह प्रकाश डालना भी महत्त्वपूर्ण है कि साम्प्रदायिकता आधुनिक परिघटना है, मध्यकालीन नहीं। सार रूप में, यह अंग्रेजी काल की उत्पत्ति है। इसके अनेक कारण हैं। अंग्रेजों ने फूट डालो और राज करो की नीति अपनाई और हिन्दू-मुसलमानों में तनाव पैदा किया, जो इस स्तर पर पहले कभी नहीं था। असल में अंग्रेज 1857 के 'विद्रोह' (स्वतन्त्रता-संग्राम) के दौरान हिन्दू-मुस्लिम एकता से भयाक्रांत थे, जब हिन्दुओं-मुसलमानों ने बहादुरशाह जफर को अपना नेता घोषित किया था।

अंग्रेजों ने इतिहास लेखन के लिए इलियट और डाऊसन की सेवाएँ लीं और उन्होंने फारसी से चुनिन्दा स्रोतों का अनुवाद करके ऐसी सामग्री मुहैया करवाई

जो यह सिद्ध करती थी कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच शाश्वत लड़ाई है। इन दो अंग्रेज इतिहासकारों ने प्रारम्भिक भारतीय इतिहास लेखन को काफी प्रभावित किया। अंग्रेजों द्वारा इतिहास का 'हिन्दू', 'मुस्लिम' और 'अंग्रेजी' के रूप में काल-विभाजन धूर्ततापूर्ण था। ऐसे काल-विभाजन में पहले के युगों की पहचान धर्मों से की गई जबकि अपने काल को उन्होंने राष्ट्रीयता से पहचाना।

साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति का कारण राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में संरचनागत बदलाव भी है। औपनिवेशिक राजनीति और अर्थव्यवस्था ने सामन्ती राजनीति और अर्थव्यवस्था की जगह ली। सामन्ती अर्थव्यवस्था और राजनीति दोनों प्रतिस्पर्धात्मक नहीं थीं। सामन्त-काल में सत्ता तलवार के बल पर प्राप्त की जाती थी, जबकि आधुनिक लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रतिस्पर्धात्मक मतपेटी से प्राप्त की जाती है। इसी तरह सामन्ती अर्थव्यवस्था प्रतिस्पर्धात्मक नहीं थी क्योंकि उत्पादन मुख्यतः स्थानीय उपयोग के लिए होता था, आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तरह व्यापक बाजार के लिए नहीं। औपनिवेशिक राजनीति और अर्थव्यवस्था प्रतिस्पर्धात्मक थे। आंशिक रूप से इस प्रतिस्पर्धात्मक राजनीति और अर्थव्यवस्था ने साम्प्रदायिक परिघटना को जन्म दिया।

अंग्रेजों ने अत्यधिक नियंत्रित लोकतांत्रिक प्रणाली लागू की जिसने दो प्रमुख सम्प्रदायों—हिन्दू और मुसलमान—के अभिजात वर्गों में प्रतिस्पर्धा की भावना उत्पन्न की। इस तरह 19वीं शती के '70 के आरम्भ में जब अंग्रेजों ने स्थानीय स्वशासन बिल प्रस्तुत किया तो 19वीं शती के मुसलमानों की आधुनिक आवाज सर सैयद ने इसका विरोध यह कहकर किया कि लोकतन्त्र भारत के अनुकूल नहीं है और यह भारत के दो प्रमुख सम्प्रदायों में प्रतिस्पर्धा को जन्म देगा।

लोकतान्त्रिक उपायों के लागू करने से सत्ता के बंटवारे को लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों में द्वन्द्व पैदा हुआ। मुस्लिम अभिजात वर्ग ने कुछ निश्चित हिस्से की मांग की जिसका हिन्दू अभिजात वर्ग ने विरोध किया और यह सवाल देश के विभाजन तक नहीं सुलझाया जा सका। इस तरह दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्गों में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा बढ़ी और इसने भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया। इसी तरह अंग्रेजी शासन में नौकरी पाने की प्रतिस्पर्धा ने भी साम्प्रदायिक भावनाएं बढ़ाईं। अंग्रेजी शासकों ने प्रशासन के शीर्ष स्तरों पर अंग्रेजी भाषा लागू करके और जिला स्तरों पर फारसी लिपि में लिखी गई उर्दू या देवनागरी लिपि में हिन्दी को लागू करके फारसी को हटाया। उत्तर प्रदेश के गवर्नर के परिपत्र ने जिला स्तर की सरकारी नौकरी के आकांक्षी के लिए देवनागरी लिपि में हिन्दी और फारसी लिपि में उर्दू भाषा का ज्ञान अनिवार्य कर दिया। इसने हिन्दू और मुसलमान दोनों में प्रतिरोध पैदा किया। हिन्दुओं ने कहा कि देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी प्रशासन की भाषा होनी चाहिए तो मुसलमानों ने कहा कि फारसी लिपि

में लिखित उर्दू होनी चाहिए। इस तरह नौकरी प्राप्त करने के माध्यम के रूप में भाषा ने हिन्दू और मुस्लिम अभिजात वर्ग में अलगाव पैदा किया।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि साम्प्रदायिकता धार्मिक परिघटना नहीं है, लेकिन यह एक धर्म को मानने वाले समूह के स्वार्थों से जुड़ी है। इसमें कोई मतों के सवाल पर द्वन्द्व नहीं होता बल्कि सांसारिक हितों का द्वन्द्व जुड़ा होता है। अक्सर अभिजात समूह धर्म को आस्था के लिए नहीं बल्कि वैधता के लिए लेता है। 19वीं शताब्दी से ही साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति शिक्षित मध्यवर्ग के हितों के द्वन्द्व से हुई है न कि आम जनता के। यह भी ध्यान रखना रोचक होगा कि सर सैयद अहमद खान ने उच्चवर्गीय मुस्लिम अभिजात के हितों का प्रतिनिधित्व किया और मुस्लिम आम जनता के हितों से अपने को दूर रखा। ये मौलाना कासिम अहमद गंगोही, रशीद अहमद ननोत्वी और अन्य रूढ़िवादी उलेमा थे जो कि मुसलमान जनता के सम्पर्क में थे और उनके हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। इन रूढ़िवादी 'उलेमाओं' ने पूर्णतः और बिना कोई समझौता किए अंग्रेजी शासन का विरोध किया क्योंकि इंग्लैण्ड में उत्पादित वस्तुओं ने यहां के आम मुसलमानों को दफन कर दिया था और 'उलेमाओं' को उन शक्तियों से वंचित कर दिया था जो मुस्लिम शासकों ने उनको शरीयत अदालतों के रूप में दी थीं।

1885 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनी तो सर सैयद अहमद खान ने मुसलमानों को इससे दूर रहने की सलाह दी जबकि कासिम अहमद ननोत्वी के नेतृत्व में रूढ़िवादी उलेमाओं ने इसमें शामिल होने की सलाह दी और हिन्दू भाइयों के साथ मिलकर अंग्रेजी शासन के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया। इतना ही नहीं, बल्कि मौलाना ननोत्वी ने इस बारे में विभिन्न उलेमाओं से लगभग 100 फतवे इकट्ठे किए और 'नुसरत-अल-अहरार' (अंग्रेजी राज से मुक्ति के लिए लड़ने वालों के लिए) नामक पुस्तक प्रकाशित की। ये फतवे कहते थे कि अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारत 'दारुल हरब' है अतः प्रत्येक मुस्लिम को अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जेहाद छेड़ देना चाहिए। सर सैयद अहमद जैसे आधुनिक और मौलाना ननोत्वी जैसे रूढ़िवादी का परस्पर विरोधी व्यवहार दर्शाता है कि साम्प्रदायिकता में धार्मिक द्वन्द्व नहीं, बल्कि हितों के द्वन्द्व हैं। रूढ़िवादी उलेमा अपने हितों के लिए अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हिन्दुओं से भाईचारा स्थापित कर रहे थे जबकि दूसरी ओर हिन्दू और मुस्लिम अभिजात वर्ग अपने हितों के लिए आपस में लड़ रहा था और स्थिति का साम्प्रदायीकरण कर रहा था।

'धर्मनिरपेक्षता' और 'राष्ट्रवाद' जैसी आधुनिक शब्दावली ने भारतीय जनमानस को आकर्षित नहीं किया। यह शब्दावली केवल शिक्षित अभिजात वर्ग तक थी। जनसाधारण इसके प्रति उत्साही नहीं था। इसलिए उलेमा और तिलक जैसों ने भारतीय जनता को अंग्रेजी शासन विरोधी संघर्ष में शामिल करने के लिए धर्म

का सहारा लिया। इसने 19वीं शताब्दी की उदारवादी राजनीति में धर्म को शामिल किया, लेकिन इसके अलावा शायद ही कोई विकल्प था। असल में यह समय की मांग थी। लेकिन यह ध्यान रखना भी महत्त्वपूर्ण है कि स्वतन्त्रता आन्दोलन में धर्म को जोड़ने ने हमारी राजनीति का उतना साम्प्रदायीकरण नहीं किया जितना कि दो सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग के हितों ने। यह अजीब अन्तर्विरोध है कि शिक्षित अभिजात वर्ग जिन्होंने धर्म को राजनीति से मिलाने का विरोध किया वही हमारी राजनीति के साम्प्रदायीकरण के जिम्मेवार हैं।

स्वतन्त्रता आन्दोलन और साम्प्रदायिकता

आइये स्वतन्त्रता-आन्दोलन और साम्प्रदायिकता के बारे में संक्षेप में चर्चा करें जिसने अन्ततः देश का विभाजन किया। यहां यह रेखांकित करना जरूरी है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलन में धर्म का जुड़ाव इतना घातक साबित नहीं हुआ जितना कि माना जाता है। जैसा कि हमने पहले देखा है कि अंग्रेजी शासन के विरुद्ध हिन्दुओं की राजनीतिक लामबंदी के लिए तिलक ने धार्मिक उत्सवों का सहारा लिया। स्वतन्त्रता आन्दोलनों में तिलक राजनीतिक दृष्टि से अधिक उग्रपंथी थे, जबकि वे धार्मिक दृष्टि से रूढ़िवादी थे। दूसरी तरफ गोखले और अन्य राजनीतिक दृष्टि से नरमपंथी और धर्मनिरपेक्ष थे और राजनीति में धर्म के मिश्रण के विरुद्ध थे। अंग्रेजों से स्वतन्त्रता प्राप्त करने की अपेक्षा उदारवादी सुधारों में इनकी रुचि अधिक थी, जबकि तिलक आजादी चाहते थे। इसी तरह महात्मा गांधी अपने सनातनी होने पर गर्व करते थे लेकिन उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई में कोई समझौता नहीं किया और अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय जनता को एकत्रित करने में सफलता हासिल की। उन्होंने दूसरे धर्मों के प्रति आदर भाव प्रदर्शित किया और मुस्लिमों के हितों के *खिलाफत* आन्दोलन का समर्थन किया। खिलाफत आन्दोलन को उनके समर्थन ने आम मुसलमानों और उलेमाओं में जोश भर दिया और उन्हें कांग्रेस से जोड़ लिया। खिलाफत कमेटी के अलावा 'जमायत-ए-अल-उलेमा-ए-हिन्द' नामक संगठन बना जिसमें प्रसिद्ध इस्लाम के विद्वान और धर्मवेत्ता शामिल थे जिन्होंने लगातार स्वतन्त्रता आन्दोलन का समर्थन किया। इन उलेमाओं ने साझे राष्ट्रवाद का समर्थन और बाद में जब द्वि-राष्ट्र का सिद्धान्त आया तो इसका विरोध किया। मुहम्मद अली जिन्ना जो कि नरमपंथी और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के थे, उन्होंने इस आधार पर खिलाफत-आन्दोलन का विरोध किया कि 'मुल्लओं' को राजनीति में शामिल नहीं करना चाहिए, जिन्ना ने पाकिस्तान आन्दोलन का नेतृत्व किया और अन्ततः देश-विभाजन हुआ।

जब कांग्रेस ने लोकप्रियता हासिल करनी शुरू की तो अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग बनाने के लिए मुस्लिम अभिजात वर्ग का इस्तेमाल किया। लीग को मुख्य रूप से

सामन्तों, नवाबों और जागीरदारों का समर्थन था। उल्लेखनीय इतिहासकार और धर्मवेत्ता मौलाना शिवली नौमानी ने 1912 में अपने लेख में मुस्लिम लीग पर हमला करते हुए लिखा कि मुस्लिम लीग निहित स्वार्थों और अंग्रेजों के पिछलग्गुओं की पार्टी है जिसका मुस्लिम जनता से कोई लेना-देना नहीं है। बाद में मुस्लिम लीग पर शिक्षित अभिजात वर्ग का वर्चस्व रहा, लेकिन यह भारतीय कांग्रेस की तरह जनसामान्य की पार्टी नहीं बन पाई। मुस्लिम लीग का स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान पूरा अभिजात्यवादी चरित्र रहा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यह 1937 के चुनाव बुरी तरह हारी थी। जिन्ना ने जन-राजनीति में कभी विश्वास नहीं किया। उसके लिए राजनीति केवल 'भद्रपुरुषों' का काम थी और अनपढ़ जनता को उससे दूर रखना चाहिए।

यह कहना गलत होगा कि मुस्लिम समुदाय ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग नहीं लिया। वास्तविकता यह है कि सभी अल्पसंख्यक समुदायों—मुसलमानों, सिखों, पारसियों और ईसाइयों—ने पूरे जोश से भाग लिया। उनमें से हजारों को अंग्रेजों ने कैद में भी डाला। असल में उनके त्याग किसी से कम नहीं हैं।

ऐसा विश्वास करना भी गलत होगा कि सभी मुसलमानों ने पाकिस्तान-आन्दोलन का समर्थन किया। वास्तविकता तो यह है कि मुस्लिम जनता ने शायद ही विभाजन का समर्थन किया। बहुत से कद्दावर मुस्लिम नेता जैसे एम. ए. अंसारी, हकीम अजमल खान, मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, खान अब्दुल गफ्फार खान, रफी अहमद किदवई और अन्य बहुत से पक्के राष्ट्रवादी थे। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में इनका योगदान किसी से भी कम नहीं है। उल्लेखनीय धर्मव्याख्याता और कुरान के बड़े व्याख्याकार मौलाना अबुल कलाम आजाद कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष रहे और उन्होंने द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त को मानने से इन्कार कर दिया, बल्कि इसे इस्लाम विरोधी करार दिया। अन्य महत्त्वपूर्ण उलेमाओं ने प्रसिद्ध धर्मव्याख्याता मौलाना हुसैन अहमद मदनी के नेतृत्व में द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त की निन्दा की। ज्यों ही लाहौर-प्रस्ताव पारित हुआ तो मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने मुसलमानों को समझाने के लिए पूरे देश का दौरा किया कि वे पाकिस्तान के नाम पर दुष्प्रचार से भ्रमित न हों। मुस्लिम लीग के समर्थकों ने उन पर कई जगह हमले किए। मौलाना मदनी ने तर्क दिया कि साझा राष्ट्रवाद पैगम्बर की विरासत है। उन्होंने और अन्य उलेमाओं ने स्वीकार किया कि जब पैगम्बर ने मक्का से मदीना प्रवास किया तो यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों को अपने-अपने धर्मों की छूट दी थी, और साझा समाज स्थापित किया था। पैगम्बर ने स्वयं उनके धर्म की शिक्षाओं के अनुसार मामले निपटाए। मौलाना ने कहा कि 'मिलात' की अवधारणा का आधार धार्मिक है और 'कौमीयत' की अवधारणा भौगोलिक है। मुसलमान एक ओर इस्लामिक 'मिलात' के अंग हैं तो दूसरी ओर भारतीय भौगोलिक राष्ट्रवाद

के अंग हैं। इन दोनों में परस्पर विरोध नहीं हैं। उन्होंने अपने समर्थन में कुरान की बहुत-सी आयतों का उद्धरण दिया जो दर्शाती थीं कि भौगोलिक राष्ट्रवाद में इस्लाम में विश्वास करने वाले और विश्वास न करने वाले दोनों रह सकते हैं। इस विचार को सिद्ध करने के लिए उन्होंने 'मुत्ताहिदा कौमियत' (साझा राष्ट्रवाद) पुस्तक लिखी।

मौलाना हुसैन अहमद मदनी के अलावा अताउल्लाह शाह बुखारी के नेतृत्व में पंजाब के अहरारों ने मुस्लिम लीग का पुरजोर विरोध किया और इसे पूंजीपतियों की पार्टी कहकर खारिज किया और मुसलमानों को इसका समर्थन न करने की सलाह दी। पंजाब और बंगाल जैसे मुस्लिम-बहुल प्रान्तों में पाकिस्तान की अवधारणा के प्रति कोई उत्साह नहीं था। उनमें हिन्दुओं का कोई डर नहीं था। यह मुस्लिम अल्पसंख्यक राज्यों का मुस्लिम अभिजातवर्ग था जिसे बहुसंख्यक हिन्दुओं का डर था और यही वर्ग था जिसका मुस्लिम लीग की राजनीति की ओर झुकाव हुआ। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लोगों ने खान अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व में पाकिस्तान का डटकर विरोध किया। यह भी ध्यान रखने की बात है कि अंग्रेजी शासन के दौरान सबको वोट का अधिकार नहीं था, ज्यादा से ज्यादा 10 प्रतिशत आबादी को वोट का अधिकार प्राप्त था। इस तरह 90 प्रतिशत लोगों की कोई आवाज नहीं थी और उनसे आशा नहीं की जा सकती थी कि वे तत्कालीन राजनीतिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते। एक विद्वान ने उपलब्ध रिकार्ड के आधार पर अभी हाल में कार्य किया है कि 1945 के चुनावों में 5 प्रतिशत से अधिक ने वोट नहीं डाला और जितने लोगों ने वोट डाला उसके 3.5 प्रतिशत ने ही मुस्लिम लीग का समर्थन किया। इस तरह स्पष्ट है कि मुसलमानों के बहुत कम हिस्से ने पाकिस्तान आन्दोलन का समर्थन किया था। इसलिए सभी मुसलमानों को पाकिस्तान निर्माण का दोषी मानना असंगत होगा। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि पाकिस्तान-निर्माण का आधार इस्लाम नहीं था, सभी 'उलेमाओं' ने पाकिस्तान की अवधारणा का विरोध किया। वास्तव में, पाकिस्तान-निर्माण का कारण अभिजात वर्गों के स्वार्थों की उत्पत्ति है न कि धार्मिक हित। विभाजन के लिए जिन्ना और मुस्लिम लीग को ही पूरी तरह दोषी मानना भी गलत होगा। पण्डित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल समेत कांग्रेस के कुछ नेता भी इसके लिए जिम्मेदार हैं। वीर सावरकर के नेतृत्व वाली हिन्दू महासभा का भी द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त में विश्वास था, हालांकि उन्होंने देश के विभाजन की मांग नहीं की थी। लेकिन उनकी मांग थी कि भारत में मुसलमानों को दूसरे दर्जे का नागरिक या गैर-नागरिक की तरह रहना चाहिए जो उतना ही असंगत था जितना कि पाकिस्तान का निर्माण।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत और साम्प्रदायिकता

देश का विभाजन साम्प्रदायिक समस्या का अन्तिम समाधान सोचा गया था। हालांकि, इस विचार को गलत सिद्ध कर दिया गया है क्योंकि साम्प्रदायिक शक्तियों ने अपना गन्दा सिर दोबारा उठा लिया है। पचास के दशक के दौरान कोई साम्प्रदायिक तनाव नहीं था, पर 1962 में जबलपुर में साम्प्रदायिक दंगे ने देश को हिला दिया। जबलपुर दंगा हिन्दू और मुस्लिम बीड़ी निर्माताओं के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा का परिणाम था। हिन्दू बीड़ी निर्माता की बेटी और मुसलमान बीड़ी निर्माता के बेटे में प्यार हो गया और दोनों के शादी करने के फैसले ने धार्मिक उन्माद पैदा किया। स्थानीय हिन्दी दैनिक समाचार पत्र ने लिखा कि मस्जिद में लगे ट्रांसमीटर के जरिये पाकिस्तान जबलपुर के मुसलमानों से जुड़ा था और दंगे भड़कते गए थे। ऐसी अफवाहें धार्मिक उन्माद को बढ़ावा देती हैं।

साठ के दशक के आरम्भ में दंगों का कारण पूर्वी पाकिस्तान से आए हिन्दू शरणार्थियों का वर्ग रहा है। उनके दुःखों की कहानियां पूर्वी भारत के दुर्गापुर, जमशेदपुर, रांची, पं. बंगाल और कुछ अन्य स्थानों पर दंगों का कारण बनीं। साठ के दशक के अन्त में श्रीमती इन्दिरा गांधी के सत्ता में आने के बाद राजनीतिक परिदृश्य बदलना शुरू हुआ। उन्होंने कांग्रेस के स्वयंभू मालिकों से पीछा छुड़ाने के लिए कांग्रेस का विभाजन कर दिया और गरीब जनता का समर्थन हासिल करने के लिए बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया। उन्होंने गरीबी हटाओ का नारा भी दिया और धर्मनिरपेक्षता को भारतीय लोकतन्त्र का मुख्य स्तम्भ माना, इस तरह मुसलमानों का विश्वास भी जीत लिया। उनका चुनावी अंकगणित एक ओर मुसलमानों और दलितों का समर्थन था, तो दूसरी ओर वामपंथ और ब्राह्मण का। श्रीमती इन्दिरा गांधी के एकाधिकार का विरोध करने के लिए कांग्रेस (O), स्वतन्त्र पार्टी और जनसंघ ने गुजरात में हाथ मिला लिए और उनकी राजनीतिक हैसियत को कम करने के लिए साम्प्रदायिक दंगे भी करवाए। 1969 के अहमदाबाद के दंगों ने देश को एक बार फिर हिला दिया था। इसके बाद 1970 में भिवंडी और जलगांव में दंगे हुए, जिसमें दो साल ही में अस्तित्व में आई शिव सेना ने प्रमुख भूमिका निभाई। शिव सेना को कांग्रेस की वामपंथ विरोधी शक्तियों ने भी मदद की। शिव सेना ने भाषायी और साम्प्रदायिक दोनों तत्त्वों को जोड़ दिया। इस तरह साम्प्रदायिकता मूल रूप से राजनीतिक परिघटना है जो देश की राजनीतिक स्थिति के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है।

सत्तर के आरम्भ में कोई बड़े दंगे नहीं हुए। 1970-1971 में भारत बांग्लादेश के मुक्ति संघर्ष के लिए मदद में व्यस्त था। श्रीमती गांधी की लोकप्रियता व पकड़ बुलन्दी पर थी, यहां तक कि विपक्ष को भी उनका लोहा मानना पड़ा था। हालांकि

उसकी लोकप्रियता जल्दी ही गिरनी शुरू हो गई और सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण ने उनके खिलाफ लोकप्रिय आन्दोलन छेड़ दिया। इससे श्रीमती गांधी ने देश में संकटकाल (इमरजेंसी) की घोषणा कर दी। यह उल्लेखनीय है कि इमरजेंसी के दौरान साम्प्रदायिक हिंसा की कोई घटना नहीं हुई क्योंकि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जनसंघ और जमात-ए-इस्लामी के लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया था। लेकिन इमरजेंसी के दौरान हुई ज्यादतियों के कारण वह इतनी अलोकप्रिय हो गई कि बाद में चुनाव हार गईं।

मोरारजी के नेतृत्व में समाजवादी पार्टी, कांग्रेस (O), जनसंघ आदि विभिन्न विपक्षी दल इकट्ठे हो गए और जनता पार्टी बना ली। जनता पार्टी के नेताओं ने धर्मनिरपेक्षता और लोकतन्त्र की अडिगता के लिए महात्मा गांधी की समाधि पर शपथ ली। लेकिन ज्यों ही जनता पार्टी जीतकर केन्द्र में सत्ता में आई तो दोहरी सदस्यता का विवाद गहरा गया, क्योंकि जनसंघ के सदस्यों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सदस्यता छोड़ने से इन्कार कर दिया था। समाजवादी सदस्यों ने उनकी दोहरी सदस्यता पर आपत्ति की और इस मुद्दे पर सरकार गिर गई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जनता पार्टी शासन के दौरान जमशेदपुर, बनारस, अलीगढ़ और अन्य स्थानों पर दंगे करवाए। इस तरह 1977-78 में देश को एक बार फिर बड़े साम्प्रदायिक दंगे भुगतने पड़े।

श्रीमती गांधी 1980 में फिर सत्ता में आई। उसकी नीतियों में भारी परिवर्तन था। वह मुस्लिम वोटों पर अनिश्चित थीं। संशय था इसलिए उन्होंने मध्यमवर्गीय हिन्दुओं को खुश करना शुरू किया जिन्होंने भूमि सुधारों, हरित-क्रान्ति आदि से आर्थिक धन/सम्पत्ति अर्जित कर ली थी और राजनीतिक सत्ता के आकांक्षी थे। श्रीमती गांधी ने उनका समर्थन जीतने की कोशिश की और अब उनका जोर धर्मनिरपेक्षता पर उतना नहीं था। वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की जोरदार आलोचक नहीं थीं। 1980 में मुरादाबाद में बड़े दंगे हुए लेकिन वह तटस्थ/चुप रहीं। टाइम्स ऑफ इण्डिया के गिरिलाल जैन ने अपने लेख में मुरादाबाद दंगों में 'विदेशी हाथ' होने की बात कही लेकिन किसी जिम्मेवार सरकारी अधिकारी/सत्ता ने इसका विरोधाभास/विरोध नहीं जताया। यहां तक कि श्रीमती गांधी ने मुरादाबाद का दौरा भी नहीं किया।

उभरते राजनीतिक परिदृश्य पर/में उन्होंने हिन्दू समर्थित भावनाओं का भी फायदा उठाना शुरू किया। मीनाक्षीपुरम के कुछ दलितों ने इस्लाम धर्म अपना लिया क्योंकि उनको उच्च जाति के थेवरों ने अपमानित किया था। इसने देश में हिन्दू साम्प्रदायिकता का ताप चढ़ा दिया। अन्यथा गैर-राजनीतिक संगठन विश्व हिन्दू परिषद् ने धर्म-परिवर्तन के खिलाफ उग्र अभियान छेड़ दिया। कहा जाता है कि हिन्दुओं का समर्थन लेने के लिए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इसे पीछे से प्रोत्साहित

किया। बिहारशरीफ (1981), मेरठ (1982), बम्बई-भिवंड़ी (1984), अहमदाबाद (1985) आदि में एक बार दंगों की शृंखला बन गई। विश्व हिन्दू परिषद् ने इनमें से कुछ दंगों में बहुत उग्र भूमिका निभाई विशेषकर मेरठ दंगों में। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या विश्व हिन्दू परिषद की भूमिका की कभी निन्दा नहीं की। अब वह हिन्दू साम्प्रदायिकता की नीति पर चल रही थीं।

दुर्भाग्य से नवम्बर, 1984 में उनके सिख सुरक्षाकर्मियों ने श्रीमती गांधी को गोली मार दी, जिसकी वजह से दिल्ली व उत्तर भारत के कई स्थानों पर सिख-विरोधी दंगे हुए जिनमें 4000 से अधिक सिखों की जान गई। इसमें अधिकतर कांग्रेसी शामिल थे। यह भी घोर साम्प्रदायिक उन्माद का समय था। भारतीय राजनीति की मुख्यधारा अब साम्प्रदायिक हो गई थी।

इसी दौरान कुछ ऐसी प्रमुख घटनाएं हुईं जिसने साम्प्रदायिक शक्तियों को हवा दी। शाहबानो आन्दोलन ने भारतीय राजनीति का साम्प्रदायीकरण कर दिया। मुस्लिम कट्टरपंथियों ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर बहुत ही उग्र रुख अपनाया। राजीव गांधी सरकार कट्टरपंथियों के दबाव में आ गई और मुस्लिम महिला बिल को लागू करके मुस्लिम महिलाओं को धर्मनिरपेक्ष कानून से वंचित कर दिया। देश में यह गम्भीर साम्प्रदायिक उफान था। यही नहीं बल्कि राजीव गांधी सरकार ने हिन्दू कट्टरपंथियों को तुष्ट करने के लिए हिन्दुओं की पूजा के लिए बाबरी मस्जिद के द्वार खोल दिए। रामजन्मभूमि के सवाल ने नया मोड़ ले लिया। यह विवाद देश की धर्मनिरपेक्ष शक्तियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती बन गया।

अगस्त 1990 में वी. पी. सिंह सरकार ने मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू किया, जिससे हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों को गहरा झटका लगा। ये रामजन्म भूमि के बैनर तले हिन्दू वोटों को एकत्रित करना चाहते थे और रामजन्म भूमि आन्दोलन को और तेज करने के लिए इन्होंने रथयात्रा की घोषणा कर दी। कुछ समाचारपत्रों ने रथयात्रा को खूनी-यात्रा कहा है। पूरे देश में बड़ी संख्या में साम्प्रदायिक दंगे हुए। अस्सी के दशक के अन्तिम वर्षों में मेरठ (1987), भागलपुर (1989), जयपुर (1989, 1990), हैदराबाद (1990) और अन्य कई स्थानों पर रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद को लेकर दंगे हुए। इस विवाद में अन्ततः 6 दिसम्बर, 1992 को बाबरी मस्जिद गिरा दी गई और इसके बाद बम्बई, सूरत, अहमदाबाद, कानपुर, दिल्ली, कलकत्ता, पटना आदि में साम्प्रदायिक हिंसा फैल गई। इन दंगों में जान और माल का बहुत अधिक नुकसान हुआ। अस्सी का दशक और नब्बे का प्रारम्भ दंगों के लिए सबसे खराब रहा, इसने अन्य सभी जनसंहारों को पीछे की सीमा लांघ दी। भारत में साम्प्रदायिक दंगों का कोई भी गम्भीर इतिहास इन घटनाओं को अनदेखा नहीं कर सकता। यह भी उल्लेखनीय है कि इन सभी दंगों में कानून और व्यवस्था तंत्र ने भी गरिमा के साथ काम

नहीं किया। कुछ दंगों में पुलिस की भूमिका अत्यधिक पक्षपातपूर्ण रही। विभिन्न जांच आयोगों की रिपोर्टों से यह तथ्य उजागर हुआ है। 1984 के दिल्ली दंगों में और दिसम्बर '92- जनवरी '93 के बम्बई दंगों में पुलिस की भूमिका अत्यधिक निन्दनीय रही है। बहुत से सिपाहियों और निम्नस्तर के पुलिस अधिकारियों ने हिन्दुओं की भीड़ की ओर से हत्याओं, लूटपाट और आगजनी में खुलेआम भाग लिया। सबसे बुरी बात यह है कि महाराष्ट्र सरकार भी पूरी तरह निष्प्रभावी/अप्रभावी साबित हुई और उसने दोषी पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया। इसलिए यदि साम्प्रदायिक हिंसा को रोकना है तो रोक लगाने के लिए पुलिस बल को धर्मनिरपेक्ष बनाने की महती आवश्यकता है।

साम्प्रदायिकता की परिघटना को समझने के लिए हमें समग्र दृष्टि अपनानी होगी/पड़ेगी, और ऐसा ढंग ईजाद करना होगा जिसमें मध्यकालीन इतिहास, ब्रिटिश शासन, स्वतन्त्रता आन्दोलन व देश का विभाजन और स्वातन्त्र्योत्तर भारत में साम्प्रदायिकता का उदय शामिल हों। ऐसी समग्रता अपनाकर ही साम्प्रदायिकता की समस्या को समझ सकते हैं और इस बुराई को दूर कर सकते हैं। इस पुस्तक में साम्प्रदायिकता की परिघटना से जूझने के लिए/ के ढंग को ईजाद करने की कोशिश है।

अध्याय 1

मध्यकालीन इतिहास और साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता एक बहुआयामी परिघटना है। अधिकांश विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि यह एक आधुनिक परिघटना है। कुछ लोग निहित स्वार्थों और अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इसका उद्भव भारतीय इतिहास के मध्यकाल से जोड़ने की कोशिश करते हैं ताकि यह प्रमाणित किया जा सके कि मोहम्मद बिन कासिम के भारत आक्रमण के समय से ही हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के खिलाफ लड़ते आ रहे हैं। यह लड़ाइयां तब तक चलती रहीं जब तक कि अंग्रेज शासकों ने अपना शासन और राजनीतिक आधिपत्य स्थापित नहीं कर लिया। लेकिन यह वास्तव में एक भ्रामक धारणा है। इसे इतिहास का राजनीतिक दुरुपयोग कहा जा सकता है। इतिहास एक विज्ञान है और इसे उस समय के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक व अन्य कारकों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया जाना और समझा जाना चाहिए। इसका विश्लेषण उतना वस्तुनिष्ठ होना चाहिए जितना मनुष्य से सम्भव हो सकता है। किसी के धार्मिक जुड़ाव से इसको समझने पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए। लेकिन साम्प्रदायिक रुझान वाले इतिहासकारों और निहित स्वार्थों वाले राजनेताओं ने हमारे मध्यकालीन इतिहास को साम्प्रदायिक बना दिया है, जिसके विनाशकारी परिणाम हुए हैं। इस तरह के इतिहास ने हमारे अपने समय में (आधुनिक युग) हिन्दू-मुसलमान रिश्तों को बुरी तरह प्रभावित किया है। इतना ही नहीं, बल्कि इतिहास की इस तरह की व्याख्या से हमारे आजादी के आन्दोलन पर भी असर पड़ा है। अलगाववादी आन्दोलन और द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त को कुछ हद तक इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्या से बल मिला है।

इतिहास के साम्प्रदायिक ढ़ंग से प्रस्तुतिकरण के लिए उससे छेड़छाड़ पर प्रकाश डालने से पहले यह देखना होगा कि हम अपने अतीत से भावनात्मक तौर पर इतने अधिक क्यों जुड़े हैं। हम अपने अतीत को गौरवान्वित करने की चेष्टा करते हैं और अपनी विरासत पर अत्यधिक गर्व करते हैं। अधिकतर समय, अपने अतीत के प्रति हम संकीर्णतावादी रवैया अपनाते हैं। एक तरह से यह हममें से

बहुतों के लिए पलायनवादी प्रक्रिया है। जितना अधिक हम अपने वर्तमान से अपमानित महसूस करते हैं, उतना ही अधिक अपने 'स्वर्णिम अतीत' की ओर देखते हैं। इसमें हमें अत्यधिक भावनात्मक व आध्यात्मिक राहत मिलती है। साथ ही, हमारा वर्तमान द्वन्द्वों से भरा है और इसलिए हम अपने अतीत को संघर्षरहित एक ऐसे समय के रूप में देखते हैं जब लोग ज्यादा ईमानदार और मूल्यपरक थे। हमारे इतिहास के बारे में इस तरह की सोच से हमारे दिमागी तनाव को राहत मिलती है। जब अंग्रेजों ने भारत में अपनी सत्ता स्थापित कर ली, हमने स्वयं को बहुत अधिक अपमानित महसूस किया और हमने एक स्वर्णिम अतीत की खोज करनी शुरू कर दी। भूतकाल को किसी भी तरह के द्वन्द्व से रहित ओर 'उपलब्धियों' भरा समझा गया। साथ ही क्योंकि अंग्रेजों के आगमन के बाद हिन्दू-मुसलमान सम्बन्ध खराब होने शुरू हो गए थे, कुछ हद तक अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति के कारण और कुछ अन्य अन्दरूनी कारणों से जिनकी पुस्तक में आगे व्याख्या की गई है, हमने ऐसा सोचना शुरू कर दिया कि मुसलमान शासकों के आगमन से ही हमारी समस्याएं शुरू हुई हैं। कुछ साम्प्रदायिक इतिहासकारों ने तो यहां तक कह दिया कि हमारा हिन्दू युग वास्तव में गौरवशाली था और हमारी सारी समस्याएं मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के साथ ही शुरू हुईं। दूसरी तरफ मुसलमान साम्प्रदायिक इतिहासकारों ने विचार दिया कि मुसलमानों से पहले के भारत में गर्व करने लायक कुछ था ही नहीं। मुसलमान शासकों ने ही भारत को सांस्कृतिक-राजनीतिक स्थिरता प्रदान की। यह कहने की जरूरत नहीं है कि दोनों तरह के विचार गलत हैं।

इतिहास के बारे में इस तरह के विचार घोर साम्प्रदायिक हैं। मुसलमानों के आगमन से पहले भी भारत अनेक महान् उपलब्धियां हासिल कर चुका था। इन उपलब्धियों का काफी सही अंदाजा कुछ यात्रियों व इतिहासकारों द्वारा भारत के विषय में लिखे गए विवरणों से मिल सकता है। विख्यात विद्वान् अलबरूनी जो महमूद गजनवी के साथ भारत आया था और सोमनाथ मन्दिर लूटने के बाद महमूद गजनवी के वापिस जाने के बाद भारत में ही रह गया था, ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'किताब अलहिन्द' में भारतीय खगोलशास्त्रियों, गणितज्ञों, दार्शनिकों आदि की गौरवपूर्ण उपलब्धियों का वर्णन किया है। अरबी की एक अन्य प्रसिद्ध पुस्तक 'तबकत इब्न सांद' में भी भारतीय उपलब्धियों का वर्णन मिलता है। वास्तव में अरबियों ने भारत से ही गणित सीखा। अरबी भाषा में गणित के लिए 'हिन्दसा' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ है हिन्द से अर्थात् भारत से।

यह सच है कि बाबर जैसे कुछ मुसलमान शासकों ने भारत की उपलब्धियों के बारे में कोई खास वर्णन नहीं किया है। 'तुजक-ए-बाबरी' में भारत के बारे में बाबर की टिप्पणियां पक्षपातपूर्ण भी हैं। वह लिखता है :

"हिन्दुस्तान के गांव और कस्बे अत्यधिक गन्दे हैं। इसके सारे शहर और जमीन एक जैसे दिखाई देते हैं; इसके बागों में कोई चारदीवारी नहीं हैं; इसका बहुत बड़ा हिस्सा समतल मैदान है। इसके नदी-नालों के किनारे, बरसातों के दौरान इनमें मिलने वाली धाराओं के कारण जगह-जगह से कट कर दूर तक नालियों की तरह बने हुए हैं।

"हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है जिसमें वर्णन करने योग्य कोई अच्छाई नहीं है। लोग सुन्दर नहीं हैं, उन्हें मित्रतापूर्ण समाज या आपस में मिल-जुल कर रहने की अच्छाइयों का पता ही नहीं है। उनमें दिमाग नहीं है, अपने हस्तशिल्प के कामों में अपनी अक्ल से कोई खोज या सुधार नहीं करते, डिजाइन या वास्तुकला में भी कोई निपुणता या ज्ञान नहीं है, उनके पास कोई अच्छे घोड़े नहीं हैं, अच्छा मांस नहीं है, अंगूर या खरबूजे जैसे अच्छे फल नहीं हैं; बर्फ या ठण्डा पानी नहीं है, उनके बाजारों में अच्छे खाद्य पदार्थ नहीं हैं, कोई स्नानघर नहीं है, महाविद्यालय नहीं हैं, मोमबत्तियां या मशालें नहीं हैं।"[1]

यह सच है कि भारत के बारे में बाबर की यह टिप्पणियां भारत का बुरा दृश्य दिखाती हैं। लेकिन, ऐसा लगता है कि भारत के बारे में उसका यह शुरुआती विचार था। इसके अलावा, इस तरह के विचार केवल बाबर के ही हैं। शेष अधिकतर लोगों ने भारत के बारे में गौरवपूर्ण लिखा है। केवल बाबर के विचारों को ही पूरी अधिमान्यता नहीं देनी चाहिए लेकिन कुछ साम्प्रदायिक दिमाग के मुसलमान इतिहासकारों ने ठीक ऐसा ही किया है।

साम्प्रदायिक हिन्दू इतिहासकार भी भारतीय इतिहास का केवल गौरवगान करके इसका रूप बिगाड़ देते हैं। उनको इस बात से शर्म महसूस होती है कि कई सदियों तक मुसलमानों ने उन पर शासन किया और इसलिए उस समय को एक ऐसा 'हिन्दू दासता' का युग बताते हैं जिसमें हिन्दुओं का अपमान हुआ, उनके मन्दिर तोड़े गए और उनकी संस्कृति नष्ट की गई। उनको लगता है कि मुसलमानों से पहले का युग स्वर्णयुग था। मुसलमान पूर्व युग के सभी शासक धर्म के अनुसार आचरण करते थे और परिणामस्वरूप कोई झगड़े नहीं थे। वे इस समय के झगड़ों को या तो नजरअंदाज करने या कम करके दिखाने की कोशिश करते हैं। वे भूल जाते है कि इस समय में विभिन्न राजाओं में परस्पर विनाशकारी युद्ध होते रहते थे जो एक दूसरे का क्षेत्र हथियाने की कोशिश करते थे और यहां तक कि अपने प्रतिद्वन्द्वी को नीचा दिखाने के लिए बाहरी शक्तियों को भी आमन्त्रित करते थे। ये इतिहासकार जाति-संघर्ष और आदिवासियों पर अत्याचार और उनकी जीवन शैली को नष्ट करने को भी कम करके दिखाते हैं। चाणक्य ने स्वयं अपने राजा को प्रतिद्वन्द्वियों के क्षेत्र को जीतने के विभिन्न तरीके सिखाए थे। यहां तक कि धोखा देना व ठगना राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए उचित माना

गया था। बहुत से हिन्दू राजाओं ने मुसलमान हमलावरों के साथ सहयोग किया। उदाहरणस्वरूप थानेसर के आनन्दपाल ने महमूद गजनवी की मूर्तियां नष्ट करने की इच्छा जानते हुए भी उसकी मदद की। योगेन्द्र मिश्रा कहते हैं, "जब आनन्दपाल को महमूद के आक्रमण का पता चला, उसने पचास हाथी देने की पेशकश की यदि सुल्तान थानेसर को छोड़ दे जिसको हिन्दू चक्रस्वामी की मूर्ति के कारण अत्यधिक सम्मान देते थे। लेकिन सुल्तान ने अपनी योजना को बदलने से इन्कार कर दिया यह कहते हुए कि वह भारत से मूर्तिपूजा जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता है। यह जवाब दिल्ली के राजा को भेज दिया गया था, थानेसर जिसके संरक्षण में था। सुल्तान के इस उद्देश्य की खुली घोषणा के बावजूद, आनन्दपाल ने एक अधीन और सहायक होने के नाते उसकी मदद के लिए न केवल अपने वायदे के मुताबिक 2000 सैनिकों का लश्कर भेजा बल्कि अपने व्यापारियों व दुकानदारों को मुसलमान सेना की रसद आदि की जरूरतें पूरी करने के लिए आदेश दिए। इसलिए उसकी तुलना पोरस के साथ ठीक ही की जाती है जिसने शुरू में वीरता के साथ सिकंदर का मुकाबला किया लेकिन बाद में हथियार डाल दिए और अन्य भारतीय राजाओं को जीतने में उसकी मदद की।"[2]

इस प्रकार पूर्व-मुसलमान या मुसलमान युग को आदर्श युग चित्रित करना गलत होगा। यह इतिहास की पूर्ण रूप से गलत व्याख्या है और इतिहास की तोड़-फोड़ है। इतिहास के किसी भी समय को स्वर्ण युग नहीं कहा जा सकता। यदि ईमानदारी से और बिना धार्मिक पक्षपात के विचार किया जाए तो सभी तथाकथित स्वर्ण युग संघर्षों और स्वार्थों के टकरावों से भरे पड़े हैं। इतिहास को हिन्दू युग या मुसलमान युग की संज्ञा देना गलत है। इस तरह से युग बनाने का विचार अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक स्वार्थों के कारण ईजाद किया था। उन्होंने मध्यकाल को हिन्दू और मुसलमान युगों में बांट दिया, लेकिन उन्होंने अपने खुद के समय को ब्रिटिश युग बताया, उनके धर्म ईसाइयत की बजाय राष्ट्रीयता पर आधारित करके जबकि उन्होंने दूसरे युगों को धर्म के आधार पर बांटा। इतिहास के इस वर्गीकरण ने उन युगों की हमारी समझ को भ्रष्ट कर दिया। इतिहास के इस वर्गीकरण की धार्मिक अवधारणा ने उनके लिए भारतीयों के दिमाग में साम्प्रदायिक जहर भरना आसान बना दिया। अपने खुद के समय को ब्रिटिश समय चित्रित करके उन्होंने चालाकी से ईसाइयत को दुर्भावना से बचा लिया। वास्तव में, जैसा कि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के इतिहासकारों[3] ने रेखांकित किया है, इतिहास को धार्मिक युगों में बांटना गलत है। न तो उस समय 'हिन्दू राज' था और न ही 'मुसलमान राज'। इसको ज्यादा सही तौर पर राजवंशीय शासन कहना ज्यादा उचित होगा जैसे कि मौर्य काल, गुप्त काल, तुगलक काल, खिलजी काल या मुगल काल। इन राजवंशों के अपने स्वार्थ और आकांक्षाएं थीं और उन्होंने

वही किया जो उनकी आकांक्षा पूरी करने में मददगार था।

कोई भी शासक अपने धर्म की शिक्षाओं के अनुसार शासन नहीं करता। कोई शासक, आवश्यकतानुसार, अपने क्रियाकलापों या आकांक्षाओं को उचित ठहराने के लिए धर्म का सहारा ले सकता है। एक ऐतिहासिक (शासक) चरित्र के उद्देश्य बहुत जटिल होते हैं। सिर्फ उसकी घोषणाओं से उसके उद्देश्यों का अन्दाजा गलत होगा। मानव के व्यवहार पर थोड़ा-सा भी विचार करें तो पता चलेगा कि एक आम आदमी भी हमेशा अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार आचरण नहीं करता। यह सोचना मूर्खता होगी कि एक ऐतिहासिक चरित्र (शासक), जिसे एक आम आदमी की तुलना में अत्यधिक जटिल स्थितियों का सामना करना पड़ता है, पूरी तरह से अपने धार्मिक विश्वासों के अनुसार आचरण करेगा। जब हमारे अपने प्रजातांत्रिक शासक आज भी वोट बटोरने के लिए धर्म का प्रयोग करते हैं, तो मध्यकालीन शासकों ने धर्म को राजनीतिक उद्देश्यों के लिए क्यों प्रयोग नहीं किया होगा? क्या हमारे आज के प्रजातांत्रिक शासक धर्म को वास्तव में लागू करना चाहते हैं? क्या वे धर्म में सच्चा विश्वास करते हैं? क्या वे वास्तव में धार्मिक व्यक्तियों की तरह आचरण करते हैं? क्या रामजन्मभूमि का मुद्दा वास्तव में धार्मिक मुद्दा है या एक शक्तिशाली धार्मिक प्रतीक जिसका हिन्दूवादी शक्तियों द्वारा राजनीतिक कारणों से प्रयोग किया जा रहा है? इस प्रकार क्या हम कह सकते हैं कि मध्यकालीन राजाओं द्वारा धर्म के नाम पर किए गए सारे कार्य उनकी धार्मिक आस्था के कारण किए गए या धर्म को केवल उन कार्यों को सही ठहराने के लिए प्रयोग किया गया था? क्या मुसलमान शासकों ने मन्दिरों को इसलिए नष्ट किया कि वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे या उनका कोई और मकसद था?

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि महमूद गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर को इसलिए नष्ट किया क्योंकि एक मुसलमान होने के कारण वह मूर्तिपूजा के खिलाफ था। ऐसा समझा जाता है कि सोमनाथ के मन्दिर को लूटते समय व मूर्तियों को तोड़ते समय उसने कहा था कि वह चाहेगा कि उसे इतिहास में बुतफरोश के बजाय बुत शिकन (मूर्ति भंजक) के रूप में जाना जाए। क्या हम उसकी बातों को शब्दशः मान कर यह निष्कर्ष निकाल लें कि उसने धार्मिक कारणों से ही मूर्तियां तोड़ीं और सोमनाथ का धन लूटा। यदि हम सारी परिस्थितियों पर विचार करें तो यह निष्कर्ष निकालना कठिन नहीं होगा कि महमूद गजनवी ने सोमनाथ का मन्दिर धार्मिक कारणों से नहीं बल्कि धन लूटने के लालच से तोड़ा। प्रख्यात इतिहासकार रोमिला थापर कहती हैं–

मन्दिरों में नकदी, सोने की मूर्तियों और आभूषणों के रूप में बहुत अधिक धन एकत्रित था जो भक्त लोगों द्वारा दान दिया गया था। इसी कारण से उत्तरी भारत में मन्दिर धन खोज रहे किसी गैर-हिन्दू के आक्रमण के लिए स्वाभाविक

निशाना बन जाते थे। धन के लिए महमूद गजनवी की लालसा असीमित थी। 1010 से 1026 तक महमूद के आक्रमण मन्दिरों वाले शहरों में ही होते रहे—मथुरा, थानेसर, कन्नौज और अन्त में सोमनाथ। सोमनाथ का मन्दिर विपुल धन के कारण प्रसिद्ध था और परिणामस्वरूप महमूद का आक्रमण अपरिहार्य था। धन की लालसा के साथ धार्मिक प्रेरणा भी थी—इस्लाम धर्म के अत्यधिक कट्टर अनुयायियों के बीच मूर्तिभंजन एक प्रशंसनीय कार्य माना जाता था।[4]

एक अरब लेखक ने भी इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बारे में लिखा है—

जब सुल्तान भारत के विरुद्ध धार्मिक युद्ध लड़ने गया, उसने इस आशा से सोमनाथ को विजयी और नष्ट करने के अत्यधिक प्रयास किए कि हिन्दू मुसलमान बन जाएंगे। वह यहां दिसम्बर 1025 के मध्य में पहुंचा। सुल्तान ने मूर्तियों की तरफ आश्चर्य से देखा और वहां से धन लूट कर इकट्ठा करने के आदेश दिए। वहां सोने-चांदी की कई मूर्तियां और आभूषणों से सजे थाल थे, जो कि वहां भारत के सबसे अमीर लोगों द्वारा भेजे गए थे। मन्दिर में पाई गई मूर्तियों और अन्य वस्तुओं की कीमत बीस हजार दीनार से अधिक थी।[5]

यह एक रोचक बात है कि मध्यकाल में इतिहास लिखने का अपना एक अलग ढंग था। इतिहास को एक धर्मनिरपेक्ष विज्ञान नहीं समझा जाता था। इसमें धार्मिक विश्वास का अत्यधिक पुट था। जब एक राजा किसी देश पर हमला करता था, वहां का कथा-लेखक (वाकया-ए-निगार अर्थात् घटनाओं को लिखने वाला) जो प्रायः राजा की नौकरी में होता था, अपने मालिक (राजा) की नजरों में ऊंचा उठने के लिए इस आक्रमण को धार्मिक कारणों से प्रेरित बताता था, इस प्रकार ये दरबारी इतिहासकार अपने राजाओं को सारी अच्छाइयों से ओत-प्रोत व धार्मिक भावना से परिपूर्ण और उन (राजाओं) द्वारा किए गए सभी कार्य धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किए गए कार्य दिखाते थे। दरबारी इतिहासकारों द्वारा राजाओं के गौरवगान से इतिहास में गलतफहमी फैली है। काजविनी, एक अरब कथा लेखक द्वारा लिखा गया उपरोक्त उद्देश्य इसका एक उदाहरण है। उसके अनुसार "राजा भारत में भारत के खिलाफ धार्मिक युद्ध लड़ने आया" लेकिन आगे वह राजा के असली मकसद को फिर छिपा जाता है जब वह कहता है, "राजा ने मूर्तियों की तरफ आश्चर्य से देखा और वहां से धन लूट कर इकट्ठा करने के आदेश दिए।" इस प्रकार घटना लेखक की असली भावना को समझने के लिए हमें मध्यकालीन इतिहास लेखकों के ढंग को समझना होगा। सभी घटनाओं को धार्मिक उद्देश्यों को पूरा करने वाली चित्रित करने की कोशिश की जाती है। वास्तव में, या तो वे बिल्कुल भी धार्मिक नहीं होती थीं या अधिक से अधिक ऐसी घटना के मिले-जुले उद्देश्य (राजनीतिक व धार्मिक) होते थे, जैसा कि रोमिला थापर ने ऊपर कहा है।

यह भी गौर करने योग्य है कि यदि महमूद गजनवी की असली मंशा हिन्दू

मन्दिरों को नष्ट करके धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति करना होती तो वह हिन्दू राज्यों की तरफ बढ़ने से पहले मुल्तान के मुसलमान शासक पर आक्रमण क्यों करता? 1025 ईस्वी में सोमनाथ को नष्ट करने से बहुत पहले, उसने मार्च-अप्रैल 1006 में मुल्तान के शासक अबुल फद दाऊद पर आक्रमण किया था। केवल इतना ही नहीं, मुल्तान पर आक्रमण के लिए उसने आनन्दपाल की मदद मांगी थी। हालांकि आनन्दपाल ने मदद करने से इंकार कर दिया था क्योंकि मुल्तान का अमीर उसका मित्र था, इसलिए मुल्तान के अमीर ने भी आनन्दपाल से मदद मांगी और आनन्दपाल ने उसकी मदद की। महमूद ने मुल्तान को बुरी तरह लूटा और अत्यधिक तबाही मचाई तथा बहुत अधिक संख्या में करामितां मुसलमानों (मुसलमानों का एक सम्प्रदाय) को मौत के घाट उतार दिया और दाऊद को गिरफ्तार कर लिया जिसकी महमूद की कैद में मृत्यु हुई।[6] यह तर्क दिया जा सकता है कि मुल्तान का अमीर तो एक करामितां मुसलमान था। लेकिन मुल्तान के अमीर के साथ लड़ाई से पहले महमूद ने घौड़ के राजा मोहम्मद बिन थूरी पर हमला किया जो पक्का सुन्नी मुसलमान था।

मजूमदार, राय चौधरी और दत्ता–प्रख्यात इतिहासकारों ने महमूद के असली चरित्र के बारे में निष्कर्ष दिया है, ''–भारत के इतिहासकारों को वह (महमूद गजनवी) मुख्य रूप से एक अत्यधिक लालची आक्रमणकारी/लुटेरा नजर आता है। ना तो वह इस देश में धर्म का प्रचार करने आया था और न ही उसने किसी साम्राज्य को खड़ा किया। पूर्व की ओर उसके आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य 'भारत के धन' को लूटना और इस धन के संरक्षकों के हौसले को नष्ट करना प्रतीत होता है।....वह इस देश से धन लूट कर ले गया और उसने इस देश के सैनिक संसाधनों को भी बुरी तरह लूटा।''[7]

शासकों को अपने हित अपने आदर्शों और धार्मिक विश्वासों से ज्यादा प्यारे होते हैं। रोमिला थापर ने सही कहा है, ''धर्म को तब तक कोई महत्व नहीं दिया जाता था, जब तक कि वह किसी निश्चित राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता था। लेकिन जहां भी यह राजनैतिक उद्देश्य पूरे कर सकता था, इसका जम कर प्रयोग किया जाता था।''[8]

काजी मुघीस और अलाऊद्दीन खिलजी के बीच हुए वार्तालाप से यह बात और अधिक सिद्ध हो जाती है। एक बार अलाऊद्दीन खिलजी ने काजी से शरीयत के विषय में कई प्रश्न पूछे। काजी ने उसे शरीयत की स्थिति और उसके अनुसार सुल्तान को क्या करना चाहिए के बारे में बताया। स्पष्टतया अलाऊद्दीन का व्यवहार शरीयत के अनुसार नहीं था। अलाऊद्दीन ने काजी को बताया–

''आपके अनुसार मेरे कृत्य शरीयत के खिलाफ हैं। अब देखिए, मैं इस प्रकार कार्य करता हूं। जो घुड़सवार अर्ज (हाजरी) के समय गैरहाजिर रहता है,

मैं उसकी पिछली तीन साल की तनख्वाह वापिस मंगवा लेता हूं। शराब पीने और बेचने वाले सभी लोगों को मैं सूखे कुंओं में डाल देता हूं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे की औरत के साथ बलात्कार करता है तो मैं उसका अंगभंग करवा (अण्डकोष निकलवा) देता हूं और उस औरत को मरवा देता हूं। विद्रोह की स्थिति में, मैं अच्छे-बुरे, बच्चे-बूढ़े सब तरह के लोगों की हत्याएं करवाता हूं और उनकी औरतों और बच्चों को गरीब और बेसहारा बना देता हूं। मैं लात-घूंसे मार-मार कर भ्रष्ट राजस्व अधिकारियों से जनता से प्राप्त धन वापिस वसूलता हूं और आखिरी जित्तल वसूल हो जाने तक मैं उनको हथकड़ियों में रखता हूं। राजनीतिक विरोधियों को मैं पूरी उम्र के लिए कैद में डाल देता हूं। क्या आप कहेंगे कि यह सारे कार्य शरीयत के खिलाफ हैं।''[9]

ऐसे अनेक उदाहरण और भी मिल सकते हैं जब शासकों ने शरीयत के विरुद्ध कार्य किए। सुल्तान बलबन (1266-68) द्वारा किए गए एक वार्तालाप के अनुसार—''अल्तमश का कहना था कि एक राजा के लिए धर्म की शिक्षाओं का पालन करना (दीनदारी) व्यवहार में सम्भव नहीं था। उसके लिए धर्म की रक्षा करना (दीनपनाह) ही पर्याप्त था। बलबन ने तो यहां तक कहा कि जहां तक उसका स्वयं का ताल्लुक है वह न केवल धार्मिक उपदेशों का पालन (दीनदारी) नहीं कर सकता बल्कि वह धर्म की रक्षा भी (दीनपनाही) नहीं कर सकता। वह सोचता है कि उसके लिए न्याय कर देना (अदल) ही पर्याप्त होगा।''[10] इसी प्रकार 'साहिका-ए-नात-ए-मुहम्मदी' में लिखा है कि एक दिन अल्तमश (1211-1236) के दरबार का उलेमा सुल्तान के पास गया और बोला कि क्योंकि ब्राह्मण इस्लाम धर्म के सबसे बड़े दुश्मन हैं, इसलिए इस्लाम धर्म के अनुसार राजा का कर्तव्य बनता है कि ब्राह्मणों को या तो धर्मपरिवर्तन के लिए तैयार किया जाए या फिर उनको मौत के घाट उतार दिया जाए। दरबारी उलेमा से इस तरह की मांग सुनकर अल्तमश हड़बड़ा गया। उसने कहा कि वह इसका जवाब अगले दिन देगा। अगले दिन राजा के मंत्री ने उलेमा को बताया कि क्योंकि राज्य में मुसलमान इतने कम थे जैसे कि भोजन में नमक, उनकी यह मांग ऐसी स्थिति में पूरी नहीं की जा सकती। फिर भी, उन्होंने कहा कि जब भी परिस्थितियां बदलेंगी और मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ जाएगी, उलेमा की मांग के अनुसार कार्रवाई करना सम्भव हो सकता है।[11] राजा द्वारा उलेमा को दिया गया यह एक कूटनीतिक जवाब था।

ज्यादातर, उलेमा धर्म के बारे में सख्त और अव्यावहारिक रुख अखित्यार करते थे, जबकि राजाओं और शासकों के लिए इस तरह से आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी होना सम्भव नहीं था। उलेमाओं की अपनी समस्याएं थीं। अक्सर उच्च पदों के लिए उनके बीच होड़ रहती थी और होड़ में बने रहना तभी सम्भव था जब वे अपने प्रतिद्वन्द्वी की अपेक्षा ज्यादा धार्मिक दिखाई दें। साथ ही उन

उलेमाओं का किसी भी तरह का व्यावहारिक अनुभव नहीं होता था। उन्हें 'ग्रन्थानुसार' रुख अखित्यार करने में प्रसन्नता होती थी। लेकिन दुर्भाग्य यह था कि यहां भी वे भावना की बजाय शब्दों के अनुसार रुख अखित्यार करते थे। यहां तक कि पैगम्बर के उत्तराधिकारी खलीफा भी अक्सर व्यवहारिक रुख अख्तियार करते थे। उदाहरणतया तीसरे खलीफा उथमान ने उत्तरी अफ्रीका के बर्बरों को अहल अल किताब (जिनकी अपनी धार्मिक पुस्तक हो, धार्मिक लोग) स्वीकार किया और उनके साथ 'जजिया' कर के बारे में समझौता किया। सही मायनों में, वे बर्बर आदिवासी थे और उनकी अपनी कोई धार्मिक पुस्तक नहीं थी। लेकिन राजनीतिक मजबूरियों के कारण उनको ऐसा दर्जा दिया गया। लेकिन उलेमा ने अत्यधिक संकीर्ण रुख अख्तियार किया और शासकों के लिए गम्भीर समस्याएं पैदा कीं। फिर भी, शासक आसानी से उलेमा की राय की उपेक्षा नहीं कर सकते थे क्योंकि दरबार में उलेमाओं के अपने अनुयायी भी थे। इन धार्मिक सिद्धान्तकारों के विचारों के खिलाफ चलने के लिए शासकों को तरीके ढूंढ़ने पड़ते थे। लेकिन कुछ मजबूत शासकों जैसे अलाऊद्दीन खिलजी ने खुले तौर पर धार्मिक राय का उल्लंघन किया। अकबर ने भी उलेमाओं को नियंत्रण में रखा। जहांगीर ने तो सबसे अधिक प्रभावशाली 'अलीम मुजादीद अल्फ-ए-थानी' को कैद कर लिया था हालांकि बाद में उसे छोड़ना पड़ा।

मध्यकाल के लिखित स्त्रोतों का प्रयोग करते वक्त एक इतिहासकार को अत्यधिक सावधान रहना पड़ता है। उसको किसी अलीम या धर्म-व्याख्याता की बात पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। नहीं तो ऐसा प्रतीत होगा कि सभी मुसलमान शासकों ने केवल कट्टरपंथी शरीयत के नियमों को लागू किया और काफिरों का अपमान किया। काजी मुघीस से अलाऊदीन की कही गई यह बात रोचक है :

करदाता के रूप में हिन्दुओं की क्या स्थिति है? ईमानदारी से तो काजी को यह कहना पड़ता कि न तो कुरान में और न ही पैगम्बर के हदीसों (उपदेशों) के प्रामाणिक संग्रह में हिन्दुओं का कहीं नाम है ओर यह कि उलेमाओं ने अपने तर्क बहरीन के जोरोस्ट्रियनों के साथ पैगम्बर के शान्तिपूर्ण प्रबन्धों के साथ तुलना (कयास) के आधार पर दिए हैं; और यह कि इस मसले पर विचारों की अत्यधिक विभिन्नता थी। इसके बजाय काजी ने बरानी के दिल को खुश करने वाली प्रमाणित की जा सकने वाली दो झूठें बोलीं। पहली यह कि "हिन्दू पैगम्बर मोहम्मद के सबसे बड़े दुश्मन थे और पैगम्बर ने हिन्दुओं को मारने, लूटने और गुलाम बनाने के आदेश दिए हैं।" पैगम्बर अपने पूरे जीवन में किसी एक भी हिन्दू से नहीं मिले और पैगम्बर के हदीसों की छहों प्रामाणिक संग्रहों में कहीं भी ऐसा कोई आदेश नहीं मिलता। दूसरी यह कि जबकि इमाम अबू हनीफा (जिसके सम्प्रदाय से हम

सम्बन्ध रखते हैं) ने जजिया प्राप्त करके हिन्दुओं से शान्ति की इजाजत दी है, दूसरे धार्मिक विद्वानों ने उनके (हिन्दुओं) लिए 'इस्लाम या तलवार' के अलावा और कोई रास्ता नहीं छोड़ा है। इससे दोबारा बरानी का घोर अज्ञान प्रकट होता है जिसे वह 'फतवा-ए-जहान्धरी' में ज्यादा जोर से दोहराता है।

अलाऊद्दीन खिलजी द्वारा मुघीस को दिया गया जवाब भी इतना ही रोचक है। उसने कहा—"मौलाना मुघीस! यद्यपि मुझे कोई ज्ञान नहीं है और मैंने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी है, फिर भी मैं एक मुसलमान के रूप में पैदा हुआ था और मेरे बुजुर्ग कितनी ही पीढ़ियों से मुसलमान हैं। विद्रोहों, जिनमें हजारों लोग मारे जाते हैं, को रोकने के लिए मैं लोगों को ऐसे आदेश देता हूं जो मुझे राज्य और उनके लिए लाभकारी लगते हैं। लेकिन आजकल के लोग दुःसाहसी और अवज्ञाकारी हो गए हैं और मेरे आदेशों का सही पालन नहीं करते, इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि मैं उनसे आदेशों की पालना सुनिश्चित करने के लिए उन्हें कड़ी सजा दूं। मैं वे आदेश जारी करता हूं जो मुझे राज्य के लिए लाभकारी और विभिन्न परिस्थितियों में उचित प्रतीत होते हैं। मैं नहीं जानता कि इन आदेशों की शरीयत इजाजत देता है या नहीं। मैं नहीं जानता कयामत के दिन खुदा मेरे साथ क्या बर्ताव करेगा।"[12]

यह वार्तालाप हमें आभास कराता है कि काजी और उलेमा क्या सोचते थे और राजा और शासक कैसे अपना कामकाज चलाते थे। इस प्रकार इन स्रोतों का प्रयोग करने वाला कोई इतिहासकार काजियों द्वारा कही गई बातों का उदाहरण यह सिद्ध करने के लिए दे सकता है कि मुसलमान शासक हिन्दुओं के कितना अधिक खिलाफ थे।

दूसरी समस्या इतिहास के प्रति चयनकारी रवैये की है। हम केवल उन्हीं स्रोतों का प्रयोग करते हैं जो हमारे अनुकूल बैठते हैं। यह तरीका प्रायः बड़ा ही सीमित होता है और इतिहासकार के अपने आग्रहों के अनुसार स्रोतों का चुनाव होता है। केवल यही नहीं एक इतिहासकार एक बावर्ची की तरह होता है। वह इतिहास को अपने ही तरीके से अपने स्वाद के अनुसार पकाता है। प्रख्यात अंग्रेज इतिहासकार ई. एच. कार के अनुसार—"तथ्य अलौकिक/पवित्र नहीं हैं क्योंकि हम तथ्यों को अपनी इच्छा के अनुसार चुनते हैं और अपने तरीके से उनका प्रयोग करते हैं।" कार कहते हैं—"इतिहास जांचे-परखे तथ्यों का एक संग्रह है। ये तथ्य इतिहासकार को दस्तावेजों, शिलालेखों आदि से इस तरह प्राप्त होते हैं जैसे मछली बेचने वाले की तश्तरी में रखी मछलियां। इतिहासकार उन्हें इकट्ठा करता है, उन्हें अपने घर ले जाता है और उन्हें उस तरीके से पकाता और परोसता है जो उसे अच्छा लगता है।"[13] हम आमतौर पर समझते हैं कि तथ्य पवित्र हैं। लेकिन यहां भी हमें सावधानी से चलना होगा। कार कहते हैं "ऐसा कहा जाता था कि तथ्य अपने आप बोलते हैं। लेकिन असलियत में यह गलत है। तथ्य केवल तभी बोलते

हैं जब इतिहासकार उन्हें बोलने के लिए कहता है। यह इतिहासकार ही है जो यह निर्णय लेता है कि किन तथ्यों को स्थान दिया जाए और किस क्रम में या सन्दर्भ में। शायद पिरांडैलो के एक चरित्र ने कहा था कि एक तथ्य एक खाली बोरे की तरह है—यह तब तक खड़ा नहीं होगा, जब तक इसके अन्दर कुछ डाल नहीं दिया जाता। यह जानने का एकमात्र कारण कि हेस्टिंग्स में युद्ध 1066 में लड़ा गया था यही है कि इतिहासकार इसे एक मुख्य ऐतिहासिक घटना मानते हैं। यह इतिहासकार ही है जिसने अपने ही कारणों से यह निर्णय किया है कि छोटी-सी नदी, रुबिकोन को सीजर द्वारा पार करना एक ऐतिहासिक तथ्य है, जबकि उससे पहले या बाद में उसी रुबिकोन को लाखों लोगों द्वारा पार किए जाने में किसी की भी कोई रुचि नहीं है।"[14]

इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों की अपनी सीमाएं हैं। काफी कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि इतिहास के बारे में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए इतिहासकार ने किन तथ्यों का चयन किया है। इस प्रकार इतिहास लेखन में इतिहासकार की अपनी सोच एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

हमें मुसलमान शासकों द्वारा मन्दिरों को ध्वस्त किए जाने के बारे में बहुत कुछ पढ़ने को मिलता है लेकिन हम कभी भी हिन्दू या बुद्ध शासकों द्वारा मन्दिरों व अन्य धार्मिक स्थलों को नष्ट करने के बारे में या काश्मीर के राजा हर्ष द्वारा मूर्तियों को तोड़े जाने के बारे में बात नहीं करते। कोशाम्बी इस मूर्तिभंजन के बारे में लिखते हैं "काश्मीर के राजा हर्ष (1089-1101 ईस्वी, सातवीं शताब्दी के सम्राट हर्ष से अलग) ने अपने पूरे राज्य में, केवल चार अपवादों को छोड़कर योजनाबद्ध तरीके से एक के बाद एक करके धातु से बनी सारी मूर्तियों को पिघलवा दिया। यह कार्य एक विशेष मंत्री, देवताओं को उखाड़ने वाला मंत्री (देवोत्थपद नायक) द्वारा किया गया था। गलियों में से घसीट कर भट्टी तक ले जाने से पहले प्रत्येक बुत को सार्वजनिक तौर पर कोढ़ से पीड़ित भिखारियों द्वारा अपना मल-पेशाब उस पर डाल कर गन्दा किया जाता था। इसका जरा-सा भी धार्मिक औचित्य ठहराने की कोशिश नहीं की गई। राजा की सुरक्षा के लिए मुस्लिम अंगरक्षक सैनिक थे, वे भी राजा द्वारा सूअर का मांस खाने के कारण दुःखी थे।"[15]

हमारे इतिहास को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने वाले इस तरह के तथ्यों को कभी महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया जाता। हम केवल मुसलमान शासकों द्वारा मन्दिरों को तोड़े जाने के तथ्यों को, बिना उनके उद्देश्यों को समझे, उजागर करते हैं। यद्यपि इतिहास तथ्यों पर आधारित होता है, फिर भी इतिहास लेखन में तथ्यों का अपनी इच्छा के अनुसार चयन गलत निष्कर्ष निकाल सकता है, भ्रम पैदा कर सकता है।

महमूद गजनवी के बारे में भी, इतिहासकारों ने बीच-बीच में से चुनींदा तथ्यों

को उजागर किया है। हम इस तथ्य पर जोर डालते हैं कि "उसने सोमनाथ का मंदिर नष्ट किया और लूटा। लेकिन हम इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डालते कि उसने अपनी सेना और प्रशासन में हिन्दुओं को उच्च पदों पर लगा रखा था। 'तारीखे-बायहकी' में उसके तिलक, सोंधी, राय हिन्द और हजरन जैसे हिन्दू सेनापतियों के नामों का वर्णन है। उसने एक हिन्दू कवि को भी अत्यधिक धन देकर पुरस्कृत किया और उसके दरबार में अनेक हिन्दू विद्वान् थे। उसके शासनकाल में जारी किए गए सिक्कों पर संस्कृत के श्लोक खुदे थे। इसके अतिरिक्त महमूद के पुत्र और उसके उत्तराधिकारी मसूद ने लाहौर के विद्रोही राजा अहमद नियाल्तीजीन को कुचलने के लिए तिलक नामक हिन्दू को सेनापति बनाया था। कुछ हिन्दू सेनापति गजनवी सम्राटों के विश्वासपात्र सलाहकार थे।"[16] इतिहासकार इस तथ्य को भी नहीं उभारते/उजागर करते कि हिन्दू राजाओं ने भी अनेक बुद्ध और जैन मंदिर नष्ट किए थे।

इतिहासकार इस बात का वर्णन नहीं करते कि हिन्दू पूजास्थलों को नष्ट करने वाले कुछ मुस्लिम शासकों ने कुछ मन्दिरों के लिए जागीरें भी प्रदान कीं। औरंगजेब पर बनारस के विश्वनाथ मन्दिर जैसे कुछ सबसे पवित्र मन्दिरों को तोड़ने का आरोप लगाया जाता है और यह सही भी है, लेकिन शायद ही कोई इतिहासकार इस बात का वर्णन करता है कि उसने स्वयं बनारस के मन्दिर सहित अनेक हिन्दू मन्दिरों को जागीरें दीं। हिन्दू मन्दिरों को जागीरें प्रदान करने वाले फरमान दस्तावेजों में मौजूद हैं, फिर भी उनको कहीं उद्धृत नहीं किया जाता। वी. एन. पांडे कहते हैं, "जब मैं इलाहाबाद नगरपालिका का अध्यक्ष था (1948-53), जमीन के दाखिल खारिज का एक केस मेरे सामने लाया गया। सोमेश्वरनाथ महादेव के मन्दिर की जमीन के बारे में विवाद था। महंत की मृत्यु के बाद दो व्यक्ति इस जमीन पर अपना हक जता रहे थे। एक दावेदार ने कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किए। ये दस्तावेज सम्राट औरंगजेब द्वारा जारी किए गए फरमान थे। औरंगजेब ने मन्दिर को एक जागीर और नकद दान प्रदान किया था। मैं यह सोच कर उलझन में पड़ गया कि कहीं ये दस्तावेज नकली न हों। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मन्दिरों को तोड़ने के लिए बदनाम औरंगजेब कैसे एक मन्दिर को जागीर इन शब्दों के साथ प्रदान कर सकता था कि 'जागीर मूर्ति की पूजा और भोग के लिए दी जा रही है'। औरंगजेब मूर्तिपूजा को समर्थन कैसे दे सकता था?'[17]

पांडे आगे कहते हैं, "मुझे यह विश्वास था कि दस्तावेज असली नहीं हैं। लेकिन किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले मैंने फारसी और अरबी भाषा के महान् विद्वान डॉ. सर तेज बहादुर सप्रु से राय लेना उचित समझा। मैंने वे दस्तावेज उनको दिखाए। दस्तावेजों की जांच करने के बाद डॉ. सप्रु ने बताया कि औरंगजेब के ये फरमान असली हैं। तब उन्होंने अपने मुंशी को वाराणसी के जंगमबाड़ी शिव मन्दिर के केस की फाइल लाने को कहा जिसकी कई अपीलें पिछले 15 साल से

इलाहाबाद हाईकोर्ट में लम्बित थीं। डॉ. सप्रु के सुझाव पर, मैंने देश के अनेक महत्त्वपूर्ण मन्दिरों के महन्तों से औरंगजेब द्वारा उनके मन्दिरों को प्रदान की गई जागीरों के यदि कोई फरमान उनके पास हों तो उनकी फोटो-प्रति भेजने के अनुरोध के पत्र लिखे। मुझे और ज्यादा आश्चर्य हुआ जब मुझे उज्जैन के महाकालेश्वर, चित्रकूट के बालाजी मन्दिर, गोहाटी के उमानंद मन्दिर और राजुजंय के जैन मन्दिर और उत्तरी भारत के अनेक मन्दिरों और गुरुद्वारों से औरंगजेब के फरमानों की प्रतियां प्राप्त हुईं। ये फरमान 1065 हिजरी (1659) से 1091 हिजरी (1685) के मध्य जारी किए गए थे।

औरंगजेब द्वारा जारी किए गए नए मन्दिरों के निर्माण पर पाबन्दी लगाने सम्बन्धी फरमान की बहुत चर्चा होती है। यह फरमान पहली बार 1911 में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। लेकिन पूरे फरमान को पढ़ने से यह इतना हिन्दू-विरोधी प्रतीत नहीं होता जितना कि इसका प्रचार किया जाता है। 15 जमादिल अव्वल 1065 हिजरी (10 मार्च, 1659) का फरमान इस प्रकार है—

''हमारे शाही कृपापात्र और विश्वासपात्र अबुल हसन जान लें कि हमारे दयालु और परोपकारी स्वभाव के अनुसार, हमारी सारी शक्ति और हमारी नीयत जनकल्याण के कार्य करने में और ऊंचे-नीचे, सभी वर्गों की हालत सुधारने में लगी है। हमारे पवित्र कानून के अनुसार, हमने फैसला किया है कि पुराने मन्दिरों को नष्ट नहीं किया जाएगा, लेकिन नयों का निर्माण नहीं किया जाएगा।

''हमारे न्याय के इन दिनों में, हमारे पास खबर पहुंची है कि कुछ लोग बनारस और इसके आसपास रहने वाले हिन्दू निवासियों और मन्दिरों के पुजारी ब्राह्मणों के कामों में दखलंदाजी कर रहे हैं और उन्हें तंग कर रहे हैं, और वे इन ब्राह्मणों को इनके प्राचीन मन्दिरों से निकालना चाहते हैं और उनको इस तरह से तंग किए जाने से यह पूरा (ब्राह्मण) समाज दुःखी है।

''इसलिए हमारा शाही फरमान है कि इस आदेश की प्राप्ति के बाद, तुम यह सुनिश्चित करोगे कि भविष्य में कोई भी व्यक्ति इन स्थानों पर रह रहे ब्राह्मणों और अन्य हिन्दू निवासियों को गैरकानूनी तरीके से परेशान नहीं करेगा ताकि ये पहले की तरह अपना कार्य करते रहें और मन की शांति के साथ हमारे भगवान-प्रदत्त साम्राज्य की तरक्की के लिए प्रार्थना करते रहें, ताकि यह (साम्राज्य) हमेशा के लिए कायम रहे। इस आदेश का तुरन्त पालन किया जाए।''[18]

इस प्रकार दूसरे शासकों की तरह, औरंगजेब के व्यक्तित्व के भी कई पहलू थे। वह केवल हिन्दू मन्दिरों का नाशक ही नहीं था। जैसा कि महमूद गजनी के बारे में भी रेखांकित किया गया है, मन्दिर केवल धार्मिक दृष्टिकोण से नष्ट नहीं किए गए थे। इससे अधिक उनसे आर्थिक और राजनीतिक जरूरतें पूरी होती थीं।

जैसाकि डी. डी. कौसाम्बी ने कहा है कि कश्मीर के राजा हर्ष ने योजनाबद्ध तरीके से मन्दिरों को ध्वस्त करके अपनी आर्थिक जरूरतें पूरी कीं। उसने मन्दिरों से प्राप्त सोने और चांदी को पिघलाकर उनके सिक्के बनाए। बहुत से मुस्लिम शासक हिन्दुओं को दुःखी (नाराज) करने के लिए मन्दिर नहीं तोड़ते थे बल्कि वे अपने प्रतिद्वन्द्वी हिन्दू राजाओं को अपमानित करने और उन्हें सजा देने के लिए अक्सर ऐसा करते थे। अक्सर उनका मकसद लोगों को यह संदेश देना होता था कि एक राजा जो अपने पवित्र पूजास्थल की रक्षा नहीं कर सकता, अपनी प्रजा की रक्षा कैसे करेगा अर्थात् एक राजा जो एक पवित्र पूजास्थल की रक्षा नहीं कर सकता, उसे राज करने का कोई अधिकार नहीं है। औरंगजेब तक ने भी उन्हीं मन्दिरों को नष्ट किया जो दुश्मन के क्षेत्र में स्थित थे और उन मन्दिरों की रक्षा की जो उसके मित्र (अधीन) राजाओं के क्षेत्र में थे। औरंगजेब के (अधीन) मित्र राजा जयसिंह के राजपूताना क्षेत्र में मन्दिरों को तोड़े जाने का कोई वर्णन नहीं मिलता। बल्कि उसने ऐसे मन्दिरों को जागीरें दीं। इस प्रकार इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उसने कुछ मन्दिरों को तोड़ा तो दूसरे अन्य मन्दिरों को जागीरें दीं। बहुत से हिन्दू शासकों ने भी ऐसा ही किया। मराठों ने भी अपने राजनीतिक शत्रु के क्षेत्र में मन्दिरों को नष्ट किया। टीपू के शासनकाल के दौरान जब मराठों ने उसके क्षेत्र पर आक्रमण किया, उन्होंने श्रीरंगापट्टनम के प्रसिद्ध मन्दिर को ध्वस्त किया और टीपू ने ही उसकी मुरम्मत करवाई। मराठा मन्दिर को नष्ट करके टीपू सुल्तान का अपमान करना चाहते थे और साथ ही मन्दिर का धन लूटना चाहते थे जबकि टीपू का उद्देश्य मन्दिर की रक्षा करना और उसमें हुए नुकसान की भरपाई करना था ताकि उसके प्रति उसकी प्रजा में दोबारा विश्वास पैदा किया जा सके। यह सोचना मूर्खता होगी कि इस प्रकार के कार्य राजा केवल अपने धार्मिक विश्वास के कारण करते थे। हमारे बहुत से इतिहासकार, विशेष तौर पर जो अपनी राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित हैं, इन धर्म से इतर उद्देश्यों का वर्णन नहीं करना चाहते और सीधे शासक के धार्मिक विश्वासों को इनका कारण मानते हैं। और यदि पूजास्थल तोड़ने वाले शासक का धर्म पूजास्थल वाला ही धर्म हो तो ऐसी सूचना को दबा दिया जाता है। औरंगजेब ने भी गोलकुंडा के तानाशाह के क्षेत्र में एक मस्जिद को नष्ट किया और इसके नीच दबाया गया धन खोद कर निकाल लिया जो कि सम्राट की **खारज** की अदायगी से बचने के लिए दबाया गया था। इस तथ्य को कभी उजागर नहीं किया जाता क्योंकि यह हमारे साम्प्रदायिक-इतिहासकारों के राजनीतिक उद्देश्यों को पूरा नहीं करता क्योंकि इससे प्रमाणित होता है कि जैसा कि औरंगजेब ने मस्जिदें भी नष्ट कीं, इसलिए मन्दिरों को नष्ट करने में औरंगजेब का उद्देश्य धार्मिक विश्वास न होकर कुछ और था।

विश्वनाथ मन्दिर का ध्वंस

औरंगजेब द्वारा बनारस के प्रसिद्ध मन्दिर के ध्वंस की काफी चर्चा है। अक्सर इसे औरंगजेब की धार्मिक घृणा के परिणाम के रूप में देखा जाता है। परन्तु डॉ. पट्टाभि सीतारमैया ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द **फीदर्स एण्ड द स्टोंस**' में अलग कहानी कही है। उनके अनुसार जब औरंगजेब बंगाल जाते हुए वाराणसी के पास से गुजर रहा था तो उसके काफिले में शामिल हिन्दू राजाओं ने प्रार्थना की कि यदि एक दिन विश्राम कर लिया जाए तो उनकी रानियां वाराणसी में गंगास्नान करके भगवान विश्वनाथ की पूजा कर सकेंगी। औरंगजेब सहमत हो गया। सेना ने वाराणसी से पांच मील दूर डेरा जमा लिया। रानियां वाराणसी गईं और गंगास्नान करके पूजा के लिए विश्वनाथ मन्दिर गईं। पूजा के बाद सभी रानियां वापस आ गईं लेकिन कच्छ की महारानी वापस नहीं लौटी। मन्दिर की छानबीन की गई, लेकिन रानी कहीं नहीं मिली। जब औरंगजेब को इसका पता चला तो उसे गुस्सा आया। उसने उच्च अधिकारियों को महारानी की खोजबीन के लिए भेजा। अन्ततः उन्हें दीवार में जड़ी गणेश की मूर्ति मिली जिसे इधर-उधर सरकाया जा सकता था। जब मूर्ति को सरकाया गया तो उन्होंने सीढ़ियां देखीं जो तहखाने में उतर रही थीं। उन्होंने रानी को रोते हुए पाया और उसकी इज्जत लूटी जा चुकी थी। राजाओं ने इस जघन्य अपराध के लिए कड़ी सजा देने की मांग की। औरंगजेब ने आदेश दिया कि जगह की पवित्रता भ्रष्ट हो चुकी है इसलिए भगवान विश्वनाथ को किसी दूसरे स्थान पर स्थापित किया जाए और मन्दिर को गिरा दिया जाए और महन्त को गिरफ्तार किया जाए और सजा दी जाए। पटना के भूतपूर्व संग्रहपाल डॉ. पी. एल. गुप्ता ने भी इसे समाहित किया।[19]

यह दर्शाता है कि मन्दिरों और पूजास्थलों को गिराने के धार्मिक आस्थाओं से अलग कारण थे। इसे डॉ. भगवानदास और अन्यों ने महसूस किया :

"इन मूर्ति-भंजन और तलवार के जोर पर धर्मान्तरण की कहानियां आमतौर पर हमारे इतिहास को ऐसा रंग देती हैं कि जैसे 8 शताब्दियों तक हिन्दुत्व और इस्लाम के बीच निरन्तर धार्मिक युद्ध चला। यहां तक कि वे लेखक भी जो इसकी राजनीतिक प्रकृति को समझते हैं, विषय का उनका विश्लेषण भी कमोबेश यही प्रभाव डालता है। मुस्लिम शासकों को क्रूर एवं विद्वेषपूर्ण माना जाता है जिनका मुख्य लक्ष्य इस्लाम का प्रसार था और इस लक्ष्य को प्राप्त करने का तरीका मन्दिरों को नष्ट करना और जबरदस्ती धर्मान्तरण था। इस तरह घटनाओं की वास्तविकता और राजनीतिक चक्र की रचनात्मक प्रवृत्तियों को धूमिल किया जाता है और एक गलत परिप्रेक्ष्य बना दिया जाता है जो पूरी तरह से दृष्टि को धुंधला कर देता है। इस विचार के खिलाफ जाने वाले समस्त तथ्यों एवं

जीवन की स्थितियों को ढंक दिया जाता है। मुस्लिम लेखकों ने मुसलमान शासकों द्वारा अपने शासन में मूर्तिपूजा की अनुमति देकर सच्ची भावना दर्शाने की कोशिश की, जबकि हिन्दू लेखकों ने हिन्दू शासकों में धार्मिक भावना की कमी बताई और कि उनमें विदेशियों से अपने धर्म व देश की रक्षा करने के लिए प्रभावी देशभक्ति नहीं थी।''[20]

यह सच नहीं है कि पूरे मध्यकालीन इतिहास में हिन्दू और मुसलमान में एक-दूसरे के बीच युद्ध चल रहा था। 19वीं शताब्दी के अन्त में हिन्दू और मुसलमान अभिजात वर्ग में यह द्वन्द्व शुरू हुआ। वास्तविकता तो यह है कि इतिहास में दोनों सम्प्रदायों में न तो केवल युद्ध हुए हैं और न ही केवल सद्भाव रहा है। इतिहास में दोनों हैं, द्वन्द्व भी है और सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध भी। इतिहास को उसकी समस्त जटिलताओं में देखा जाना चाहिए। एक दौर में उन्होंने कुछ समय के लिए परस्पर गठबन्धन किया और दूसरे दौर में एक-दूसरे से लड़े। उदाहरण के लिए राणा सांगा ने बाबर से इब्राहिम लोदी के खिलाफ गठबन्धन किया और दिल्ली पर दक्षिण और पश्चिम से हमला करने पर सहमत हुए जबकि बाबर उत्तर की ओर से हमला करेगा। इससे उन्होंने सोचा था कि इस तरह उनको सल्तनत मिल जाएगी। लेकिन गुजरात में समस्या के कारण राणा सांगा समझौते के वादे को पूरा नहीं कर सके और पानीपत के युद्ध में बाबर विजयी हुआ। सांगा के लिए जो बुरा हुआ वह यह कि बाबर ने भारत में रहने का और दिल्ली से शासन करने का निश्चय किया। गठबन्धन टूट गया और 1527 में सांगा ने बाबर के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी : वह हार गया और उसकी मृत्यु के बाद मेवाड़ रियासत धीरे-धीरे सिकुड़ कर बहुत छोटी रह गई।[21]

इस तरह यह गठबन्धन दो शासकों के बीच था और इस गठबन्धन के तुरन्त बाद युद्ध हुआ। इसमें हिन्दू या मुसलमान जैसा कुछ नहीं था। यह सीधे-सीधे सत्ता के लिए संघर्ष था। इस सत्ता-संघर्ष में केवल हिन्दू और मुस्लिम शासक ही शामिल नहीं थे बल्कि हिन्दू हिन्दू के विरुद्ध और मुस्लिम के विरुद्ध मुस्लिम शामिल थे। एक गिनती दर्शाती है कि मुगल शासक के विरुद्ध विद्रोह करने वालों में आधे से अधिक मुस्लिम राजकुमार या प्रान्तीय शासक थे। जब से बाबर ने लोदियों (पठान) को हराया तब से पठान हमेशा मुगलों के खिलाफ लड़े और उनका साथ दिया जिन्होंने मुगलों की चुनौती दी। इस तरह जब अकबर की सेनाओं ने राणा प्रताप को हराने के लिए हल्दी घाटी पर हमला किया तो एक पठान हाकिम सूर ने उसकी रक्षा की, हाकिम सूर राणा प्रताप की सेना का सेनापति था। दूसरी तरफ अकबर की सेना में मानसिंह के नेतृत्व में राजपूत थे। हाकिम सूर मुगल सेना के खिलाफ बहादुरी से लड़ा और उसकी मृत्यु के बाद ही मुगल सेना हल्दी घाटी को जीत सकी। हुमायूं और शेरशाह सूरी दोनों मुसलमान

थे लेकिन दोनों का युद्ध हुआ। इसी तरह औरंगजेब और शिवाजी के बीच के द्वन्द्व को धार्मिक द्वन्द्व की तरह चित्रित करना गलत है। यह सच है कि अन्य मुगल शासकों की अपेक्षा औरंगजेब अधिक रूढ़िवादी था, लेकिन वह एक राजनीतिज्ञ भी था। हिन्दू साम्प्रदायिकतावादी उसकी पूरी तरह निन्दा करते हैं तो मुस्लिम साम्प्रदायिकतावादी उसका गुणगान करते हैं। दोनों अतिवादी दृष्टिकोण हैं। औरंगजेब में न तो केवल बुराइयां थीं और न ही वह सन्त था। औरंगजेब शिवाजी से इसलिए नहीं लड़ा कि वह हिन्दू था और शिवाजी औरंगजेब से इसलिए नहीं लड़ा कि औरंगजेब मुसलमान था। शिवाजी ने औरंगजेब की सत्ता को चुनौती दी और द्वन्द्व बढ़ा।

शिवाजी और मुगलों के बीच द्वन्द्व पर प्रकाश डालते हुए उल्लेखनीय इतिहासकार सतीशचन्द्र कहते हैं, "शाहजी की परित्यक्ता पत्नी के पुत्र शिवाजी का प्रारम्भिक प्रयास पूना में अपने पिता की 'जागीर' की ओर था। उसकी बढ़ती आकांक्षाएं और उसकी गतिविधियों पर रोक लगाने की बीजापुर रियासत की अक्षमता ने मुगलों से तनाव पैदा किया। मुगल अपने राज्य की दक्षिण सीमा पर नए राज्य का उद्भव नहीं होने देना चाहते थे और शिवाजी की लूट के प्रति सन्देह में थे। शक्तिशाली मुगल शासन से टक्कर लेने में शिवाजी के सामने कठिन चुनाव था—वह स्वतन्त्रता के लिए लड़े या उनके साथ समझौता करे।"[22]

प्रारम्भ में शिवाजी मुगलों से द्वन्द्व नहीं करना चाहते थे। जैसा कि यदुनाथ सरकार ने रेखांकित किया है, "असल में उसने मुगलों के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार उसे धन और हैसियत के रूप में लाभ होना था। इस समझौते के अनुसार शिवाजी को 40 लाख 'हुनस' मिलने थे और बदले में उसे मुगल शासकों के प्रति वफादार और आज्ञाकारी होना था, सम्राट के अधीन रियासतों में लूट रोकनी होगी और जब उसे कहा जाएगा तो उसे दक्कन में अपनी सेवाएं प्रस्तुत करनी होंगी। शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को 5000 का 'मनसब' दिया गया और उसे शिवाजी के विश्वासपात्र सेनापति नेताजी के साथ दक्कन की 'सुबहदार' में शामिल होने दिया।"[23]

सरकार आगे कहते हैं, "....इस तरह क्षेत्र विशेष में शिवाजी को पूर्ण स्वायतत्ता दी गई थी। यदि बीजापुर अभियान सफल होता तो उसे पहले से काफी अधिक आमदनी होती। उसे व्यक्तिगत सेवा (दक्कन को छोड़कर) से भी छूट दी गई—यह ऐसा विशेषाधिकार था जो सिर्फ मेवाड़ के राणा के पास था, जो राजपूताना का सबसे बड़ा और पुराना शासक घराना था। शिवाजी के पुत्र को जो 'मनसब' दिया गया वह भी कम नहीं था, बल्कि मेवाड़ के राणा के बराबर था। परन्तु इससे शिवाजी सन्तुष्ट नहीं हुए क्योंकि ऐसे पद कई मराठा-मुखियाओं को दिए जा चुके थे, जिन्हें शिवाजी अपने से प्रतिष्ठा और सत्ता में कमतर समझते थे।"[24]

शिवाजी और औरंगजेब के बीच द्वन्द्व का कारण धर्म नहीं था, बल्कि शिवाजी की अन्य मराठा मुखियाओं से ऊंचा दर्जा प्राप्ति की आकांक्षा द्वन्द्व का मूल कारण थी। जब शिवाजी औरंगजेब के विरुद्ध लड़े तो पठान-मुसलमान उनके साथ थे। उनका व्यक्तिगत सचिव मौलवी हैदर अली खान था, जो कि औरंगजेब और अन्य मुगल अधिकारियों के साथ शिवाजी के गोपनीय पत्राचार को देखता था। उसका मुख्य तोपची भी मुसलमान पठान इब्राहिम गर्दी खान था। इसके साथ ही औरंगजेब मराठों के विरुद्ध राजपूत सेना और मिर्जा राजा जयसिंह की मदद से लड़ा, मिर्जा राजा जयसिंह औरंगजेब के बहुत नजदीक था। मुगल सम्राट ने जयसिंह को 'मिर्जा' की उपाधि दी थी। ये राजपूत औरंगजेब के वफादार सहयोगी थे। इस तरह औरंगजेब और शिवाजी के बीच द्वन्द्व को किसी भी तरह धार्मिक द्वन्द्व के रूप में नहीं देखा जा सकता। इससे भी अधिक औरंगजेब का जितना द्वन्द्व शिवाजी के नेतृत्व में मराठों से था, शायद उससे भी अधिक बीजापुर और गोलकुण्डा रियासतों से था, इन दोनों रियासतों के शासक मुसलमान थे। सतीशचन्द्र कहते हैं कि, "राजकुमार अकबर का विद्रोह दबाने के लिए औरंगजेब दक्कन में 1681 में गया। लेकिन राजकुमार की ओर से खतरा जल्दी ही समाप्त हो गया और सम्राट का मुख्य कार्य बीजापुर और गोलकुण्डा को जीतना हो गया।"[25]

यहां तक कि जब शिवाजी से उसका द्वन्द्व था तो औरंगजेब ने जो एक घाघ राजनीतिज्ञ था, शिवाजी के पौत्र और शम्भाजी के पुत्र, जिसे औरंगजेब ने मार दिया था, साहु की वफादारी पाने के लिए कोशिश की। शाहु जी को 7000 'मनसब' दिया गया जो 1678 में शम्भाजी को भी दिया गया था और राजा की उपाधि दी गई और बीजापुर और गोलकुण्डा के हारे हुए शासकों की तरह किले की कैद में बन्द कर दिया।

औरंगजेब की रूढ़िवादिता और धर्मान्धता के बारे में काफी लिखा गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह रूढ़िवादी मुसलमान था और कुछ हद तक धर्मान्ध भी। परन्तु अन्य मुगल सम्राटों की तरह वह भी राजा पहले था और मुसलमान बाद में। परसिवल स्पीयर[26] ने कहा कि असहनशीलता की विशिष्ट घटनाओं के बावजूद वह हिन्दुओं को नाराज करने से सचेत था। औरंगजेब के मूल्यांकन के बारे में स्पीयर को उद्धृत करना रोचक होगा :

"सत्ता में उसका उभार नाटकीय गृह-युद्ध के साथ अपने पिता की कैद और भाइयों, पुत्रों और भतीजों को खत्म करके हुआ, 1670 में बर्नियर के यात्रा-वृतान्तों के प्रकाशित होने से उसकी यूरोपीय छवि बनी, बाद के लोगों ने उसकी धर्मान्धता को अकबर की उदारता और उसकी मराठों के विरुद्ध असफलता को अकबर की राजपूतों पर सफलता के विपरीत बताया। उसे अकबर के बुद्धिमत्तापूर्ण शासन के उलट रूप में देखा गया और आज पाकिस्तान को छोड़कर उसकी यही तस्वीर है,

पाकिस्तान में उसे भारत का महानतम मुस्लिम शासक माना जाता है। यह भुला दिया जाता है कि उसने लगभग उतने ही समय शासन किया जितना कि अकबर ने (48 वर्ष के लगभग) और उसे जितना राज्य प्राप्त हुआ था उससे बड़ा शासन क्षेत्र उसने छोड़ा था। वास्तव में सोचा जाता है कि औरंगजेब का सत्ता उभार भयावह और नाटकीय था, उसकी नस्ल के और किसी का ऐसा नहीं था। औरंगजेब इसलिए सफल नहीं हुआ कि वह अधिक निर्दयी था बल्कि इसलिए कि वह अधिक कार्य-कुशल और राजनीति के खेल में अधिक सिद्धहस्त था....

हिन्दुओं से समान व्यवहार न करके उनके प्रति नरम रवैया रखने के अकबर के सिद्धान्त से उसको मतभेद था, परन्तु उसकी असहनशीलता उससे बहुत कम है जैसी इक्का-दुक्का कार्यों, जैसे कि बनारस में मन्दिर की जगह मस्जिद बनवाने आदि की घटना, को लेकर दंतकथाएं हैं।"[27]

औरंगजेब के बारे में स्पीयर के विचारों से कोई सहमत हो या न हो, लेकिन एक बात समझनी जरूरी है कि इतनी विशाल बहुसंख्यक हिन्दू आबादी वाले भारत में उनको जानबूझकर परेशान करके कोई शासक शासन नहीं कर सकता था। एक शासक को ऐसे मामलों में सावधान रहना पड़ता है। इतिहास को मात्र शासक के धर्म के अनुसार नहीं पढ़ा जाना चाहिए बल्कि उसके उद्देश्य और उसके स्वार्थ भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

साथ ही इतिहास को केवल शासकों तक सीमित नहीं रहना चाहिए। दुर्भाग्य से हमारे इतिहास में पूरा जोर शासकों पर है और शासित जनता को शायद ही इसमें स्थान मिला है। साथ ही, इतिहास में एक ही समय में कई-कई धाराएं होती हैं।

जब औरंगजेब रूढ़िवादी व्यवहार कर रहा था तो उसका भाई दारा शिकोह अत्यधिक उदार था। दारा शिकोह को औरंगजेब ने मरवा दिया। दारा शिकोह ने बनारस में संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वानों की संगति में उपनिषदों का अध्ययन किया और 'मजमा-अल-बाहरें', यानि दो महासागरों का मिलन, हिन्दूवाद और इस्लाम धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के इस महत्त्वपूर्ण काम में उसने दोनों धर्मों में काफी हद तक समानता है यह दर्शाने की कोशिश की। 'तत्त्वों पर विमर्श' अध्याय (अनासीर) में वे कहते हैं, "पांच तत्त्व हैं और ये पांचों एक ही ईश्वर की रचना हैं—पहला, 'परम तत्त्व' (अंसूर-ए-आजम) जो मनुष्य की आस्था है (शर) जिसे 'अरस-ए-अकबर' या 'महान आत्मा' कहा जाता है; दूसरा, वायु; तीसरा, अग्नि; चौथा, जल और पांचवां, मिट्टी।" और भारतीय भाषाओं में इनको पंचभूत कहा जाता है। इनके नाम हैं, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इस तरह दारा शिकोह ने दो महान् धर्मों की अवधारणाओं और शब्दावली में तुलना की। यदि दारा शिकोह दिल्ली की राजगद्दी पर बैठता तो वह बिल्कुल अलग नीतियां अपनाता। शायद वह अकबर की नीतियों

को दोहराता या फिर उदारवाद में ढालता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ।

हमें सूफी-संतों के योगदान को भी ध्यान में रखना चाहिए। वे हिन्दू और मुस्लिम जनता दोनों के करीब थे। हजारों की संख्या में लोग उनके पास आते थे। सूफी 'वहदात-अल-वुजूद' (जीव की एकता) के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। इस सिद्धान्त के काफी दूर तक धार्मिक प्रभाव पड़े। इसने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच दीवार को गिरा दिया। इस सिद्धान्त के संस्थापक मुहिरुद्दीन इब्न अरबी ने कहा कि हृदय एक मन्दिर है, एक चर्च है, एक मस्जिद है, और एक हवन कुण्ड है। इस तरह इस सिद्धान्त ने अलग-अलग धार्मिक पहचानों के तीखेपन को कुंद कर दिया। सूफी धार्मिक कर्मकाण्ड की अपेक्षा सेवा में और आध्यात्मिक कार्यों में अधिक विश्वास करते थे न कि शरीयत की औपचारिकताओं में (यद्यपि इन्होंने शरीयत को खारिज नहीं किया)। इस तरह सूफियों ने इस्लाम का भारतीय धर्मों से, मुख्यतः हिन्दू धर्म से समन्वय स्थापित किया।

सूफियों ने आमतौर पर भारतीय बोलियों में लिखा, केवल अरबी और फारसी में नहीं। इस तरह पंजाब के बाबा फरीद ने पंजाबी में लिखा और उनकी गिनती पंजाबी के प्रारम्भिक कवियों में होती है। गुरु नानक ने उनको 'आदि-ग्रन्थ साहब' में संकलित किया। इसी तरह महाराष्ट्र के सूफी कवि शेख मोहम्मद ने मराठी में लिखा और उस क्षेत्र में अत्यधिक लोकप्रिय हुए। डॉ. पी. वी. रानाडे के अनुसार, "उनकी रचनाओं को महाराष्ट्र के 'वारकरी सिलसिला' में पवित्र माना जाता है। प्रसिद्ध कवि और सन्त समर्थ रामदास ने शिवाजी महाराज को उन्हें आध्यात्मिक गुरु बनाने के लिए कहा और शेख मोहम्मद को नमन किया :

"शेख मोहम्मद की शान है। आपने संसार के गूढ़ रहस्यों को इस गहराई और इतने सरल ढंग से उद्घाटित किया कि कारण और सामान्य नैतिकता का तर्क दिया है। आपने समस्त संसार की पहचान और मूलभूत एकता को प्राप्त किया है। आपने हम पर अहसान किया है और हम पर इतना कर्ज है जिसे हम कभी उतार नहीं सकते, यहां तक कि यदि हम अपना शरीर और आत्मा को आपके चरणों में रख दें तो भी। मैं आपके चरणों की पवित्र धूल को उठाकर अपने माथे पर लगा लूं"[28] (रामदास के पद का अनुवाद जो वेन्द्रे ने उद्धृत किया)।

शेख मोहम्मद ने मराठी में कई काव्य-ग्रंथ लिखे जैसे योग संग्राम, पवनविजय, आचार-बोध, विचार-बोध आदि। डॉ. रानाडे के अनुसार, "शेख मोहम्मद का काव्य 'ताहिद' के सिद्धान्त के इर्द-गिर्द घूमता है जो मराठी और संस्कृत 'अद्वैत' के बराबर है। 'ताहिद' या 'अद्वैत' दर्शन की दो जुड़वां विशेषताएं हैं—मनुष्य का संसार से विलगाव और दोनों में सम्बन्ध स्थापित करना। यह काजियों, मौलानाओं, संन्यासियों, जोगियों, जंगमों, बैरागियों, मुल्लों और पण्डों के मिथ्या और पाखण्डी कर्मकाण्डी विविधता को समाप्त करती थी। शेख मोहम्मद ने ऐसे ढोंगी ईश पुरुषों को नहीं

बख्शा, उनकी आलोचना की और लगभग प्रत्येक रचना में इनकी खिल्ली उड़ाई।''[29] महाराष्ट्र में खुलदाबाद सूफी-सन्तों का केन्द्र था और शिवाजी की दादी मौलोजी ने शाह शरीफ जी से आशीर्वाद लिया और यहां रहीं।

शेख निजामुद्दीन औलिया महान् सूफी सन्त थे जो सल्तनत काल में दिल्ली में बस गए थे। निजामुद्दीन के रहस्यवादी दर्शन का आधार ईश्वर-चेतस व्यक्तित्व का निर्माण था। उनकी मान्यता थी कि जो अपने हृदय में ईश्वर के प्रति प्रेम रखता है उसके हृदय से पाप मिट जाएंगे। उनके लिए नैतिकता, बौद्धिकता और सौन्दर्य के अनुभव में ईश्वर मौजूद है। जिस तरह दैवीय प्रकृति मनुष्यों-मनुष्यों में भेद नहीं करती उसी तरह रहस्यवादी भी संस्कृति, नस्ल, भाषा और क्षेत्र आदि की सीमाओं को लांघ जाएगा। धरती पर सभी मनुष्य परमात्मा के बच्चे हैं और ये हमारा कर्तव्य है कि हम उनसे प्रेम, सहानुभूति से व्यवहार करें। शेख निजामुद्दीन औलिया ने इस अवधारणा को सामाजिक सम्बन्धों में लागू किया।[30]

शेख निजामुद्दीन का मानना था कि किसी मानव के हृदय को पीड़ा देने वाला व्यक्ति आध्यात्मिकता में पारगंत नहीं हो सकता।[31] उन्होंने शेख अबू शैद अबुल खैर के विचारों को बताया कि यद्यपि ईश्वर तक पहुंचने के अनेकों तरीके हैं, लेकिन मनुष्य के हृदय के लिए खुशियां प्रदान करना उससे मिलन का भरोसेमंद तरीका है।[32]

इसी तरह काफी सूफी मानते हैं कि अल्लाह ने अपने पैगम्बर को हिन्दुस्तान में भी भेजा जैसा कि वे पवित्र कुरान में वादा करते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए मार्गदर्शक भेजा है। मजहर जान-ए-जाना जैसे सूफी मानते हैं कि वेद ईश्वर की पुस्तकें हैं और राम और कृष्ण दो महान हस्तियां हैं जो ईश्वर के पैगम्बर हैं। उनका यह भी मानना है कि हिन्दू उस तरह के मूर्ति पूजक नहीं हैं जैसे कि इस्लाम-पूर्व अरब थे और इसलिए दोनों के बीच भेद करना चाहिए। इस तरह भारत के हिन्दुओं की तुलना अरब के 'काफिरों' से नहीं की जा सकती। इस तरह वे कहते हैं कि, ''वेदों में अच्छे और बुरे कामों के बारे में दैवीय शिक्षाएं हैं यानि विधि और निषेध, क्या करना चाहिए और क्या नहीं, और भूत व भविष्य के बारे में हैं।''

उन्होंने हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा की सूफियों के व्यवहार से तुलना करते हुए कहा, ''हिन्दुओं ने अपनी मूर्तियां और चित्र मनुष्य के रूप में बनाई हैं इनके माध्यम से ध्यान एकाग्रचित करने के दौरान उनका इनसे आध्यात्मिक रिश्ता जुड़ जाता है जिससे वे इस जीवन और उसके बाद की जरूरतों को पूरा करने की आशा करते हैं। उनका यह व्यवहार सूफियों की ध्यान-योग पद्धति के समान है जो 'पीर' के रूप में ध्यान में रहता है और जिसे आध्यात्मिक गुरु के रूप में माना जाता है और इससे लाभ लिए जा सकते हैं। इनमें केवल इतना अन्तर है कि सूफी अपने आध्यात्मिक गुरु का भौतिक रूप नहीं बनाते।[33]

इसी तरह कुछ गुजराती सूफियों ने इस्लाम के पैगम्बर मुहम्मद का कृष्ण के अवतार के रूप में और मोहम्मद के दामाद और उसके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी अली का विष्णु के अवतार के रूप में वर्णन किया। इस्माइली ख्वाजाओं ने अली को विष्णु का दशम अवतार माना। गुजरात के इन सूफियों ने गुजराती भाषा में इस दृष्टि से कविताओं की रचना की। आम जनता के भी कोई निहित स्वार्थ नहीं थे और वे एक-दूसरे से खुले रूप में मिले व एक-दूसरे के विश्वासों का आदर किया। उन्होंने विभिन्न विश्वासों व धार्मिक तत्त्वों को लेकर एक नयी संस्कृति पैदा की। काफी संख्या में नए मानवतावादी मत जैसे सिख पंथ, कबीर पंथ, परनामी पंथ और कुछ अन्य पंथ भी अस्तित्व में आए। सम्पूर्ण मध्यकालीन इतिहास हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच तनाव से दूर था। ऐसा निष्कर्ष निकालना कि दोनों सम्प्रदायों में तनाव था, अवैज्ञानिक और गलत होगा।

दृढ़ता से कहा जा सकता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में तनाव के बजाय सहयोग अधिक था। यह सहयोग केवल धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था। बल्कि संगीत, चित्रकला, स्थापत्य और अन्य ललित कलाओं के क्षेत्र में भी था, हिन्दू व मुसलमानों के बीच एक रचनात्मक संवाद स्थापित हुआ। काफी मुसलमानों ने रामायण और महाभारत जैसे हिन्दू क्लासिक ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद किया और इन क्लासिक ग्रन्थों की प्रशंसा में अरबी में पद लिखे। रसखान, अब्दुर रहीम खान-ए-खाना इत्यादि हिन्दी के कवि थे। मुसलमानों के आने के बाद भारत में साझी कला और संस्कृति की कई धाराएं हैं। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में इस्लाम का आगमन केवल मुहम्मद-बिन-कासिम के आक्रमण से ही नहीं हुआ बल्कि इस्लाम काफी पहले केरल में व्यापारियों के माध्यम से भारत आया।

इतिहास एक अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है और इसमें बहुत-सी धाराएं होती हैं। इसलिए इतिहास के प्रति समग्र दृष्टि अपनानी चाहिए न कि चुनिंदा दृष्टि। जो अपनी राजनीतिक जरूरतें पूरी करने के लिए चुनिंदा दृष्टि अपनाता है वह इतिहास से अन्याय करता है। वह उनसे बदला ले रहा है जो किसी भी तरह से इसके प्रति जवाबदेह नहीं है कि उन शासकों ने क्या किया और क्या नहीं किया, जिनका धर्म भी इस्लाम था।

सन्दर्भ

1. द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया—ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन, द पोस्थमॅस पेपर्स ऑफ दी सर एच. एम. इलियट; सं. प्रो. जॉन डाऊसन। तुजके-ए-बाबरी, [कलकत्ता, (1963), तीसरा संस्करण], पृ. 4-5
2. योगेन्द्र मिश्रा, द हिन्दू साहीस ऑफ अफगानिस्तान एंड पंजाब—ए फेज ऑफ इस्लामिक

एडवांस इन इण्डिया (पटना, 1972), पृ. 163-64
3. रोमिला थापर, विपिन चन्द्र और हरवंस मुखिया, कम्युनलिज्म इन राइटिंग ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1970
4. रोमिला थापर, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पेंगुइन बुक्स, 1966, वाल्यूम I, पृ. 232
5. अल कजविनी, अनु. इलिइट और डाऊसन, द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड वाइ इट्स ओन हिस्टोरियन, वाल्यूम I, पृ. 97
6. तारीखे-फरिश्ता, उर्दू अनुवाद–अब्दुल हाय ख्वाजा, देवबन्द, 1983, वाल्यूम I, पृ. 113
7. एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1965
8. रोमिला थापर, ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ. 281
9. मोहम्मद हबीब एण्ड खालिक अहमद निजामी, (सं.) एक कम्प्रेहेंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, वाल्यूम V, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस, 1970, पृ. 364-65
10. सैयद नुरुल हसन, 'एस्पेक्ट्स ऑफ स्टेट्स एण्ड रिलीजन इन मेडिविल इण्डिया', आई. एच. कुरैशी मेमोरियल लैक्चर, मार्च 20-21, 1991, पृ. 7
11. एस. नुरुल हसन, वही, पृ. 6
12. मुहम्मद हबीब एण्ड खालिक अहमद निजामी, द दिल्ली सल्तनत, पृ. 365
13. ई. एच. कार, व्हॉट इज हिस्ट्री? पेंगुइन बुक्स, 1972, पृ. 11
14. ई. एच. कार, वही
15. डी. डी. कोसाम्बी, द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एन्शियेंट इण्डिया इन हिस्टोरिकल आऊटलाईन, (दिल्ली 1972) पृ. 186
16. देखें युसुफ हुसैन, इण्डो-मुस्लिम पोलिटी (टर्को-अफगान पीरियड), शिमला, 1971, पृ. 48-49
17. बी. एन. पाण्डे, 'द फरमानस ऑफ औरंगजेब ऑन हिन्दू टेम्पल', इन द इस्लामिक टाइम्स, वाल्यूम 2, नं. I, जुलाई-सितम्बर, 1993, पृ. 17
18. वही पृ. 18
19. वही, पृ. 19
20. भगवानदास एण्ड अदर्स, रूट्स ऑफ कम्यूनल पोलिटिक्स, अरनोल्ड हिन्मन, 1976, दिल्ली, पृ. 105 (यह 1931 के कानपुर के दंगों की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जांच समिति की रिपोर्ट है जिसकी अध्यक्षता भगवान दास ने की और पुरुषोत्तम दास टण्डन, ख्वाजा अब्दुल माजिद, टी. ए. के शेरवानी, जफरुल-मलिक और पं. सुन्दरलाल ने एकत्रित किया।)
21. रोमिला थापर, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ. 285
22. सतीशचन्द्र, पार्टीज़ एंड पोलिटिक्स एट मुगल कोर्ट 1707-1740, (दिल्ली, 1972), पृ. XI
23. जे. एन. सरकार, हाउस ऑफ शिवाजी (कलकत्ता, 1940), पृ. 117-18
24. जे. एन. सरकार, वही, पृ. 113, सतीश चन्द्र, पार्टीज़ एण्ड पोलिटिक्स एट दी मुगल कोर्ट, पृ. XI
25. सतीशचन्द्र, वही, पृ. XI
26. परसीवल स्पीयर, ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पेंगुइन बुक्स, 1968, पृ. 71
27. परसीवल स्पीयर, वही पृ. 55-56
28. डॉ. पी. वी रानाडे, 'वर्नाकुलर ग्लॉसरी ऑफ वेदान्ता एण्ड तससवुफ ऑफ शेख मोहम्मद' इन असगर अली इंजीनियर (सं) सूफीज्म एंड कम्यूनल हारमोनी (जयपुर, 1991) पृ. 73

29. पी. वी. रानाडे, वही
30. दुरार-ए-निजामी, एम. एस ऑफ खालिक अहमद निजामी, द लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ शेख निजामुद्दीन औलिया 1991, दिल्ली, पृ. 149
31. दुरार-ए-निजामी, वही
32. सैयद मुहम्मद बिन मुबारक किरमानी, सियार-उल औलिया 1885, दिल्ली, खालिक अहमद निजामी, पृ. 149
33. रशीदुद्दीन खान, बेवीलदरेद इंडिया—आइडेंटिटी, प्लुरलिज्म, डिस्कार्ड, 1994, दिल्ली, पृ. 176 व 177

अध्याय 2

अंग्रेजी शासन और साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता आधुनिक काल की परिघटना है, मध्यकाल की नहीं। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया है कि मध्यकालीन राजा और शासक किसी धर्म से नफरत के कारण पूजाघरों को नष्ट नहीं करते थे बल्कि अपने राजनीतिक स्वार्थों के कारण ऐसा करते थे। मध्यकाल की विशिष्टता धार्मिकता थी, न कि साम्प्रदायिकता। धर्म साम्प्रदायिकता का मूल कारण नहीं है, यह केवल औजार है। साम्प्रदायिकता के मूल में राजनीति है। चूंकि धर्म में भावना का पुट होने के कारण लोगों को एकत्रित करने की क्षमता है, इसलिए इसे एक औजार के रूप में प्रयोग किया जाता है। साम्प्रदायिकता के जन्म के लिए मध्यकाल को जिम्मेवार मानना गलत होगा। मध्यकाल के लोग साम्प्रदायिक की अपेक्षा धार्मिक अधिक थे। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति साम्प्रदायिक नहीं हो सकता और एक साम्प्रदायिक व्यक्ति धार्मिक नहीं हो सकता। धर्म की (सच्चे अर्थों में) प्रकृति पारलौलिक होती है। इस कारण यह तमाम सांसारिक स्वार्थों का अतिक्रमण कर जाता है, जबकि साम्प्रदायिकता सांसारिक स्वार्थों (विशेषकर राजनीतिक और आर्थिक) के बिना अस्तित्व में ही नहीं रह सकती। साम्प्रदायिक व्यक्ति (या दल) पर अपने या अपने सम्प्रदाय के एक वर्ग के स्वार्थों का विशेषकर उच्च वर्ग के स्वार्थों का जुनून सवार होता है, इसलिए वह धर्म की कल्याणकारी शिक्षाओं की बहुत कम परवाह करता है। इस तरह साम्प्रदायिक व्यक्ति धार्मिक नहीं होता यद्यपि वह ऐसा होने का ढोंग करता है। इसी तरह चूंकि एक धार्मिक व्यक्ति अपने या अपने वर्ग के हितों के प्रति चिन्तित नहीं होता, लेकिन धर्म के विश्वासों के पारलौकिक या आध्यात्मिक पक्षों से गहराई से जुड़ा होता है इसलिए वह साम्प्रदायिक नहीं हो सकता। धार्मिकता के इस रूप के दो सर्वोत्तम उदाहरण महात्मा गांधी और मौलाना अबुल कलाम आजाद हैं। अपने-अपने तरीके से दोनों गहरे धार्मिक थे और फिर भी दोनों पूर्णतः साम्प्रदायिकता विरोधी थे। दोनों ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का समर्थन किया। दूसरी ओर, इसी तरह वीर सावरकर और मुहम्मद अली जिन्ना पूरी तरह आधुनिक और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में थे, फिर भी दोनों ने धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का विरोध

किया, क्योंकि इन पर अपने-अपने सम्प्रदाय के उच्च वर्गों के राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों का जनून सवार था। इससे स्पष्ट है कि धार्मिकता और साम्प्रदायिकता दो अलग-अलग श्रेणियां हैं। पहली पारलौकिक और आध्यात्मिक है तो दूसरी राजनीतिक-आर्थिक।

इस तरह साम्प्रदायिकता एक आधुनिक परिघटना है, जो दो प्रमुख सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक सत्ता और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के कारण पैदा हुई है। यहां सवाल उठता है कि क्या मध्यकालीन समाज में ऐसी प्रतिस्पर्धा नहीं थी? यह अंग्रेजी शासन के दौरान ही क्यों उभरी? इसके लिए हमें मध्यकाल और औपनिवेशिक समय की अर्थव्यवस्था व राजनीति को समझना जरूरी है। मध्यकाल की राजनीति और अर्थव्यवस्था दोनों ही प्रतिस्पर्धात्मक नहीं थीं। लोकतान्त्रिक व्यवस्था की तरह, मध्यकाल में शासकों का चुनाव नहीं होता था, बल्कि वे तलवार के बल पर सत्ता पर काबिज होते थे। जो सत्ता हथिया लेता था वह जाति या सम्प्रदाय को दरकिनार करके लोगों से वफादारी की आशा करता था। मध्यकाल में 'नमक हलाल' (स्वामी के प्रति वफादार) और 'नमक हराम' (स्वामी के प्रति वफादार न होना) शब्द वफादारी के सूचक थे। इन शब्दों के माध्यम से राजा और सामन्त वफादारी की अपेक्षा करते थे। दो या दो से अधिक समुदायों के वजूद के बावजूद भी उनके प्रतिनिधियों में सत्ता के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं थी। वे राजा के प्रति वफादार रहते थे और अपने प्रति सभी धार्मिक समूहों की वफादारी बरकरार रखने के लिए मध्यकालीन शासक राजा आमतौर पर सभी धार्मिक समूहों के प्रति आदर भाव रखते थे।

इसी तरह सामन्ती अर्थव्यवस्था भी प्रतिस्पर्धात्मक नहीं थी। आमतौर पर सामन्ती उत्पादन स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए होता था, क्षेत्र से बाहर के बाजार में बेचने के लिए नहीं। इस कारण प्रतिस्पर्धा का सवाल ही नहीं उठता था। इसके अतिरिक्त सामन्ती समय में, धर्म से वैधता प्राप्त जाति-आधारित श्रम विभाजन था। ऐसी उत्पादन व्यवस्था में एक जाति या सम्प्रदाय दूसरी जाति या सम्प्रदाय से प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था। दूसरी ओर वे एक-दूसरे के पूरक भी थे। इसके साथ ही सरकारी नौकरियां भी उन्हीं को मिलती थीं जो राजा के लिए लड़ते थे। राजदरबारों में नौकरी धार्मिक कारणों से नहीं, बल्कि वफादारी के आधार पर बांटी जाती थीं। मध्यकाल में, आधुनिक समय की तरह नौकरशाही की भर्ती जैसी कोई स्थिति नहीं थी। वास्तव में, निम्न जातियों के लोग चाहे वे किसी भी धर्म के हों, राजदरबारों में उच्च पदों पर नहीं थे। ठीक इसी तरह धर्मान्तरण से मुसलमान बने लोगों को राजदरबारों में उच्च पदों पर स्थान नहीं मिलता था, क्योंकि इनमें भी अधिकतर निम्न जातियों से धर्मान्तरित हुए थे। सल्तनत-काल के इतिहासकार जिआउद्दीन बरनी ने इन नए मुसलमानों का वर्णन

इस तरह किया, "कुत्ते और सूअर उच्च शिक्षा के योग्य नहीं हैं।" इसी तरह उसने इनके लिए केवल इतनी ही शिक्षा की संस्तुति की कि वे अपने धार्मिक फर्ज पूरे करने के लायक हो जाएं। इसके साथ ही मुसलमानों में अशरफ और अज़लफ (उच्च और निम्न) की अवधारणा भी प्रचलित थी। यदि नए मुसलमान उच्च वर्ग से धर्मान्तरित न हों तो आमतौर से इनकी गिनती निम्न श्रेणी में ही होती थी।

अंग्रेजों के आने से भारत के राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। आधुनिक शब्दजाल का प्रयोग करें तो राजनीति और अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक बदलाव आया। औपनिवेशिक संरचना ने सामन्ती संरचना का स्थान लिया। औपनिवेशिक शासन चाहे कितना ही निन्दनीय क्यों न हो, लेकिन यह सामन्ती राजनीति और अर्थव्यवस्था की तुलना में अधिक लोकतान्त्रिक व प्रतिस्पर्धात्मक था। यद्यपि अपने आप में यह वरदान नहीं था, लेकिन इसने लोकतान्त्रिक शासन, धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था आदि आधुनिक अवधारणाओं से हमारा परिचय तो करवाया ही है। वास्तव में, चुनावों के माध्यम से (यद्यपि सीमित मताधिकार आधारित) लोकतान्त्रिक राजनीति की अवधारणा ने, सत्ता में हिस्सेदारी को लेकर दो प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों में विवाद को जन्म दिया। इसलिए जब 1883 में वायसराय कार्यकारिणी परिषद में पहली बार स्थानीय स्वशासन बिल प्रस्तुत किया गया तो आधुनिक मुस्लिम सुधारक सर सैयद अहमद खान ने इसका विरोध किया। इस विरोध का आधार दो सम्प्रदायों के बीच नगरपालिकाओं में सीटों की संख्या के आवंटन को लेकर था। सर सैयद ने परिषद को बताया :

"चुनावों के जरिये प्रतिनिधित्व की व्यवस्था का अर्थ है बहुसंख्यक जनसंख्या के विचारों और हितों का प्रतिनिधित्व....भारत जैसे देश में जहां अभी तक जातिगत भेदभाव मौजूद है, जहां विभिन्न जातियों में मेलजोल नहीं है, जहां अभी तक धार्मिक भेदभाव भी उग्र है, जहां आबादी के सभी वर्गों ने शिक्षा में आधुनिक अर्थों में बराबर या अनुपातिक तरक्की नहीं की है, वहां स्थानीय निकायों और जिला परिषदों में विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व के नाम पर विशुद्ध व सरलीकृत रूप में चुनाव सिद्धान्त लागू करने से आर्थिक मसलों के अतिरिक्त कहीं गम्भीर समस्याएं जनम लेंगी, मेरा ऐसा मानना है। जब तक धर्म और जातिगत भिन्नता भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बनी रहेंगी और प्रशासन व राष्ट्र-कल्याण के मसलों को व्यापक स्तर पर प्रभावित करती रहेंगी, तब तक विशुद्ध और सरलीकृत रूप में चुनाव व्यवस्था को अपनाया जाना खतरे से खाली नहीं होगा। बहुसंख्यक समुदाय अपेक्षाकृत छोटे समुदाय के हितों को पूर्णतः नजरंदाज करेगा तथा अज्ञानी जनता सरकार को ऐसे कदम उठाने का जिम्मेवार मानेगी, जिनसे धर्मों और मतों-पंथों के भेद पहले से कहीं अधिक उग्र हो सकते हैं।"[1]

इस तरह सीमित लोकतान्त्रिक पहलकदमी ने विभिन्न जातियों और समुदायों के अभिजात वर्ग के बीच द्वन्द्व उत्पन्न किया। मुस्लिम शुराफा (अभिजात) का प्रतिनिधित्व करने वाले सर सैयद ने इस द्वन्द्व को समझा और विधान परिषद् में बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त किया। लेकिन उनकी ये आशंकाएं व्यक्तिगत नहीं थीं, बल्कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के अभिजात वर्ग की थीं। अल्पसंख्यकों को हमेशा यह आशंका रहती है, जो कुछ स्वाभाविक भी है, कि बहुसंख्यक समुदाय के प्रभुत्व में उन्हें एक ओर सत्ता में उचित हिस्सा नहीं मिलेगा और दूसरी ओर उनकी धार्मिक-सांस्कृतिक परम्पराएं हमले का शिकार होंगी। बहुसंख्यक समुदाय उस पर अपनी संस्कृति थोपेगा। यही आशंका अन्ततः पाकिस्तान निर्माण का आधार बनी।

सर सैयद के विचार आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति की ओर संकेत कर रहे हैं। यह चर्चा का विषय हो सकता है कि सर सैयद अहमद खान साम्प्रदायिक थे या नहीं। अब तक उनका दृष्टिकोण कठोर नहीं था। उनकी देशभक्ति पर सवाल नहीं उठाया जा सकता। उन्होंने भारत का वर्णन एक दुल्हन के रूप में किया है, जिसकी हिन्दू और मुसलमान दो आंखें हैं और जरा-सा भेंगापन (तिरछापन) भी दुल्हन की सुन्दरता को समाप्त कर सकता है। इसलिए दोनों के बीच किसी तरह का नकारात्मक भेदभाव भारत के संतुलन पर बुरा प्रभाव डाल सकता है, लेकिन काफी बाद में उनका साम्प्रदायिक रवैया कठोर हो गया, विशेषकर 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक के दौरान।

19वीं शताब्दी में सरकारी नौकरियों में हिस्सेदारी के सवाल ने भी हिन्दू और मुस्लिम अभिजात वर्ग में कटु विवाद पैदा किया। वास्तव में संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश), जहां अधिकांश नियुक्तियां जमींदार घरानों से होती थीं, के मुसलमान अच्छी हालत में थे, क्योंकि सरकारी और राजदरबार की भाषा यहां की थी, यद्यपि यह सिर्फ मुसलमानों द्वारा नहीं बोली जाती थी। उदाहरण के लिए आगे दी गई तालिका 1882 में उत्तर पश्चिमी प्रान्तों व अवध में हिन्दुओं और मुसलमानों की नौकरियों से सम्बन्धित आंकड़े देती है।

इस तरह संयुक्त प्रान्त में सरकारी नौकरियों में मुसलमानों की स्थिति अच्छी थी। हालांकि बंगाल में ऐसी स्थिति नहीं थी, जैसा कि डब्ल्यू. डब्ल्यू. हंटर ने अपनी पुस्तक 'द इण्डियन मुसलमान' में रेखांकित किया है। यह पुस्तक 1876 में लन्दन में प्रकाशित हुई और 1969 में दिल्ली से पुनर्मुद्रित हुई। हंटर ने कहा कि अंग्रेजों ने मुसलमानों के प्रति भेदभाव किया, पश्चिमी शिक्षा से लाभ उठाने की गति धीमी थी जिसके फलस्वरूप वे नौकरियों व आर्थिक प्रगति की स्पर्धा में पीछे रह गए। हंटर ने बंगाल और कुछ अन्य प्रान्तों के आधार पर जो कहा था उसका सामान्यीकरण करना ठीक नहीं था। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के आंकड़े 1886-87 के दौरान

1882 में उत्तर-पश्चिमी फ्रंटियर प्रान्त और अवध में सरकारी सेवाओं में हिन्दू और मुसलमान

	कुल मुस्लिम	कुल हिन्दू	कुल रोजगार में मुस्लिमों का प्रतिशत
कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर के पद के नीचे अधिकारी	5605	7776	42
पुलिस	9257	16061	37
जन निर्देश	2097	5596	27
डाक विभाग	219	2095	09
अन्य सरकारी विभागों में	2310	3193	42
अवध और उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के न्यायालय में न्यायाधीश	47	37	56
कुल	18828	35302	35

स्रोत :—"एब्सट्रेक्ट्स ऑफ रिटर्न सब्मिटेड बाई हेड ऑफ डिपार्टमेंट एण्ड ऑफिसर्स कन्सल्टड", एन डब्ल्यू पी. एण्ड. पी. जी. ए. डी. जून, 1983, आई ओ आर और ब्रिटिश इण्डिया में मुसलमानों की शिक्षा व सरकारी सेवा सम्बन्धी पत्राचार से (कलकत्ता, 1886), पृ. 287[2]

उत्तर-पश्चिमी राज्यों और अवध में डिप्टी कमिश्नर से नीचे नागरिक सेवाओं में मुसलमानों की बेहतर स्थिति को दर्शाते हैं। 90 हिन्दुओं के मुकाबले 51 मुस्लिम डिप्टी कलेक्टर थे, तहसीलदार 122 मुसलमान तो 101 हिन्दू, न्यायायिक सेवाओं में 15 मुसलमान न्यायाधीश तो 20 हिन्दू न्यायाधीश, मुंशियों में 47 मुसलमान और 51 हिन्दुओं का अनुपात था। (स्रोत : पी. एस. सी. 1886-7, रिपोर्ट पी. जी. 1888, XLVIII, पृ. 55)

इस तरह 19वीं शती में, भारत में सरकारी नौकरियां प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा ने भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया। भाषा-विवाद ने आग में घी का काम किया। रोबिन्सन ने इसका सारगर्भित वर्णन किया है, "उर्दू-भाषी अभिजात को खतरे।" बेशक उर्दू-भाषी अभिजात वर्ग में हिन्दू भी शामिल थे, लेकिन इसमें मुख्य रूप से मुसलमान ही प्रभावित हुए। मुसलमानों में सबसे ज्यादा प्रभावशाली लोग जमींदार और ताल्लुकेदार थे। औपनिवेशक सत्ता स्थापित होने के बाद समाज में संरचनात्मक बदलाव हुए जिस कारण पुराने वर्ग समाप्त होने शुरू हुए और नए वर्ग उभरने शुरू हुए। फ्रांसिस रोबिन्सन ने जोर देकर इस पर सटीक टिप्पणी की है—

"19वीं शती के अन्तिम चरण में उर्दू-भाषी अभिजात वर्ग कई कारणों से धीरे-धीरे अपना महत्त्व खो रहा था। इनमें अधिकतर कारण अंग्रेजी शासन के प्रभाव स्वरूप थे। सरकार राजनीतिक कारणों से जमींदार वर्ग को मजबूत करना चाहती थी; डाक, सड़क और पुलिस पर नियन्त्रण पहले स्थानीय रईसों के हाथ में था, लेकिन ज्यों-ही नौकरशाही ने स्थानीय डाक, सड़कें और पुलिस पर नियन्त्रण करना शुरू किया तो जमींदार वर्ग की सत्ता का निरन्तर ह्रास हुआ, यद्यपि नौकरशाही इस वर्ग की मदद के लिए बनी थी। इस समय रईसों की हैसियत के सामने एक चुनौती और थी। संचार के विकास, नकदी फसलों की वृद्धि, कानून सख्ती से लागू करने पर व्यापार में वृद्धि से व्यापारिक व्यक्ति और अधिक अमीर होते जा रहे थे। कई क्षेत्रों में उन्होंने जमींदारों से केवल स्पर्धा ही नहीं की, बल्कि उनकी जमीनें भी खरीदना शुरू कर दिया। जमींदारों पर इस दबाव ने परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार की जो उर्दू-भाषी अभिजात वर्ग पर संकट के रूप में था, विशेष रूप से उर्दू-भाषी मुस्लिम अभिजात वर्ग के लिए। सरकार ने शिक्षा के विकास, पाश्चात्य ज्ञान और क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया, इससे अभिजात वर्ग के धार्मिक विश्वासों, सामाजिक रीति-रिवाजों और राजनीतिक हैसियत पर संकट आया। नौकरशाही में किए गए सुधारों से सरकारी कार्यालयों में इनकी शक्ति कम हुई। स्थानीय शासन में चुनाव के सिद्धान्त ने इनका प्रभाव कमजोर कर दिया, विशेषकर शहरों में। ये परिवर्तन हिन्दू पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के साथ-साथ चल रहे थे, जिसने अभिजात वर्ग की राजनीति और सांस्कृतिक सर्वोच्चता को चुनौती दी।"[3]

फ्रांसिस रोबिन्सन ने उर्दू-भाषी अभिजात वर्ग पर और विशेष रूप से मुस्लिम अभिजात वर्ग पर खतरों के लगभग सभी कारण गिनाये। भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना से पहले मुसलमान केवल राजनीतिक शासक ही नहीं थे, बल्कि उनका भाषायी और सांस्कृतिक वर्चस्व भी था। यह हमेशा हिन्दू व्यापारी जातियों के हाथों में रहा। यहां तक कि पूरे मुगलकाल के दौरान वित्त मंत्रालय का मुखिया हमेशा हिन्दू रहा था। राजनीतिक और सांस्कृतिक सर्वोच्चता के होने के कारण मुसलमानों को कभी आर्थिक वर्चस्व की कमी का अहसास नहीं हुआ। अंग्रेजी शासन की स्थापना से मुसलमानों की केवल राजनीतिक सत्ता ही नहीं छिनी, बल्कि धीरे-धीरे उनका भाषायी और सांस्कृतिक वर्चस्व भी समाप्त हुआ। नौकरशाही, विशेषकर इसके शीर्ष पद भी अब अंग्रेजों के नियन्त्रण में थे। उपनिवेशवादी शासन ने सामन्ती अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया और हिन्दू व्यापारी वर्ग के उभार से जमींदार वर्ग को नुकसान हुआ। सिर्फ यही नहीं, उपनिवेशवादी व्यापारी वर्ग अपने को औद्योगिक व्यापारी वर्ग में तब्दील कर रहा था और भारी मात्रा में धन इकट्ठा कर रहा था। दूसरी तरफ जमींदार वर्ग के पास व्यापार व वित्त प्रबन्ध

का कोई ऐतिहासिक अनुभव नहीं था, इस कारण आमतौर पर सभी जमींदार वर्ग और विशेष तौर पर मुसलमान जमींदार वर्ग का पतन होना शुरू हुआ। मुसलमानों में व्यापारिक और औद्योगिक वर्ग काफी कमजोर था, खासतौर पर उत्तरी भारत में। यद्यपि अंग्रेजी शासन के दौरान पश्चिमी बन्दरगाह के कुछ व्यापारिक समुदाय (विशेषकर ख्वाजा, मेमन और बोहरा)[4] काफी फले-फूले। भारत की मुस्लिम राजनीति का केन्द्र उत्तर भारत था, विशेषकर उत्तर प्रदेश। उत्तर प्रदेश (राजनीतिक और धार्मिक) के नेतृत्व ने पूरे भारत को प्रभावित किया, इसीलिए देश के अन्य भागों की तुलना में उत्तर प्रदेश के मुसलमानों की धारणा अधिक मायने रखती थी। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि साम्प्रदायिकता उत्तर-भारत की परिघटना है। भारत के इस भाग में हिन्दू और मुस्लिम अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक प्रतिस्पर्धा तीव्र थी। जिन्ना को छोड़कर, भारत के अन्य भागों से राष्ट्रीय स्तर के बहुत कम मुस्लिम नेता हुए।

हमें उत्तर भारत में हिन्दू पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति का भी जायजा लेना है। इन्होंने मुस्लिम सांस्कृतिक एकाधिकार से सीधी चुनौती अनुभूत की। मुसलमानों के राजनीतिक रूप से हाशिये पर चले जाने पर यह धारणा और भी तीव्र हो गई। इस तरह थेडोर बेक ने 1886 में विचार किया "यह याद रखना जरूरी है.... मुसलमानों ने भारत के इस भाग पर लगभग पांच शताब्दियों तक शासन किया है, वे राजनीतिक रूप से महत्त्वहीन होने की स्थिति स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे....यदि सरकार उनके लिए दरवाजे बन्द करती है, जिसके माध्यम से वे वैध प्रभाव हासिल करने की आशा करते हैं तो यह उन लोगों के लिए एक खतरनाक प्रेरक होगा जिनके लिए अभी तक जेहाद का विचार मरा नहीं था।"

जहां तक मुस्लिम अभिजात के दृष्टिकोण का सवाल है उनका मानना था कि नई व्यवस्था में उनकी हैसियत राजनीतिक एकाधिकार के बदले बहुत ही कम थी। राजनीतिक एकाधिकार खोने की भावना से हिन्दू और मुस्लिम अभिजातवर्ग के बीच सम्बन्ध बिगड़ने लगे। मुगल काल से ही एक साझा शासक वर्ग अस्तित्व में आया था, जिसके हाथ में सारी सत्ता केन्द्रित थी। यह साझा शासक वर्ग हिन्दुओं और मुसलमानों में बना था, उस समय इनके बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं थी। यह साझी संस्कृति दोनों संस्कृतियों का ऐसा मिश्रित रूप था कि इससे किसी घटक को शिकायत का अवसर ही नहीं था। हालांकि दोनों समुदायों के बीच यह राजनीतिक-सांस्कृतिक समीकरण तेजी से बदल रहे थे। नई स्थिति में हिन्दू अभिजात वर्ग राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वर्चस्व की हैसियत प्राप्त कर रहा था।

नई स्थिति में, एक ओर मुसलमान अभिजातवर्ग राजनीतिक एकाधिकार खो जाने की भावना से परेशान था तो दूसरी ओर हिन्दू अभिजात वर्ग में ऐसी भावना नहीं थी, बल्कि इसमें वह अधिक उत्साही महसूस कर रहा था। उत्तर भारत के

हिन्दू अभिजात वर्ग ने अंग्रेजी शासन का स्वागत किया, क्योंकि उसे इसमें हर तरह से लाभ ही लाभ नजर आया (जागरूक राजनीतिक तत्वों को छोड़कर, जो स्वतन्त्रता के इच्छुक थे), दूसरी ओर मुस्लिम अभिजात वर्ग को इसमें कोई लाभ नहीं दिखा, बल्कि हर मामले में अपना नियन्त्रण खो जाने का अहसास कचोटता रहा। इसमें कोई हैरानी नहीं थी कि हिन्दू अभिजात वर्ग ने प्रारम्भ से ही जब अंग्रेजों की राजधानी कलकत्ता थी, तभी से उत्साह के साथ बिना किसी शंकाओं के पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करनी शुरू कर दी थी। लेकिन मुस्लिम अभिजात वर्ग को पाश्चात्य और आधुनिक ज्ञान में खतरे के अलावा कुछ दिखाई नहीं दिया। अंग्रेजी शासन से पहले शासक वर्ग की भाषा फारसी थी और मुस्लिम अभिजात वर्ग ने मदरसों से शिक्षा प्राप्त की थी। चूंकि ये फारसी संस्कृति को सुरक्षित रखना चाहते थे इसलिए इन्होंने आधुनिक अंग्रेज संस्कृति को खारिज कर दिया। उलेमाओं ने भी आधुनिक शिक्षा का दृढ़ता से विरोध करने का निश्चय किया। मदरसा शिक्षा ने उनको सत्ता और सम्मान दिया था। उलेमाओं (मुस्लिम धर्मवेत्ता) ने दो कारणों से पूरी जिद्द के साथ अंग्रेजी शासन का विरोध किया—एक, नए धर्मनिरपेक्ष कानूनों से उनकी सत्ता और सम्मान छिन गया। अंग्रेजी अदालतों ने तेजी से 'वादी' अदालतों का स्थान ले लिया। यहाँ तक कि पर्सनल कानूनों से सम्बन्धित मामले भी अब धर्मनिरपेक्ष अंग्रेजी अदालतों में आ गए। काज़ी और उलेमा ऐसे मामलों में कुछ नहीं कह सकते थे। दूसरे, उलेमाओं का मानना था कि नए कानून इस्लामिक शरीयत का विरोध करते थे इसलिए ये मुसलमानों को स्वीकार्य नहीं थे और अंग्रेजी हुकूमत से मुक्ति ही इन गैर-इस्लामिक कानूनों से छुटकारा पाने का एकमात्र रास्ता था, इसलिए उन्होंने इसे उखाड़ फेंकने का निश्चय किया और इसी तरह के विचारों वाले किसी से भी सहयोग का निश्चय किया। उलेमाओं के अंग्रेजी शासन के तीव्र विरोध का अभी एक कारण और था। इन धर्मवेत्ताओं में से अधिकतर या तो गांव के गरीब थे या फिर कारीगर वर्ग से सम्बन्धित थे जिन्होंने अंग्रेजों के आने से आर्थिक रूप से अधिक कष्ट सहे। अंग्रेजी शासन की नीतियों ने मुस्लिम अभिजात वर्ग की अपेक्षा इस वर्ग को तबाह कर दिया था। किसान वर्ग खास तरह से इसका शिकार हुआ तो ब्रिटेन में बनी औद्योगिक वस्तुओं के आयात ने हस्तशिल्पियों को पूरी तरह तबाह कर दिया। ब्रिटेन के वस्त्रों ने भारत के जुलाहों का धंधा बिल्कुल चौपट कर दिया। चूंकि इस वर्ग में उलेमाओं की जड़ें गहरी थीं, वे इस वर्ग की समस्याओं को किसी अन्य की अपेक्षा ज्यादा बेहतर ढंग से जानते थे और उलेमा ये भी जानते थे कि इस वर्ग की यह हालात ब्रिटिश प्रभुत्व के कारण है। इस तरह किसी और वर्ग के मुकाबले ये अंग्रेजों से लड़ने के लिए अधिक दृढ़ थे, विशेषकर मुसलमानों में।

इस मामले में हम उलेमाओं की भूमिका पर और अधिक प्रकाश डालना

चाहेंगे। यह गौर करना दिलचस्प होगा कि ऊपर बताये गए कारणों की वजह से उलेमाओं ने अंग्रेजों के खिलाफ कठोर रवैया अपनाया और इन्हें भारत से खदेड़ने वाले किसी भी आन्दोलन को समर्थन दिया। बींसवी शताब्दी के आरम्भ में बंगाल के उग्रपंथियों के सक्रिय होने से काफी पहले उन्नीसवीं शती के अन्तिम भाग में बहावी मुसलमानों में से एक ने लार्ड मेयो की हत्या की थी।[5] इसी तरह कलकत्ता उच्च न्यायालय के कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की हत्या उच्च न्यायालय की सीढ़ियों पर एक मुसलमान ने की थी।[6] इस सबसे यह स्पष्ट नजर आता है कि ब्रिटिश शासन से गरीब मुसलमान बुरी तरह प्रभावित थे।

1885 में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनी, तो इसमें शामिल होने को लेकर मुसलमानों में गहरा विवाद था। सर सैय्यद और उनके सहयोगी इसमें शामिल होने के खिलाफ थे। वे सोचते थे कि कांग्रेस में शामिल होकर मुसलमानों को अंग्रेजों को अपना दुश्मन नहीं बनाना चाहिए और उनको शिक्षा और रचनात्मक कार्यों पर अपना ध्यान अधिक केन्द्रित करना चाहिए। इस तरह फ्रांसिस रोबिन्सन कहते हैं–

"ऊपरी भारत में कांग्रेस की सक्रियता के बारे में सर सैयद अहमद की तुरन्त प्रतिक्रिया इसके विरोध की थी। इससे बहुत लोग तब और बाद में चकित हुए। बल्कि उन पर पूरी तरह पैंतरा बदलने का आरोप लगाया जाता है। ये माना जाता है कि उन्होंने 'कॉजिज ऑफ दी इण्डियन रिवोल्ट' में मांग की थी और एसोसिएशन के दिनों में इसके लिए काफी प्रयास किए थे कि उर्दू-भाषी अभिजात वर्ग को सिविल सेवाओं की परीक्षा की तैयारी के लिए इंग्लैण्ड जाने दिया जाए। यह भी कहा जाता है कि 1884 के पंजाब दौरे के दौरान उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता में भारी योगदान दिया था, लेकिन ज्यों ही उत्तर प्रदेश में कांग्रेस का आधार बना वे अपने ही कई उन उद्देश्यों के खिलाफ हो गए जिनके लिए कभी लड़े थे। कुछ मानते हैं कि वे अलीगढ़ युवा प्रधानाचार्य थेरोड वेक के प्रभाव में आए, दूसरे जो कम सहानुभूति से सोचते हैं–कि सरकार द्वारा दिए लाभों से उनमें परिवर्तन आया।[7] लेकिन सर सैयद के लेखन के सूक्ष्म अध्ययन से ऐसा आकस्मिक परिवर्तन नजर नहीं आता।"[8]

इस सबके बाद, रोबिन्सन का मत ठीक दिखाई देता है। इससे सहमत हो न हो परन्तु सर सैयद समस्या को बिल्कुल अलग दृष्टिकोण से देख रहे थे। निश्चित तौर पर उनकी चिन्ताएं भारतीय मुसलमानों के उच्च वर्ग के हितों को लेकर थीं, और इस बारे में उनका अपना नजरिया था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि उनका सोचना था कि मुसलमान अभिजात वर्ग अपनी ऊर्जा पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण करने पर केन्द्रित करके ही हिन्दू अभिजात वर्ग से प्रतिस्पर्धा कर सकता है। उन्होंने भी अपनी ऊर्जा मुसलमानों की शिक्षा के लिए, अलीगढ़ में ऐंग्लो-ओरिएंटल मुहम्मडन कॉलेज नामक शिक्षण संस्था की स्थापना करने में

लगाई। उन्होंने 'तहजीबुल अखलक' नामक पत्रिका भी निकालना शुरू की। मुस्लिम अभिजात वर्ग में सामन्ती संस्कार थे और सर सैय्यद चाहते थे कि वे पाश्चात्य संस्कार ग्रहण करें ताकि उन्हें आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा की महत्ता का अहसास हो। उन्होंने माना कि मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होकर राजनीतिक गतिविधियों में शामिल हो जाएंगे जिससे केवल अंग्रेजों के कोप के भागी बनेंगे। उन्हें सहायक-न्याय अधिकारी के नाते 1857 के विद्रोह का खौफनाक अहसास था जिसके कष्टकारी परिणाम मुस्लिम शुराफा (उच्च वर्ग) को भुगतने पड़े थे। इस कारण उन्होंने, ''असबाब-ए-बगावत-ए-हिन्द' (भारतीय विद्रोह के कारण) पुस्तक लिखी। अंग्रेजों का कर्मचारी होने के कारण उन्हें अंग्रेजों से सहानुभूति थी। वे इससे सहमत थे कि यहां अंग्रेजी शासन रहना चाहिए और मुसलमानों को इसका विरोध नहीं करना चाहिए, बल्कि इसे सहयोग करना चाहिए। उनका सोचना था कि यदि मुसलमान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े तो अंग्रेजी राज के फायदों से वंचित रह जाएंगे और इसका उन्हें आगे नुकसान होगा। दुर्भाग्यवश, यह मानना पड़ेगा कि सर सैयद अहमद ने मुसलमान होने के कारण अधूरी राय रखी और वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को मुख्य रूप से 'हिन्दू पार्टी' मानते रहे, और मानते थे कि भारत एक राष्ट्र नहीं था। इस तरह उन्होंने बम्बई उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश बदरुद्दीन तैयब जी, जो सोचते थे कि कांग्रेस में शामिल होना आवश्यक है, को लिखा, ''यह सच है कि आपने मद्रास में कांग्रेस में अग्रणी भूमिका निभाई और इसमें भी कोई शक नहीं कि हमारे हिन्दू साथियों को खुश किया, लेकिन जहां तक हमारी बात है हम इससे बहुत दुःखी हैं।''[9] इसी पत्र में आगे लिखा, ''मैं नहीं समझ पाता कि 'राष्ट्रीय कांग्रेस' शब्द का क्या अर्थ है। क्या इसका अर्थ यह माना जाए कि भारत में रहने वाले विभिन्न जातियों और नस्लों के लोग एक राष्ट्र से सम्बन्ध रखते हैं या एक राष्ट्र बन सकते हैं और उनके उद्देश्य और आकांक्षाएं एक जैसी हो सकती हैं? मैं सोचता हूं कि यह असम्भव है और जब यह असम्भव है तो 'राष्ट्रीय कांग्रेस' नाम की कोई चीज नहीं हो सकती और न ही सभी लोगों को बराबर लाभ हो सकता है।''[10] तब वह कहते हैं कि, ''मैं प्रत्येक कांग्रेस पर आपत्ति करता हूँ—चाहे वह किसी भी रूप में हो, कैसी भी हो—जो गलत सिद्धान्तों के आधार पर समस्त भारत को एक राष्ट्र मानती है। शायद आप मेरे विचारों को पसन्द नहीं करेंगे, अतः इस दुस्साहस के लिए आप मुझे माफ करेंगे।''[11]

इस तरह सर सैयद अहमद खान ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के खिलाफ कड़ा रुख अपनाया। वस्तुतः यह चर्चा का विषय है कि वे उतने ही अलगाववादी थे जितने कि जिन्ना तीस के दशक के अन्तिम वर्षों में बने, और सर सैयद भी विभाजन के पक्ष में फैसला लेते हालांकि विभाजन का विचार बीस के दशक के

बाद के घटनाक्रम के परिणामस्वरूप आया, लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि सर सैयद के विचारों में अलगाव के बीज मौजूद थे। यह भी सच है कि 19वीं शती के अन्त में सर सैयद ने जो कहा बाद में जिन्ना ने वही भाषा बोली। सर सैयद ने यह सब राजनीतिक सत्ता और सरकारी नौकरियों की प्रतिस्पर्धा में कहा था। यह दो अभिजात वर्गों के बीच लड़ाई थी, सर सैयद के शब्द 'विभिन्न जातियों और नस्लों के उद्देश्य और आकाक्षाएं एक जैसे नहीं हो सकते' ऐसा दर्शाते हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि जब सर सैयद उद्देश्यों और आकांक्षाओं की बात करते थे तो वे जातियों और समुदायों के उच्च वर्गों के उद्देश्यों व आकांक्षाओं की ही बात करते थे। उनका अपने समुदाय की गरीब और शोषित जनता से कुछ भी लेना-देना नहीं था। वास्तविकता तो यह है कि शिक्षा के प्रति उनका अभियान भी मात्र उच्च वर्ग शुराफा के लिए ही था। इस तरह जब मुरादाबाद के कारीगरों ने उनको आधुनिक शिक्षा का पैरोकार समझकर स्कूल के उद्घाटन के लिए आमन्त्रित किया तो इसके प्रति उन्होंने कोई खास उत्साह नहीं दिखाया और उन्हें कहा कि उनके बच्चों को स्कूल जाकर अपना समय बर्बाद करने की बजाय अपनी कारीगरी में कुशलता हासिल करनी चाहिए और अपने परिवार की आय में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए।

यह कहना गलत होगा कि समस्त मुस्लिम अभिजात वर्ग में सर सैयद के राजनीतिक विचारों के प्रति सर्वसम्मति थी। ऊपरी भारत के मुस्लिम अभिजातवर्ग का पश्चिमी भारत के मुस्लिम अभिजात वर्ग से भिन्न दृष्टिकोण था। ऊपरी भारत का मुस्लिम अभिजात वर्ग अंग्रेजी शासन के आने से राजनीतिक सत्ता तथा सरकारों में व्याप्त नौकरशाही के प्रभुत्व के कारण बहुत दुःखी था, जिसके कारण इस वर्ग का अंग्रेजी शासन के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया बन गया। दूसरी ओर, भारत के पश्चिमी भागों में इससे काफी कुछ अलग था। पश्चिमी भारत में कुछ मुस्लिम समुदाय व्यापारी थे और अंग्रेजी शासन की स्थापना से इनको बहुत लाभ हुआ। एक ओर रेल, डाक व तार आदि आधारभूत सुविधाओं के विस्तार से तो दूसरी ओर आयात-निर्यात व्यापार में वृद्धि के कारण इन समुदायों को काफी लाभ हुआ।[12]

पश्चिमी भारत के मुस्लिम अभिजात वर्ग ने ऊपरी भारत के मुस्लिम अभिजात वर्ग की तरह आधुनिक स्कूलों और कॉलेज की स्थापना का विरोध नहीं किया। बम्बई में मुसलमानों के कोई खास विरोध बिना अंजुमन-ए-इस्लाम स्कूलों व कॉलेजों की शृंखला के संस्थापकों में से बदरुद्दीन तैयब जी एक थे बल्कि इन्हें दान देकर अपना योगदान दिया। इसी तरह पश्चिमी भारत के मुस्लिम अभिजात वर्ग ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होने का विरोध नहीं किया। बदरुद्दीन तैयब जी ने कांग्रेस अधिवेशनों में शामिल होने में पूरा उत्साह दिखाया; वे कांग्रेस के पहले मुस्लिम अध्यक्ष थे।

तैयब जी ने कांग्रेस को केवल अपना पूरा समर्थन ही नहीं दिया, बल्कि इसकी राजनीतिक विचारधारा को भी न्यायोचित ठहराया। कलकत्ता उच्च-न्यायालय के न्यायाधीश और प्रसिद्ध मुस्लिम बुद्धिजीवी सैयद अमीर अली को उन्होंने लिखा, "जैसा कि आप जानते हैं, इसमें कोई शक नहीं कि मद्रास के कांग्रेस के पिछले अधिवेशन में मेरी मुख्य भूमिका रही। मुझे दुःख और खेद है कि आप स्वयं, सैयद अहमद खान और नवाब अब्दुल लतीफ जैसे....अच्छे दोस्त सोचते हैं कि कांग्रेस से दूरी रखना उनका कर्तव्य है। जिस अधार पर इस दूरी को उचित ठहराया जाता है मैं उसे नहीं समझ पाया हूं। लेकिन यह दुःख की बात है कि पूरे देश को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर मुसलमानों का एक हिस्सा हिन्दुओं से अलग-थलग बना रहे और भारत की प्रगति में बाधा पहुंचाए। मैं आपकी ये बात समझता हूं कि अधिक उन्नत होने के कारण सरकार द्वारा दी गई रियायतों का सबसे अधिक लाभ हिन्दुओं को होगा, लेकिन हमारा भी यह कर्तव्य बनता है कि प्रगति की प्रक्रिया में हम लोगों को अपने हक पाने से न रोकें। यदि कोई ऐसा प्रस्ताव आता है जिसमें मुसलमानों को हिन्दुओं से कमतर आंका जाता है या उन्हें मुसलमानों के अहित के लिए कार्यकारी शक्ति दी जाती है तो मैं अपनी पूरी ताकत से उसका विरोध करूंगा। लेकिन कांग्रेस ऐसा कुछ नहीं कर रही है, इसके उद्देश्य व कार्यक्रम वर्तमान में और भविष्य में भी सभी समुदायों के बराबर फायदे के लिए हैं। मेरे विचारों को जिनका एक समुदाय के तौर पर विरोध हो रहा है, उन्हें अपवाद माना जा सकता है। मैंने पहले ही सिद्धान्त बना लिया है कि जिस पर मुसलमान सामान्य तौर पर आपत्ति उठाते हैं उस पर कांग्रेस विचार नहीं करेगी। यह नियम बाकायदा औपचारिक रूप से कांग्रेस के सिद्धान्त में रखा जाएगा और मैं मानता हूं कि इससे आपकी आपत्ति दूर हो जाती है।"[13]

तैयब जी के पत्र से बिल्कुल स्पष्ट है कि पश्चिमी भारत का मुस्लिम अभिजात वर्ग कांग्रेस की विचारधारा का विरोधी नहीं था, बल्कि वह इसकी विचारधारा को उचित ठहराता था तो दूसरी ओर उत्तर भारत के मुस्लिम अभिजात वर्ग में कांग्रेस के प्रति शत्रुभाव था। इस तरह यह ध्यान रखना चाहिए कि भारत के समस्त मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक दृष्टिकोण में एकरूपता नहीं थी, यह संयुक्त राजनीतिक दृष्टिकोण से कोसों दूर था। अन्य समुदायों की तरह मुस्लिम समुदाय भी एक ओर वर्गों के आधार पर विभाजित था, तो दूसरी ओर क्षेत्रीय आधार पर। यहां यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि साम्प्रदायिकतावादियों ने समुदायों के बीच व्याप्त विविधता को नकारते हुए, हमेशा समस्त समुदाय को सभी मुद्दों पर एकमत और एकरूप बताने की कोशिश की है। ऐसी एकरूपता और मतैक्य न तो कभी मध्यकाल में हुई और न ही पूरे स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान। मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना भी हमेशा अपने को समस्त समुदाय का 'एकमात्र

प्रवक्ता' होने का दावा करते थे, लेकिन कांग्रेस नेतृत्व ने इसे कभी स्वीकार न करके ठीक ही किया था।

वास्तविकता तो यह थी कि 19वीं शताब्दी में भी मुस्लिम समाज विभिन्नि राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों पर बंटा हुआ था। स्वयं सर सैयद अहमद खान सामाजिक सुधार के मुद्दे पर बिल्कुल अलग विचार रखते थे। वे बड़े आधुनिक सुधारक और आधुनिक शिक्षा के पैरोकार थे, उन्होंने उत्साहपूर्वक विज्ञान का स्वागत किया और सोचा कि कुरान इसके विरुद्ध नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए कहा कि 'खुदा के शब्द' (कुरान) 'खुदा के कार्य' (प्रकृति का अर्थ विज्ञान) से अन्तर्विरोधी नहीं हो सकते। सैयद अहमद खान की कुरान की समझ धर्मपरायण उलेमाओं से बिल्कुल अलग थी। उन्होंने कुरान पर अपनी टीका में बहुत क्रान्तिकारी टिप्पणियां कीं। एक जगह पर वे कहते हैं कि वादे और खतरे (Promise & Therat) से सम्बन्धित पदों, जो स्वर्ग और नरक के बारे में हैं, में मनुष्य को अंलकृत भाषा में परम आनन्द और शान्ति के उच्चतम रूप को समझाया है। इस तरह की भाषा प्रयोग करके कुरान मनुष्य में आदेशों के पालन व दैवीय पाबन्दियों के प्रति आदर का भाव जगाती है। यही बात कुरान 'मुतातीस मुंतादिस' के बारे में भी लागू होती है। 'बिगुल बजाना' वाथ-वा-हश्र का प्रतीक है, दूसरे शब्दों में समय के साथ सभी चीजों में मूलभूत बदलाव आता है। 'किताब-अल-ए-मत' (कर्मों की पुस्तक) और 'अल-मिजान बा-अल मुवाजानाह' (कर्मों को तराजू पर तौलना) ईश्वरीय न्याय का प्रतीक है।[14] कुरान की टीका पर उनके इन क्रान्तिकारी विचारों को स्वयं सर सैयद अहमद के अनुयायियों में से बहुत कम स्वीकार कर पाए। पुरातनपंथी उलेमाओं के नेतृत्व में समुदाय का रूढ़िवादी तबका इन विचारों के बिल्कुल खिलाफ था। इस तरह मुसलमानों में धार्मिक मुद्दों पर भी गहरे मतभेद थे।

यहां हम 19वीं शताब्दी के भारतीय समाज में उलेमाओं की अत्यधिक अन्तर्विरोधी भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। सामाजिक परिवर्तन के मामले में उनके विचार बेहद रूढ़िवादी थे, यहां तक कि प्रतिक्रियावादी थे। जैसा कि पहले बताया गया है कि उन्होंने आधुनिक शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया पर सर सैयद के प्रगतिशील विचारों का कड़ा विरोध किया। लेकिन उनका अन्तर्विरोध सामने आया जब उन्होंने राजनीति में क्रान्तिकारी और प्रगतिशील भूमिका अदा की। उन्होंने अंग्रेजी उपनिवेशवादी शासन का पूर्णतः विरोध किया, वे हर कीमत पर जितनी जल्दी सम्भव हो सके उतनी जल्दी अंग्रेजों को भारत से भगाना चाहते थे। शाह वलीउल्लाही स्कूल[15] के उलेमाओं ने, बम्बई के तैयब जी की तरह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से गठबन्धन किया। वे इस बात से सहमत थे कि अकेले मुसलमान अंग्रेजों को भारत से बाहर नहीं निकाल सकते। इसलिए जब

कांग्रेस बनी तो इन्होंने उलेमाओं के खिलाफ अपने हिन्दू भाइयों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ने को कहा। देवबन्द के दारुल ऊलम के मुख्य प्रवक्ता मौलाना रशीद अहमद गंगोही ने मुसलमानों को कांग्रेस से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तथा सर सैयद के कांग्रेस में शामिल न होने के विचार के खिलाफ फतवा जारी किया। भारत के बहावियों ने कांग्रेस के समर्थन में 'नुसरत-अल-अहरार' (स्वतन्त्रता सेनानियों की मदद) नामक फतवों की पुस्तक प्रकाशित की, देवबन्द के नेताओं की ओर से दो फतवों समेत इसमें सौ फतवों को संकलित किया गया था।[16]

उलेमाओं ने सर सैयद के राजनीतिक और धार्मिक दोनों तरह के विचारों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने उन्हें काफिर या क्रिस्तान या यहूदी कहकर दोषी ठहराया। उलेमाओं ने धर्मनिरपेक्ष अंग्रेजी शिक्षा का पूर्णतः विरोध किया। उनका मानना था कि यह पूर्णतः विदेशी संस्कृति की प्रतिनिधि थी और मुसलमानों को धार्मिक और नैतिक रूप से भ्रष्ट करेगी, इसने समुदाय के लोगों के दिल और दिमाग पर उनके प्रभुत्व को कमजोर किया है। इसके साथ ही वे सर सैयद के अंग्रेजों के बिल्कुल पक्षधर राजनीतिक विचारों का समझबूझकर विरोध करते थे।

प्रारम्भ में अंग्रेजों के मन में मुसलमानों के सभी वर्गों के प्रति शत्रुता का भाव था, विशेषकर 1857 के 'गदर' के तुरन्त बाद। चूंकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस बनने के बाद अंग्रेजों ने सोचा कि हिन्दू अभिजात वर्ग राष्ट्रवादी दृष्टि विकसित कर रहा था, इसलिए उन्होंने मदद के लिए मुस्लिम उच्चवर्ग की ओर देखना शुरू कर दिया। सर जॉन स्ट्राचे ने इस नई नीति को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है : "इन शत्रुतापूर्ण नस्लों का साथ-साथ अस्तित्व भारत में हमारी राजनीतिक ताकत के लिए बहुत ही मजबूत पक्ष है। मुसलमानों का अभिजात वर्ग हमारी कमजोरी का नहीं, बल्कि शक्ति का स्रोत है। यद्यपि तुलनात्मक दृष्टि से ये बहुत कम हैं लेकिन आबादी के बहुत ऊर्जाशील अल्पसंख्यक हैं और इनके राजनीतिक हित हमारे हितों से पूरी तरह मेल खाते हैं।"[17]

इस तरह शीर्ष अंग्रेज शासक अपने हितों के लिए छोटे और वफादार ऊर्जाशील मुसलमान अल्पसंख्यकों की ओर देख रहे थे और उन्हें यह सर सैयद और उनके अनुयायियों में मिला। इसी कारण महारानी विक्टोरिया ने उनको सर्वोच्च सम्मान 'नाइट हुड' दिया था। यह नहीं सोचना चाहिए कि सर सैयद अंग्रेजों के करीब आने के लिए देश के हितों को बेचना चाहते थे। उनका तो एकमात्र लक्ष्य सामन्ती मुस्लिम अभिजात वर्ग के हितों को प्रोत्साहित करना था। लेकिन यही बात वास्तव में साम्प्रदायिक सोच का मूल कारण भी बनी। जैसा कि हम बाद में देखेंगे कि इसी सवाल पर हमारे देश का विभाजन हुआ। जैसा कि बदरुद्दीन तैयब के जस्टिस अमीर अली को लिखे पत्र से अच्छी तरह स्पष्ट होता है। सर सैयद और उनके

अनुयायियों ने यद्यपि मुसलमानों में आधुनिकीकरण की सेवा की, उन्होंने अखिल भारतीय फलक पर नहीं सोचा। उनका सारा डर यह था कि चूंकि मुसलमान तुलनात्मक दृष्टि से पिछड़े हैं इसलिए हिन्दू अभिजातवर्ग उनको पछाड़ देगा। उन्होंने आधुनिक धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के प्रसार के लिए तो प्रयास किए, लेकिन 'बहुसंख्यक भय' को नहीं छोड़ पाए। यह कहना पूरी तरह गलत नहीं होगा कि मुस्लिम लीग ने इस बहुसंख्यक भय के बल पर अन्ततः मुस्लिम अभिजात वर्ग का समर्थन हासिल किया और देश का विभाजन किया। अभिजात वर्ग ने अपने हितों के लिए उठाई मांगों को चालाकीपूर्ण ढंग से पूरे समुदाय के हितों के रूप में पेश किया। जवाहरलाल नेहरू कहते हैं कि उच्च वर्ग के लोग बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक धार्मिक समुदाय की साम्प्रदायिक मांगों को पेश करके अपने वर्गीय हितों को ढंक लेते हैं। हिन्दू-मुसलमान और अन्यों की ओर से उठाई गई मांगों के आलोचनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि इनका आम जनता के हितों से कोई ताल्लुक नहीं था। ज्यादा से ज्यादा ये चन्द बेरोजगार बुद्धिजीवियों के रोजगार तक सीमित थे, और शिक्षित मध्यवर्ग के बेरोजगारों की समस्या नौकरियों के पुनर्वितरण से भी नहीं सुलझी थी। मध्यवर्ग में बेरोजगारों की संख्या कहीं अधिक थी और उन सभी को राज्य व अन्य सेवाओं में समाहित नहीं किया जा सकता था।''[18]

इस तरह आमतौर पर सिद्धान्त गढ़ा जाता है कि साम्प्रदायिकता छोटे व्यापारी और शिक्षित मध्यवर्ग की परिघटना है। ऐसी स्थापनाओं में सरलीकरण हो सकता है, लेकिन इन्हें किसी तरह से भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। आमतौर पर इन्हीं वर्गों में राजनीतिक सत्ता और नौकरियां प्राप्त करने की स्पर्धा थी। हम इस पहलू पर बाद में प्रकाश डालेंगे। यहां भाषा-विवाद के बारे में जिक्र करना रोचक रहेगा, जिसने हिन्दू और मुस्लिम अभिजात वर्ग में स्पष्ट विभाजन कर दिया। सवाल था कि निचली अदालतों में फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू-भाषा का प्रयोग किया जाए या देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा का। वास्तव में कहा जा सकता है कि अंग्रेज फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता में ऐसे षड्यन्त्र रच रहे थे, जहां देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी भाषा के विकास की कोशिश की गई। यह विवाद पूरे स्वतन्त्रता संग्राम में चलता रहा और हमारे देश के विभाजन का एक कारण भी बना।

यदि फारसी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू-भाषा को अपनाया जाता तो उर्दू-भाषी अभिजात वर्ग (जिसमें अधिकतर मुसलमान थे) को लाभ होता, यदि देवनागरी लिपि में लिखी जाने हिन्दी को अपनाया जाता तो हिन्दी भाषी अभिजात वर्ग (जिसमें अधिकतर हिन्दू समुदाय से थे) को फायदा होता। डेविड लेलिवेल्ड ने कहा, ''अंग्रेजी शैक्षणिक योग्यता और हिन्दी की मांग का राजनीतिक बहसों में सीधा अर्थ यह लगा कि यह कचहरी पर मुसलमानों के वर्चस्व को कम करने

का प्रयास है और अगले दशक में इसका अनुपात सचमुच कम हो गया, यद्यपि प्रान्त की कुल आबादी के अनुपात में यह 14 प्रतिशत रहा था। 1880 में राजपत्रित अधिकारियों में 45 प्रतिशत से ज्यादा मुसलमान थे और इसमें से लगभग 30 प्रतिशत 75 रुपये प्रतिमाह से अधिक कमा रहे थे। इसके बावजूद मुसलमानों के एक राजनीतिक गुट ने शिकायत दर्ज की, 'सरकारी कार्यालयों में बढ़ती हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से अधिक हो रही थी।' अंग्रेजी शिक्षा की बढ़ती प्रासंगिकता से बंगाल के कार्यालयों में आंकड़ों की पुनरावृत्ति की आशंका हुई, जहां पहले मुसलमान वर्चस्व था और अब उच्च पदों पर केवल पांच प्रतिशत रह गए थे।''[19]

उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर एंथनी मेक्डोनेल ने सरकारी सेवा में भर्ती के लिए भाषा-नीति में कुछ परिवर्तन किए। इन परिवर्तनों ने आकांक्षी मुसलमानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला था। वास्तव में, मेक्डोनेल ने केवल यह सोचा कि सरकार से निवेदन किसी भी लिपि में किया जा सकता है और सरकार के सारे सम्मन (इत्तला) और क्षेत्रीय घोषणाएं दोनों लिपियों में होंगी। यह नागरी प्रस्ताव के रूप में प्रसिद्ध है, जो 1900 में पारित हुआ। मेक्डोनेल ने इसे इस आधार पर उचित ठहराया कि यह प्राकृतिक न्याय है कि अधिकांश लोग उस लिपि में सरकार से सम्पर्क स्थापित कर सकें जिसे वे जानते हैं। हालांकि इस नागरी प्रस्ताव की तीसरी व अन्तिम धारा घोषणा करती थी, ''पूर्णतः अंग्रेजी कार्यालयों को छोड़कर, किसी भी कार्यालयी नियुक्ति में किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त नहीं किया जाएगा जो देवनागरी और फारसी दोनों लिपियों को अच्छी तरह पढ़ और लिख न सकता हो।''[20] मुसलमानों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। फ्रांसिस रोबिन्सन ने लिखा....''क्योंकि मुसलमानों का आम शिक्षा की सामान्य प्रक्रिया में नागरी लिपि से वास्ता नहीं पड़ता था और वे इसे मनोरंजन के लिए पढ़ते नहीं थे। इस प्रस्ताव से सरकारी नौकरियों में निहित हितों को अधिक खतरा महसूस हुआ।''[21]

नागरी-प्रस्ताव और भाषा नीति ने हिन्दू अभिजात वर्ग और मुस्लिम अभिजात वर्ग में बहुत अधिक कड़ुवाहट पैदा की जो अंग्रेज शासित भारत में साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति का महत्त्वपूर्ण कारक बना। भाषा-नीति में इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप मुसलमानों, कायस्थों और राजपूतों (जो मुगल प्राशासन के नजदीक थे और फारसी का ज्ञान हासिल था) को नुकसान हुआ। ब्राह्मणों, बनियों और अन्य हिन्दुओं की स्थिति में सुधार होना शुरू हुआ। इस तरह फ्रांसिस रोबिन्सन ने विचार किया : ''यह दर्शाता है कि 1886-87 से 1913 के बीच मुसलमानों और कुछ हद तक कायस्थों और राजपूतों की स्थिति खराब हुई, जबकि ब्राह्मणों, बनियों और अन्य हिन्दुओं की स्थिति में सुधार हुआ। यह ये भी दर्शाता है कि गदर से लेकर 1913 तक मुसलमानों ने अपना वर्चस्व खो दिया और हिन्दुओं ने नियुक्तियों का बड़ा

भाग पा लिया। इससे यह प्रमाणित होता है कि नौकरशाही में सुधार से कमोबेश परम्परागत सरकारी कर्मचारी समूह पर दबाव बन रहा था। मेक्डोनल की नीतियों के तहत यह दबाव पूर्णरूपेण मुसलमानों पर ही केन्द्रित था।''[22]

यद्यपि सरकारी नौकरी के लिए ये झगड़े अभिजात परिवारों के बहुत कम लोगों तक सीमित थे, लेकिन इन्होंने इसमें (झगड़े में) पूरे समुदाय को यह कहकर शामिल करना चाहा कि इसने सबको प्रभावित किया था। इस तरह आंकड़े दर्शाते हैं कि 1867 में उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों और अवध में 333 मुसलमान 75 रुपये से अधिक कमा रहे थे और 1897 में यह संख्या 466 थी। इन्हीं वर्षों में हिन्दुओं की संख्या 692 से बढ़कर 1069 हो गई, लेकिन यह जरूरी नहीं कि हिन्दुओं की संख्या में यह वृद्धि मुसलमानों की कीमत पर ही हुई हो। पंजाब में इसी तरह के आंकड़े थे।[23]

डेविड लेलिवेल्ड के ये आंकड़े स्पष्ट दर्शाते हैं कि सरकारी नौकरियों की प्रतिस्पर्धा में बहुत कम संख्या में हिन्दू और मुसलमान शामिल थे। फिर भी, इन्होंने साम्प्रदायिक मुहावरा प्रयोग करके अपने-अपने समुदायों से पूरा समर्थन मांगने के प्रयास किए। असल में यह ध्यान रखना जरूरी है कि साम्प्रदायिकतावादी समस्त समुदाय और इसके हितों को एक-रूप मानते हैं और अपने हितों को ही समस्त समुदाय के हितों के तौर पर पेश करते हैं। इसका विश्लेषण करके इसकी सच्चाई परखने की जरूरत है। कोई भी धार्मिक, सांस्कृतिक या भाषायी समुदाय कभी भी इतना एक-रूप नहीं रहा जितना कि साम्प्रदायिकतावादी सोचते हैं और प्रस्तुत करते हैं। सभी समुदाय ऊपर से नीचे और समानान्तर रूप से बंटे हुए हैं। इस तरह सर सैयद अहमद और उसके साथियों ने अशरफ (उच्च वर्ग) मुसलमानों का प्रतिनिधित्व किया। सर सैयद ने कारीगर मुसलमानों के भाग्य की कभी परवाह नहीं की। जुलाहों, चूड़ीगर, ताबेगर, कांच मजदूर, जमादार, तांगेवाले, छोटे दुकानदार, गरीब खेती मजदूर, तेली, भिखारी और सैंकड़ों अन्य बिरादरियों की विशाल मुसलमान आबादी का इस भाषा-विवाद से कुछ लेना-देना नहीं था। सर सैयद को या अन्य किसी बुद्धिजीवी को इनकी नियति से कोई सरोकार नहीं था। उन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया गया था। अभी तक किसी ने भी सरकार के सामने उनका पक्ष नहीं रखा था, केवल उलेमा ही उनसे जुड़े थे। वे जानते थे कि अंग्रेजी शासन की नीतियों ने ही इनका कम या ज्यादा नाश किया है, और इन शासकों को भारत से निकालना ही इनकी नियति में सुधार का एकमात्र रास्ता है। इसीलिए इन्होंने कांग्रेस (यद्यपि कांग्रेस तब कोई क्रान्तिकारी संगठन नहीं था लेकिन यह अन्य संगठनों के मुकाबले अधिक क्रान्तिकारी और इस अर्थ में धर्मनिरपेक्ष था कि यह सभी धर्मों व जातियों के लोगों को शामिल करता था) जैसे जनसंगठन से जुड़ने में उत्सुकता दिखाई, जिसमें कि शोषक अंग्रेजी शासन के खिलाफ लड़ने की क्षमता

थी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मुस्लिम अभिजात वर्ग अलगाववाद के रास्ते पर गया और उलेमा व मुस्लिम जनता ने अधिक क्रान्तिकारी और कांग्रेस के निमित्त अपना कार्यक्रम बनाया।

पहचान का सवाल भी साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति और इसे तीव्र करने में एक सहायक कारक था। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भ तक साम्प्रदायिक पहचान के सवाल को इतना महत्व कभी नहीं मिला था, जितना कि अंग्रेजी शासन की जड़ें मजबूत होने पर मिला। कारण पुनः बहुत सीधा था, तब तक धार्मिक पहचान से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होता था, ज्यादा से ज्यादा इसने किसी धार्मिक समूह या जाति या बिरादरी से सम्बन्धित होने की चेतना पैदा की। अब प्रत्येक धार्मिक समुदाय अपनी संख्या वृद्धि को लेकर परेशान था और इस कारण यह जरूरी था कि प्रत्येक व्यक्ति में पहचान की भावना तीव्र हो।

ऐसे समूह और 'बिरादरियां' बहुत थीं जिनकी बहुत से कर्मकाण्डों, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक व्यवहार के मेलजोल के कारण पहचान विस्तृत हो गई थी। इन हिन्दू और मुस्लिम समूहों की भाषा भी स्थानीय थी, अक्सर 'बोली' थी। इनके नामों में भी कोई स्पष्ट धार्मिक पहचान नहीं थी। निम्न जातियों के मुसलमान या निम्न जातियों से धर्मान्तरित मुसलमानों ने कभी अपने नाम नहीं बदले। अक्सर यह पहचान करना कठिन था कि वे हिन्दू हैं या मुसलमान। ऐसी घुली-मिली पहचान उभर रही नई साम्प्रदायिक चुनौतियों का और सामना नहीं कर सकी इसलिए यह जरूरी था कि इन्हें अलग-थलग कर दिया जाए।

अभी तक 'हिन्दू पहचान' जैसी कोई सामूहिक पहचान नहीं थी। 'हिन्दू' जैसी धार्मिक पहचान की अपेक्षा जातिगत पहचान जैसे ब्राह्मण, राजपूत, कायस्थ या निम्न जाति हिन्दुओं में जैसे माली, महार, धनिया, मातंग, चमार, ढोर आदि अधिक खुले रूप में प्रयोग होती थी। समूह की धार्मिक रूप में पहचान प्रचलित पहचान की अपेक्षा 19वीं शताब्दी की राजनीति निर्मित अधिक थी। धार्मिक अर्थों में 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग पहली बार 17वीं शताब्दी में किया गया था। जैसा कि पहले बताया गया है कि जाति की स्पष्ट पहचानें थीं। इसके साथ ही औपनिवेशिक परिवर्तनों से निम्न जातियों में अपने को उच्च जाति 'हिन्दूवाद' के साथ पहचानने की आकांक्षा पैदा हुई जो कि एक शास्त्राधारित धर्म था। उच्च जातियां भी पुनरुत्थानवाद की ओर मुड़ीं और एक रूप और महिमण्डित धर्म से सन्तुष्टि की भावना ने 'हिन्दुत्व' का भाव पैदा किया। औपनिवेशिक प्रशासन ने भी एक अखिल भारतीय 'हिन्दू धर्म' और एक अखिल भारतीय 'मुस्लिम समुदाय' के निर्माण में कोई कम भूमिका नहीं अदा की। इस तरह ज्ञानेन्द्र पाण्डेय कहते हैं—

''अखिल भारतीय 'हिन्दू समुदाय' (काफी हद तक भारतीय मुस्लिम समुदाय भी) उपनिवेशवाद की उपज है। उपनिवेशवाद के कारण आए सामाजिक और

आर्थिक परिवर्तन से, पश्चिमी 'मिशनरी' हमलों से भारतीय धर्मों व संस्कृति को बचाने के प्रयासों से, प्रशासनिक ढांचे और राजनीतिक नियन्त्रण द्वारा उपनिवेशवादी राज्य 'एकीकरण' अभियान से यह स्पष्ट झलकता है। (मुसलमानों को नाराज नहीं किया जाना चाहिए और हिन्दुओं की भावनाओं से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए), 19वीं शताब्दी के अन्त तक अत्यधिक प्रचारित हो चुके गौरक्षा जैसे आन्दोलनों के इतिहास ने एक अखिल भारतीय हिन्दू समाज और अखिल भारतीय मुस्लिम समाज के विचार को प्रोत्साहित करने में मदद की, इसमें अधिकांश समय इन सम्प्रदायों को एक-दूसरे के विरुद्ध माना जाता था। हिन्दुत्व और मुस्लिमत्व की अवधारणा की व्यापक स्वीकृति के बावजूद भी 19वीं शती तक भारतीय समाज व मुस्लिम समाज की अन्दरूनी एकता जाति और सम्प्रदाय के माध्यम से ही देखी जा सकती है।''[24]

इस तरह यह देखा गया कि औपनिवेशिक शासन की स्थापना से पूर्व इस देश में अखिल भारतीय 'हिन्दू समुदाय' या अखिल भारतीय 'मुस्लिम समुदाय' का कोई अस्तित्व नहीं था। अंग्रेजों ने ऐसे 'कल्पित समुदायों' का निर्माण किया और बिल्कुल अलग समुदायों की भावना को प्रसारित किया। इसके साथ ही अंग्रेजों के स्थानीय स्वशासन जैसे कुछ सीमित लोकतान्त्रिक कदम उठाने से दोनों समुदायों के अभिजात वर्ग को अधिक से अधिक संख्या में ऐसे लोगों को अपने पीछे लगाने की जरूरत महसूस हुई, जिन्हें 'हिन्दू' या 'मुस्लिम' के रूप में परिभाषित किया जा सकता था। ऐसे बहुत से समुदाय थे तकनीकी रूप से जिनकी कोई स्पष्ट पहचान नहीं थी, उनको हिन्दुओं में भी गिना जा सकता था और मुसलमानों में भी। अब इनको स्पष्ट रूप से हिन्दुओं या मुसलमानों के रूप में परिभाषित करने की जरूरत महसूस हुई। अल्पसंख्या में होने के कारण मुसलमान अपने पक्ष में अधिक से अधिक संख्या दिखाना चाहते थे, इसलिए विभिन्न स्थानों पर इस्लामीकरण की प्रक्रिया शुरू कर दी गई थी। स्वाभाविक है कि इनमें कुछ आन्दोलन धार्मिक उत्साह के कारण थे। धर्मान्तरण के सदियों बाद भी बहुत से मुसलमान सामाजिक परिवेश में प्रचलित हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन करते थे। यहां तक कि कई मामलों में दुर्गा और काली की पूजा जारी थी। अब्दुल अजीज की पुस्तक में हम पढ़ते हैं कि ''सैयद ने ढोल बजाने और पीरों व देवताओं को अर्घ्य अर्पित करने से रोका। दुर्गा, काली, मनसा और ऐसे देव व देवियों को शाप देने से रोका। उन्होंने कादिम रसूल की दरगाह में चढ़ावा चढ़ाने से रोका। पीरों, मूर्तियों और पूजाघरों के सत्कार जैसे सभी अधार्मिक कार्यों से रोका। अब उन भ्रष्ट 'खोंदकरों' की हालत दयनीय थी जिन्होंने मन्त्र लिखे और इनामों के बदले में फतवे जारी किए क्योंकि ऐसे सभी कार्यों का निषेध किया गया।''[25]

पुरातनपन्थी उलेमाओं और अन्य लोगों ने धार्मिक उत्साह के कारण इस्लाम

को स्थानीय हिन्दू प्रभाव से 'शुद्ध' करने के लिए 'शुद्धिकरण' के ऐसे कदम उठाए। इसने भी दोनों सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिक तनाव पैदा किया। चूंकि धर्मान्तरित लोगों पर हिन्दू रीति-रिवाजों की गहरी छाप थी इसलिए उनको समाप्त करना बहुत कठिन था और हिन्दू रीति-रिवाज बिना किसी अवरोध के जारी रहे। ऐसा केवल उस समय सम्भव हुआ जब सामाजिक परिवर्तनों ने उनको पदसोपान की सीढ़ी पर इतना ऊपर ठेल दिया कि वे शुराफा (उच्च वर्ग) के सामाजिक-धार्मिक व्यवहार से अपनी पहचान करने लगे।

असल में बंगाल के ग्रामीण मुसलमानों में हिन्दू रीति-रिवाजों का प्रभाव बहुत गहरा था। यद्यपि कोई समूह मुस्लिम था, लेकिन फिर भी उसको मुस्लिम के रूप में पहचानना बहुत मुश्किल था, एक समाज सुधारक ने बंगाली मुसलमानों के बारे में जो लिखा उसे उद्धृत करना दिलचस्प होगा–

"मुझे हमारे लोगों के कुछ धर्म-विपरीत आचरण याद हैं। मैं तुम्हारे फायदे के लिए उनका वर्णन करता हूं। यद्यपि वे मुसलमान थे, लेकिन वे होली, दीवाली, द्वितीया आदि मानते थे....यद्यपि वे मुसलमान थे, लेकिन वे ब्राह्मणवादी ढंग अपनाते थे....वे मुसलमान भैयादूज मनाते थे और गाय का आदर करते थे। वे लक्ष्मीवार (बृहस्पतिवार) को न ऋण देते थे और न लेते थे। अपनी दिनचर्या में हिन्दू शकुन-अपशकुनों का अनुसरण करते थे....हमारे लोगों के धर्म-विरुद्ध आचरण के बारे में मैं इससे अधिक और क्या कहूं।"[26]

19वीं शताब्दी के बंगाली इस्लाम (जहां तक भारतीय इस्लाम का सम्बन्ध है वह इससे कोई खास अलग नहीं था) के बारे में अब्दुल अजीज के विचार दर्शनीय हैं–"अनेक धर्मों और संस्कृतियों के सम्पर्क से, अन्धविश्वासों, पशु-पूजा तथा विभिन्न पूजा पद्धतियों के मिश्रण से, भक्ति आन्दोलनों, सूफी उदारता व एकेश्वरवाद के सिद्धान्त, धार्मिक काव्य अभिव्यक्तियों तथा अन्य कई भारतीय व विदेशी स्रोतों के मिश्रण से एक ऐसा अर्धईश्वरीय देवी-देवता आधारित भ्रामक विश्वासों का संगम था, जिसका मूल इस्लाम से कोई मेल नहीं था।"[27]

कुछ सुधार-आन्दोलन वास्तव में धार्मिक नहीं थे, बल्कि उनकी राजनीतिक अनुगूंजें थीं। ऐसे आन्दोलनों में शहरी अभिजात वर्ग राजनीतिक लाभ लेने के लिए आगे आया। रफीउद्दीन अहमद ने इसकी ओर ध्यान दिलाया कि कुछ सुधार-आन्दोलनों ने गरीब शहरियों को राजनीतिक अभिव्यक्ति दी। उन्होंने कहा कि "किसी भी सूरत में, सुधार आन्दोलन को केवल धार्मिक सुधारों का ही साधन नहीं मानना चाहिए, इनके माध्यम से मुस्लिम समाज के गरीब वर्गों को राजनीतिक अभिव्यक्ति मिली है, इसने आम ग्रामीणों में नई जागृति पैदा की, और लोगों के एक समुदाय में परिवर्तित होने में मदद करना इसका अपरिहार्य परिणाम था।"[28] गिढब के अनुसार, "इन आन्दोलनों ने पाश्चात्य उदार विचारों से भी अधिक प्रभावित किया,

इसके बाद मुस्लिम समाज में काफी परिवर्तन अपेक्षित थे।"[29]

जैसा कि पहले बताया है कि कुछ सुधार-आन्दोलन राजनीति से प्रेरित थे। रफीउद्दीन अहमद ने ठीक बिन्दु उठाया है कि, "अच्छे खाते-पीते और पढ़े-लिखे मुसलमान अब लोगों से सम्पर्क बनाने को उत्सुक थे, क्योंकि हिन्दुओं से बढ़ती स्पर्धा में ये उनको अपने सक्षम समर्थक के तौर पर देखते हैं। इस प्रयास में धार्मिक गुट के और 'मुल्ला' उपयोगी हो सकते थे। अब जमींदार व प्रभावशाली व्यक्ति गांवों और कस्बों में सामाजिक और धार्मिक प्रचार की केन्द्र बनी अंजुमनों को जोश से आयोजित करते थे। इसे प्रत्यक्षतः महसूस किया जा रहा था कि ऐसा प्रचार जनता की राजनीतिक लामबन्दी के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण था।[30]

रफीउद्दीन ने भी सटीक संकेत किया है कि मुस्लिम नेताओं की जागरूकता बढ़ रही थी और वे 'दासता' से मुक्ति के लिए राजनीतिक लामबन्दी और केन्द्रित कार्यक्रमों की आवश्यकता महसूस करते थे। पहले से ही नीतियों में बदलाव धीरे-धीरे उनके पक्ष में हो रहा था, यह जानने के बावजूद भी उन्होंने अपने बचाव तथा सरकार से रियायतें पाने के लिए राजनीतिक दबाव की महता को भी पहचान लिया था। इस बदलाव से विशेषकर मुस्लिम उच्चवर्ग को लाभ पहुंचा, जिसे घोषित रूप से 'मुस्लिम दबाव गुट' के रूप में संगठित होने को अंग्रेजों ने उत्साहित किया था। बेशक इसका लक्ष्य केवल भद्रलोक की बढ़ती शक्ति को काबू करने के लिए था।[31]

इस तरह साम्प्रदायिकता की जड़ें दो समुदायों के अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक सत्ता और सरकारी नौकरियां प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा में थीं। इस सारे झगड़े में कम से कम धर्म कोई ठोस कारण नहीं था और यदि यह था भी तो मात्र संयोगवश। यह स्पष्ट ही है कि धर्म ने समुदाय-निर्माण और चेतना-विकास में योगदान दिया है, लेकिन साम्प्रदायिकता की जड़ें इसमें कतई नहीं थीं। अपनी राजनीतिक आवश्यकता के अनुसार अंग्रेजों ने भी कभी एक समुदाय तो कभी दूसरे समुदाय को अपनी बेहतरी की मांगों को उठाने के लिए उकसाया।

अंग्रेजों ने अपने शासन के स्थायीत्व के लिए महसूस करना शुरू किया कि उन्हें भावनाओं का और विशेषकर धार्मिक भावनाओं का आदर करना चाहिए। समुदाय का अभिजात वर्ग अक्सर ऐसी मांगें उठाता था जो ऊपरी तौर पर धार्मिक लगती थीं लेकिन उनका वास्तविक स्वरूप राजनीतिक होता था। असल में अंग्रेजों को ये राजनीतिक संकेत देने की मंशा होती थी कि उनमें अपने पीछे कितने लोगों को एकत्रित करने की क्षमता है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक ने गणपति उत्सव शुरू किया और इसे राजनीतिक रंग दे दिया। इस विचार को उन्होंने मुसलमानों के ताजिया उत्सव से उधार लिया। इस तरह गणपति उत्सव महाराष्ट्र की हिन्दू जनता को मुसलमानों के प्रभाव से खींचने के लिए तथा उनको अलग

राजनीतिक पहचान देने के लिए शुरू किया गया था। 19वीं शताब्दी का गौ-रक्षा आन्दोलन भी हिन्दुओं को अलग राजनीति पहचान देने की कोशिश थी। इन आन्दोलनों ने उस समय हिन्दू समाज में काफी हलचल पैदा की और इससे कई कस्बों में दंगे हुए थे। 1893 में बम्बई शहर भी साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार हुआ था। इस तरह के धार्मिक सुधार-आन्दोलन हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग की राजनीतिक आकांक्षाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति थे। अंग्रेजों के भारत आने के साथ ही समाज की समस्त राजनीतिक और आर्थिक संरचना बदल गई थी, जिससे लामबन्दी की नई ताकतों का उदय हुआ और समाज में नई गतिशीलता का संचार हुआ। अंग्रेजी शासन के साथ नए राजनीतिक विचार आए और ज्ञान के नए क्षितिज खुले। जब समाज में सामाजिक-राजनीतिक और समाज-आर्थिक बदलाव होते हैं तो सत्ता के पुराने समीकरण बदलते हैं और नए जन्म लेते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया शान्तिपूर्ण ढंग से नहीं घटती। पुराने हितों के समाप्त होने और नए हितों के पैदा होने के अन्तराल में दोनों में संघर्ष शुरू होता है। यह संघर्ष क्या शक्ल अख्तियार करेगा यह प्रचलित सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ढांचे पर निर्भर करता है। चूंकि यूरोप में लोग एक ही धर्म या भाषा के थे, इसलिए औद्योगिक क्रान्ति से यूरोप के सभी देशों में कमोबेश वर्ग-संघर्ष की शुरुआत हुई, लेकिन भारत में अंग्रेजी शासन के कारण आए सामाजिक-राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक बदलावों ने वर्ग-संघर्ष का रूप ग्रहण नहीं किया। चूंकि इन बदलावों से दो सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग को असमान लाभ पहुंचा इसलिए इसने साम्प्रदायिक रूप ग्रहण किया। स्पष्ट है कि दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग का एक हिस्सा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में लोगों के अधिकार की लड़ाई के लिए जनोन्मुख आन्दोलन को संगठित करने की कोशिश कर रहा था, लेकिन इसने दोनों समुदायों की जनता को अपनी ओर इतना आकर्षित नहीं किया जितना कि विशिष्ट संकीर्ण आन्दोलनों या दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग के हितों के इर्द-गिर्द संगठित आन्दोलनों ने किया।

राष्ट्रवादी आन्दोलन के लिए अपने बूते पर लोकप्रियता हासिल करना बहुत कठिन काम था क्योंकि भारत के लोगों के लिए राष्ट्रवाद का विचार विदेशी था। तिलक ने राजनीतिक चेतना के लिए धार्मिक भावनाओं का सहारा लिया। इसी तरह महात्मा गांधी ने मुसलमानों को ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन में शामिल करने के लिए खिलाफत आन्दोलन का सहारा लिया, लेकिन मुस्लिम जनता को खिलाफत आन्दोलन से स्वतन्त्रता-आन्दोलन की ओर खींचना वास्तव में बहुत मुश्किल था। राष्ट्रवाद की अवधारणा ने उसको उत्साहित नहीं किया। जैसा कि पहले बताया है कि उलेमाओं ने भी धार्मिक 'फतवों' के माध्यम से मुसलमानों को विदेशी अंग्रेजों के खिलाफ जेहाद' के लिए प्रेरित किया। उन्होंने भारत को

'दारुल हरब' घोषित किया और इस तरह अपनी धार्मिक आजादी के लिए जेहाद में शामिल होना प्रत्येक मुसलमान पर बन्धन था। इस तरह उलेमाओं के हित अंग्रेजी शासन में निहित नहीं थे। अंग्रेजी शासकों ने मुस्लिम सम्प्रदाय के आर्थिक व राजनीतिक अभिजात वर्ग के प्रति जो तरफदारी दिखाई, उससे उलेमाओं को कुछ खास हासिल नहीं हुआ। इसलिए ये अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए कटिबद्ध थे। 19वीं शताब्दी में उन्होंने राजनीतिक दृष्टि से प्रगतिशील भूमिका अदा की। मुस्लिम अभिजात वर्ग ने विशेषकर उत्तर भारत में सब कुछ अंग्रेजी शासन की उनके प्रति तरफदारी से प्राप्त किया। चूंकि उस समय ऐसी तरफदारी के लिए उसकी दूसरे सम्प्रदाय से प्रतिस्पर्धा थी इसलिए साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुआ और यह 19वीं शताब्दी में साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति की व्याख्या करता है।

सन्दर्भ

1. प्रोसिडिंग्स ऑफ दी इण्डियन लेजीस्लेटिव कौंसिल, भाग-22 (81883), पेज-19-20, उद्धृत सी. एच. फिलीप (सं.), द इवोलूशन ऑफ इण्डिया एंड पाकिस्तान 1858-1947, सेलेक्ट डॉक्यूमेंट 1992, लन्दन, पृ. 185
2. फ्रांसिस रोबिन्सन, सेप्रेटिज्म अमंग इंडियन मुस्लिम्स 1975, दिल्ली, पृ. 22
3. वही, पृ. 33-34
4. असगर अली इंजीनियर, द मुस्लिम कम्युनिटीज ऑफ गुजरात, 1988, दिल्ली।
5. यह भी माना जाता है कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि जो यह दर्शाये कि मेयो की हत्या बहावी ने की है। यह तर्क दिया जाता है कि किसी सजा भुगत चुके अपराधी ने उसे चाकू मारा था।
6. फ्रांसिस रोबिन्सन, सेप्रेटिज्म अमंग इण्डियन मुस्लिम्स, पृ. 104
7. रामगोपाल, इंडियन मुस्लिम्स : ए पोलिटिकल हिस्ट्री (1858-1947) 1959, बम्बई, पृ. 74-75
8. फ्रांसिस रोबिन्सन, पृ. 117
9. 24 जनवरी, 1888 का सर सैयद का तैयब जी को पत्र, 'सोर्स मेटीरियल फॉर ए हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया' संकलित बम्बई गवर्नमेण्ट रिकार्ड, वाल्यूम II 1985-1920, (1958, बम्बई) पृ. 65-67 और 71-80
10. वही, पृ. 71
11. वही
12. असगर अली इंजीनियर, द मुस्लिम कम्युनिटीज ऑफ गुजरात
13. 24 जनवरी, 1888 का सर सैयद का तैयब जी को पत्र, 'सोर्स मेटीरियल फॉर ए हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया' संकलित बम्बई गवर्नमेण्ट रिकार्ड, वाल्यूम II 1985-1920, (1958, बम्बई) पृ. 67-68
14. सर सैयद अहमद खान, तफसीर-ए कुरान, वॉल्यूम III, 1880-95, अलीगढ़, पृ. 102-103, क्रिश्चिन डब्लयू-ट्रोल सैयद अहमद खान-ए रिइन्टरप्रेटशन ऑफ थिओलॉजी, 1978, दिल्ली, पृ. 211

15. शाह वलील्लाह 18वीं शती में भारत का महान धार्मिक चिन्तक था। इन्होंने मुगल साम्राज्य के पतन का सामाजिक विश्लेषण भी किया और शूनी इस्लाम के चार सम्प्रदायों तथा सूफी मत के बीच सामंजस्य भी स्थापित किया।
16. एन. एल. गुप्ता (सं.) नेहरू ऑन कम्युनलिज्म, 1965, दिल्ली, पृ. 49
17. वही, पृ. 49
18. वही, पृ. 25
19. डेविड लेलिवेल्ड, अलीगढ़स फर्स्ट जेनरेशन—मुस्लिम सॉलिडरिटी इन ब्रिटिश इण्डिया, 1978, दिल्ली पेज 100, उद्धृत पाल ब्रास 'मुस्लिम सेपेरेटिज्म इन यूनाइटिड प्रोविन्सस : सोशल कन्टेक्ट एण्ड पॉलिटिकल स्ट्रेटजी बिफोर पार्टिशन', इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, V (वर्ष 1970), 173
20. धारा (3) पैरा चार प्रस्ताव नं. 585/111-343C-68, उत्तर पश्चिमी प्रान्त एवं अवध सरकार, 18 अप्रैल 1900), गजट, अक्तूबर 1900, उद्धृत फ्रांसिस रोबिन्सन, पृ. 44
21. फ्रांसिस रोबिन्सन, वही, पृ. 44
22. वही, पृ. 46
23. जी. ओ. आई. होम डिपार्टमेण्ट, एस्टैबलिशमेंट (A), जून 1904, नं. 103, पृ. 137-139 डेविड लेलिवेल्ड, पृ. 100
24. ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, द कन्स्ट्रक्शन ऑफ कम्यूनलिज्म इन कॉलोनियल नार्थ इण्डिया, ओ यू. पी., नई दिल्ली, 1990, पृ. 199
25. अब्दुल अजीज, तारीख-ए-मुहम्मदिया, 1283, ए. एच. कलकता, पृ. 5
26. मुन्शी समीरुद्दीन बेदर-अल-घफिलिन, 1275, कलकत्ता, पृ. 72
27. अजीज अहमद, स्टडीज इन इस्लामिक कल्चर इन द इण्डियन एनवॉयरमेण्ट, 1969, ऑक्सफोर्ड, पृ. 211
28. रफीऊद्दीन अहमद, द बंगाल मुस्लिम—1871-1901, ए क्वेस्ट फॉर आइडेंटिटी, 1981 ओ. यू. पी., पृ. 71
29. एच ए. आर गिब्ब, मुहम्मदनिज्म, 1953, लन्दन, पृ. 165
30. रफीऊद्दीन अहमद, पृ. 95
31. वही, पृ. 161

अध्याय 3

स्वतन्त्रता-आन्दोलन और साम्प्रदायिकता

जैसा कि पिछले अध्याय में चर्चा है कि साम्प्रदायिकता का उद्‌भव 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के बाद हुआ, न कि मध्यकाल में, जैसा कि साम्प्रदायिक शक्तियां प्रचारित करती हैं। यह समझना बहुत जरूरी है कि साम्प्रदायिकता आधुनिक काल की परिघटना है और इसका मूल कारण राजनीतिक सत्ता व सरकारी नौकरियों में हिस्सेदारी है, न कि धर्म। धर्म इसका मूल कारण नहीं है, लेकिन लोगों को एकत्रित करने की क्षमता के कारण धर्म का हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रजातान्त्रिक समाज की तरह मध्यकालीन समाज में सत्ता और सरकारी नौकरियां प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं थी। (क्योंकि नौकरियां राजा या सामन्त की इच्छा-अनुसार दी जाती थीं, किसी कायदे के तहत नहीं) इसलिए मध्यकालीन समाज में साम्प्रदायिक राजनीति की गुंजाइश नहीं थी। इस प्रकार साम्प्रदायिकता आधुनिक परिघटना है जो भारत में अंग्रेजी राज के दौरान पनपी है। इसके अतिरिक्त चालीस के दशक के आरम्भिक चरण में ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता की सम्भावना बढ़ी तो सत्ता में हिस्सेदारी की प्रतिस्पर्धा भी सघन हुई। इसने दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष को तीव्र किया। चूंकि इन प्रतिद्वन्द्वी स्वार्थों को सुलझाया नहीं जा सका इसलिए अन्ततः देश का विभाजन हो गया।

पहले हम इस ओर ध्यान दिलाना चाहेंगे कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वतन्त्रता संघर्ष में जो राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा अपनाईं, वे भारत की मिट्टी से नहीं उपजी थीं बल्कि विदेशी अवधारणाएं थीं। असल में हिन्दुओं और मुसलमानों को इन दो मुख्य अवधारणाओं की कतई जानकारी नहीं थी। तिलक जैसे स्वतन्त्रता सेनानियों को हिन्दू जनता को स्वतन्त्रता-आन्दोलन में खींचने के लिए धार्मिक-उत्सवों व धार्मिक मुहावरे का प्रयोग करना पड़ रहा था। जैसा कि कुछ विद्वानों ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि हिन्दू धार्मिक मुहावरे ने मुसलमानों में सन्देह पैदा किया, इसने उनकी इस धारणा को मजबूत किया कि स्वतन्त्रता-संघर्ष में हिन्दुओं का वर्चस्व है जिसका परिणाम 'हिन्दू राज' की स्थापना

होगा। जैसाकि पहले बताया है कि सर सैयद अहमद ने कांग्रेस को 'हिन्दू पार्टी' करार देकर इसमें मुसलमानों के प्रवेश का विरोध किया, उन्होंने ऐसा अपने ही कारणों से किया। उनके इस कार्य से ब्रिटिश शासकों के हितों की पूर्ति हुई, क्योंकि राष्ट्रवादी पार्टी (कांग्रेस) के बनने से वे भयभीत थे।

भारत की जनता विभिन्न जातियों, धर्मों और क्षेत्रीय समूहों में बंटी हुई थी। प्रत्येक समूह को 'कौम' पुकारा जाता था। 'कौम' अरबी भाषा का शब्द है जो 'राष्ट्र' के लिए भी प्रयोग होता था। चूंकि भारत, हिन्दुस्तान या इण्डिया शब्द खूब प्रचलित थे इसलिए लोगों के मन में समस्त देश के प्रति एक अवधारणा तो थी, लेकिन वे राष्ट्र की आधुनिक अवधारणा से नहीं जुड़े थे। वे मुख्य तौर पर जाति, धर्म और क्षेत्रीय समूह के प्रति वफादार थे और प्रत्येक समूह खुद को 'कौम' के रूप में पहचानता था। वे पाश्चात्य अवधारणा *धर्मनिरपेक्षता* से भी बहुत कम परिचित थे, असल में यह उनके लिए बिल्कुल अलग अवधारणा थी। धार्मिक और सामाजिक परम्पराएं व रीति-रिवाज सर्वोच्च थे और यही उनके सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार को तय करते थे। पश्चिम में भी, धर्मनिरपेक्षता कैथोलिक चर्च और राजाओं के बीच लम्बे संघर्ष की उपज थी। मध्यकाल में चर्च ने सर्वोच्च राजनीतिक शक्ति हासिल कर ली थी, जिसे मार्टिन लूथर ने जर्मनी के धर्मनिरपेक्ष शासकों की मदद से पहली बार चुनौती दी। इस तरह धर्मनिरपेक्ष शासकों और चर्च में राजनीतिक वर्चस्व को लेकर तीव्र संघर्ष शुरू हो गया।

आर्थिक एवं सामाजिक रूप से शक्तिशाली हो रहा व्यापारी वर्ग अब राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी का आकांक्षी था, इसने भी धर्मनिरपेक्ष शासन की स्थापना के लिए चर्च के विरुद्ध संघर्ष में मदद की। दूसरी ओर तेजी से उभरते वर्ग और लगातार कमजोर पड़ते जा रहे राजतन्त्र में संघर्ष था। व्यापारी वर्ग स्वभावतः धर्मनिरपेक्ष शासन का इच्छुक था, क्योंकि चर्च के शासन का अर्थ था धर्म का आधिपत्य, जो वैज्ञानिक आविष्कारों में आड़े आता था जबकि ये वैज्ञानिक आविष्कार इस वर्ग के लिए बेहद लाभदायक थे। इस बारे में जवाहरलाल ने अपना मत इस तरह प्रकट किया है—''यूरोप के राजतन्त्र मजबूत केन्द्रीय राज्यों के रूप में विकसित हुए। राजा व प्रजा के पुराने सामन्ती विचार समाप्त हो चुके थे या समाप्त हो रहे थे। एक इकाई के रूप में *राष्ट्र* के नये विचार ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया। रिचेलू और मजारेन दो बहुत योग्य मन्त्रियों की देखरेख में फ्रांस ने इसका नेतृत्व किया। इसलिए राष्ट्रवाद देशभक्ति की कसौटी बना। मनुष्य के जीवन में धर्म सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व रहा था, अब वह हाशिये पर चला गया और नए विचारों ने इसकी जगह ले ली....17वीं शताब्दी भी गौर करने लायक है जिसमें विज्ञान का आधार बना और विश्व-बाजार का निर्माण हुआ। इस विस्तृत नए बाजार ने स्वाभाविक रूप से यूरोप की पुरानी अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके बाद यूरोप,

एशिया और अमेरिका में जो कुछ घटित हुआ उसे नई बाजार व्यवस्था को ध्यान में रखकर ही समझा जा सकता है। विज्ञान ने इसके बाद तरक्की की और इस विश्व बाजार की जरूरतों की पूर्ति के साधन मुहैया कराए।"[1]

इस तरह यूरोप में व्यापारीवर्ग के विकास ने लोगों की चेतना से धर्म के वर्चस्व को निकालने में मदद की, जिससे धर्मनिरपेक्ष शक्तियों का विकास हुआ। इस तरह राजनीतिक विचारधारा के रूप में 'धर्मनिरपेक्षता' की अवधारणा का जन्म चर्च और व्यापारी वर्ग के लम्बे संघर्ष से हुआ था। भारत में ऐसा कोई संघर्ष नहीं हुआ। चूँकि भारतीय व्यापारी वर्ग पूरी तरह सामन्ती वर्ग के अधीन था और उसने कभी राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी की इच्छा व्यक्त नहीं की, इसलिए यूरोप की तरह यहां का व्यापारी वर्ग कभी भी शक्ति के रूप में नहीं उभरा और न ही यूरोप की तरह इस वर्ग को वैज्ञानिक आविष्कारों से कोई मदद मिली। यह वर्ग अपने दृष्टिकोण में घोर रूढ़िवादी बना रहा और धर्म का इस पर पूरा प्रभुत्व बना रहा। यहां तक कि उपनिवेशवादी प्रभुत्व के कारण 19वीं शताब्दी से उभर रहे औद्योगिक व्यापारी भी अपने दृष्टिकोण में कभी स्वतन्त्र नहीं हो सके। इस तरह कहा जा सकता है कि इसने किसी तरह भी धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण विकसित नहीं किया। धर्मनिरपेक्षता का विचार कभी भारत में पैदा नहीं हुआ। यह पश्चिम से उधार ली गई अवधारणा थी, जिसने अधिक से अधिक भारत के अभिजात वर्ग के एक तबके को ही प्रभावित किया।

यह रोचक तथ्य है कि महात्मा फूले के नेतृत्व में निम्न जातियों ने धर्मनिरपेक्षता का स्वागत किया था। महात्मा फूले को इस अवधारणा में उच्च जातियों की जकड़ से निम्न जातियों की विशेषकर अछूतों की मुक्ति की सम्भावना नजर आई, इसलिए इन्होंने जोश से इसका स्वागत किया और उन अन्धविश्वासी विचारों के विरुद्ध लड़े जिन्होंने निम्न जातीय हिन्दुओं को उच्च-जातीय द्विजों का दास बना रखा था, चूंकि उच्च जाति हिन्दुओं के हित अलग थे, इसलिए उन्होंने अंग्रेजी शासन के प्रति अलग प्रतिक्रिया व्यक्त की एक ओर राजा राममोहन राय व उन जैसे लोगों ने सुधार किए, उदार प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाया दूसरी ओर उच्च जाति हिन्दुओं के एक वर्ग ने स्वयं को ब्रिटिश शासन की आधुनिक एवं विवेकशील दृष्टिकोण से अपमानित महसूस किया और उन्होंने हिन्दूवाद की श्रेष्ठता साबित करना शुरू कर दिया जिससे पुनरुत्थानवाद का जन्म हुआ। इस तरह भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य पर पुनर्जागरण और पुनरुत्थानवाद की दो धाराएं स्पष्ट रूप से उभरीं। हिन्दू अभिजात के एक वर्ग ने आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण का स्वागत किया जबकि दूसरा वर्ग परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रति उदासीन था, तो एक वर्ग ऐसा भी था जिसने इसे पूरी तरह नकार दिया। मुस्लिम अभिजात वर्ग में भी लगभग ऐसा ही था। फर्क केवल इतना था कि आधुनिकीकरण

और धर्मनिरपेक्षीकरण का स्वागत करने वाला मुस्लिम अभिजात वर्ग इसी तरह के हिन्दू अभिजात वर्ग के मुकाबले में बहुत कमजोर था। हालांकि उलेमा (मुस्लिम धर्मवेत्ता) धार्मिक मामलों में बहुत रूढ़िवादी थे, लेकिन उन्होंने मुत्ताहिदा कौमियत (सांझा राष्ट्रवाद) की अवधारणा स्वीकार करके राजनीति में प्रगतिशील भूमिका निभाई जिस पर हम बाद में प्रकाश डालेंगे। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रवाद' और 'धर्मनिरपेक्षता' की अवधारणाओं के प्रति दोनों प्रमुख समुदायों में अस्पष्टता थी।

भारत के सन्दर्भ में एक और जटिलता यह रही कि उपनिवेशवादी शासन व प्रशासन ने हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को खुले मन से स्वीकार करने में मुश्किलें पैदा कीं। पहला, भारत की अर्थव्यवस्था न तो तेजी से विकसित हुई और न ही इसके पास विश्व-बाजार पर कब्जा करने का अवसर था। यहां का व्यापारी वर्ग जो धर्मनिरपेक्ष और उदार दृष्टिकोण विकसित कर सकता था वह बहुत कमजोर बना रहा। दूसरा, अंग्रेजी शासन ने कभी हिन्दू सम्प्रदाय का तो कभी मुस्लिम सम्प्रदाय का पक्ष लेकर 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया। इस नीति ने दो प्रमुख समुदायों में अलगाव की भावना को प्रोत्साहित किया। तीसरा, दोनों समुदायों के अभिजात वर्ग में एक-दूसरे से आगे निकलने की भावना पनप गई और उन्होंने धर्म के नाम अपने-अपने समुदाय के लोगों को संगठित करने करने की कोशिश की। इसने धर्मनिरपेक्ष और आधुनिक प्रवृत्तियों को कमजोर किया, जो अन्यथा तेजी से और मजबूती से विकसित हो सकती थीं। इन कारणों से धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रवाद का स्वाभाविक विकास नहीं हो सका।

चूंकि अंग्रेज 1857 के विद्रोह में मुसलमानों की मुख्य भूमिका मानते थे इसलिए वे मुसलमानों से दूरी रखते थे और हिन्दुओं का पक्ष लेते थे, लेकिन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनने के बाद अंग्रेजों ने इसे राष्ट्रवादी हिन्दू पार्टी के रूप में देखा तो उन्होंने अपनी नीति को उलट दिया और हिन्दुओं से दूरी रखना और मुसलमान अभिजात वर्ग का पक्ष लेना शुरू कर दिया। उन्होंने सर सैयद और उनके मुस्लिम अभिजात वर्ग में आधुनिक शिक्षा प्रसार के कार्यों को संरक्षण दिया। ऐसे प्रयासों को मजबूत करने के लिए उन्होंने 20वीं शताब्दी के आरम्भ में मुस्लिम लीग के निर्माण को प्रोत्साहित किया। इस बात का प्रमाण है कि मुस्लिम लीग का गठन अंग्रेज शासकों के संकेत पर हुआ था। जिस शिष्टमण्डल ने वायसराय मिंटो से भेंट की उसमें अंग्रेज सरकार के वफादार शामिल थे। इसलिए वॉलपेट ने कहा, "1 अक्टूबर, 1906 को अंग्रेजी शासन के प्रत्येक प्रान्त और कई रियासतों से सम्बन्ध रखने वाले समृद्ध शक्ति-सम्पन्न व खानदानी 35 मुसलमान हिमालय की पहाड़ियों में स्थित शिमला महल के राजकीय नाचघर में इकट्ठे हुए....आगा

खान ने अपने प्रत्येक साथी का परिचय वायसराय से करवाया, तब लार्ड मिंटो ने सुन्दर व महीन चमड़े पर लिखा ज्ञापन ऊंचे स्वर में पढ़ा, जोकि उनके सचिव डनलप स्मिथ को पहले ही भेजा जा चुका था।[2] इस सम्बोधन में एक चेतावनी थी कि भारत के मुसलमानों ने सदा न्यायप्रियता और निष्पक्ष आचरण से प्रेम पर विश्वास किया, यह उनके शासकों की निशानी है। परिणामस्वरूप अपने हकों और दावों को उन तरीकों से रखने में गुरेज करते रहे, जो सरकार को किसी भी तरह से परेशानी में डाल सकते थे, हार्दिक इच्छा है कि भारत के मुसलमान भविष्य में भी इस श्रेष्ठ और लम्बे समय से चली आ रही परम्परा से नहीं हटेंगे। हाल की घटनाओं ने विशेषकर मुसलमानों के युवा वर्गों में इस तरह की भावनाएं पैदा की हैं जो विशेष परिस्थितियों और हालातों में आसानी से नरमपन्थी, शान्त मार्गदर्शन के प्रभाव से बाहर जा सकती हैं।[3] यह स्पष्ट दर्शाता है कि जो वायसराय से मिले वे अंग्रेज शासकों के वफादार थे। वास्तव में, जो ज्ञापन दिया गया था वह ऐंग्लो-मोहम्मडन ओरियंटल कॉलेज, अलीगढ़ के प्रधानाचार्य बेक द्वारा तैयार किया गया था। ज्ञापन में यह भी था, "हम आपसे आशा करते हैं कि आप शुरू में ही हमारे यह कहने को क्षमा करेंगे कि यूरोपीय ढंग की प्रतिनिधित्व वाली संस्थाएं भारतीय लोगों के लिए नई हैं। वास्तव में हमारे सम्प्रदाय के बहुत से बुद्धिजीवी सोचते हैं कि यदि इस तरह की संस्थाओं को भारत की सामाजिक-धार्मिक व राजनीतिक परिस्थितियों में सफलतापूर्वक लागू करना है तो अत्यधिक सावधानी व सतर्कता की आवश्यकता होगी और सतर्कता और सावधानी के बिना इस संस्थाओं को लागू करने से अन्य बुराइयों के साथ हमारे राष्ट्रीय हित संवेदनहीन बहुसंख्यकों की दया पर निर्भर ही जाएंगे।"[4]

इस तरह वायसराय को दिए ज्ञापन के शब्द ही दर्शाते हैं कि ये धन और शक्ति-सम्पन्न मुस्लिम निहित स्वार्थों की भाषा बोल रहे थे। वे लोकतान्त्रिक संस्थाओं के प्रति उत्साही नहीं थे, बल्कि सर सैयद की तरह वे लोकतान्त्रिक चुनावों और बहुसंख्यक समुदाय की नीयत के प्रति शंकालु थे। इसी रवैये की वजह से अन्ततः देश का विभाजन हुआ। ये भद्रपुरुष आम मुसलमानों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। वास्तव में ये उनसे काफी कटे हुए थे। ये सिर्फ अभिजात वर्ग के मुसलमानों के हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे और ऐसा अंग्रेजी शासकों के हितों के अनुकूल था।

इस अभिजात वर्ग की अपेक्षा, परम्परावादी उलेमा आम मुसलमानों के ज्यादा नजदीक थे। विख्यात अलीम और इस्लामिक इतिहासकार मौलाना शिबली नौमानी ने मुस्लिम लीग के निर्माण की तीखी आलोचना की। उन्होंने इसे 'अलीबुल-खिलकत' (अजीब उत्पत्ति) कहा। इसकी राजनीति पर टिप्पणी करते हुए कहा, "क्या यह राजनीति, खुदा न करे, नहीं!" "कहीं यह हाऊस ऑफ लॉर्ड तो नहीं! लगता तो

यही है।"[5] शिबली ने मुस्लिम लीग के लिए कई व्यंग्यात्मक शब्द प्रयोग किए हैं जैसे 'एक फर्जी बेकार चीज', 'सरब' (मृग मरीचिका), 'पोलिटिकल तमाशगर', 'बजीचा-ए-अतफल' (बच्चों को खेल) आदि।[6] शिबली नौमानी मुस्लिम लीग की अंग्रेजों के प्रति वफादारी और लीग द्वारा इसे भारतीयों के लिए प्रतिनिधि सरकार माने जाने पर बहुत क्रुद्ध थे। उनका मानना था कि लोगों को सरकार के कार्यों के विरोध करने का, अपने विचार प्रकट करने का और आलोचना करने का अधिकार है। उनके अनुसार जनता शासित तो होती है लेकिन शासन करने के वह कानून बनाती है और उनको लागू करती है। शिबली का मत था कि हिन्दुओं ने संघर्ष करके अंग्रेजों से कुछ रियासतें हासिल की हैं और मुस्लिम लीग अंग्रेजों से भीख मांगकर इन रियायतों में से अपना हिस्सा पाना चाहती है। अपने एक पत्र में वे यहां तक कहते हैं कि जो चीज शेर जंगल में शक्ति द्वारा प्राप्त करता है, वहीं गीदड़ अपने हिस्से की भीख मांगता है। इस तरह उन्होंने हिन्दुओं की शेर से और मुस्लिम लीगियों की गीदड़ से तुलना की है।

मुस्लिम लीग के पीछे सभी मुसलमान नहीं थे, जैसा कि इसके नेता अक्सर दावा करते थे। आम मुस्लिम जनता और उसके प्रतिनिधि हमेशा मुस्लिम लीग से दूरी रखते थे और यह देश के विभाजन तक लगातार चला। विभाजन का जिम्मेवार अभिजात वर्ग है न कि आम मुस्लिम जनता।

जिन्ना गोखले के बहुत करीब थे और जिन्ना ने उनको अपना राजतनीतिक गुरु स्वीकार किया। गोखले की तरह जिन्ना भी उदार व वामपन्थी राजनीतिज्ञ थे। असल में उनका मानना था कि राजनीति शिक्षित लोगों का काम है, जनता का इससे कोई लेना-देना नहीं है। वे महात्मा गांधी के इस विचार से सहमत नहीं थे कि जनता को राजनीति में लाया जाए। शुरू में जिन्ना ने लीग को एक नरमपन्थी नेतृत्व दिया। 1916 में लखनऊ में कांग्रेस-लीग समझौते का श्रेय जिन्ना को जाता है। जिन्ना ने इसके लिए कड़ी मेहनत की। फरजाना शेख ने लिखा है, "भारत में स्वशासन के सवाल पर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एकता के प्रयत्न में स्वाभाविक कठिनाइयां निहित थीं। 1909 में मुसलमानों के लिए अलग मतदाता सूची व अधिमान देने से कांग्रेस में काफी रोष था। मुसलमानों की मांगों के प्रति सहानुभूति रखने वाले गोपालकृष्ण गोखले जैसे लोग भी यह सोचकर उनसे कट गए कि उन्हें अपनी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व पाने का लालच हो गया है।"[8] यह तेज बहादुर सप्रु व मोतीलाल नेहरू आदि नरमपन्थी नेताओं का कांग्रेस में प्रभाव था, जिन्होंने कांग्रेस सदस्यों को मुसलमानों के लिए अलग मतदाता सूची की मांग मानने के लिए राजी किया, ताकि संवैधानिक परिवर्तन और स्वशासन के संघर्ष में उनकी मदद ली जा सके। मुसलमानों के एक वर्ग ने सर सैयद अहमद खान के नजदीकी लोगों विशेषकर सैयद हुसैन बिलगरामी ने लखनऊ समझौते का

विरोध किया। असल में बिलगरामी ने अपना डर व्यक्त किया कि इस समझौते में स्वशासन पर विशेष बल से जिन्ना जैसे 'निम्न जाति में जनमे' लोगों को भारतीयों पर शासन करने का मौका मिलेगा। इसमें तथाकथित 'उच्चवर्ग' के मुसलमानों का 'निम्न वर्ग' के मुसलमानों के प्रति अभिजात्य पक्षपात साफ नजर आता है। लेकिन विडम्बना यही है कि बाद में जिन्ना ने स्वयं इसी अभिजात वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया। इसी तरह बंगाल में भी प्रसिद्ध लोगों जैसे सैयद नवाब अली चौधरी और सर अब्दुर रहीम ने दावा किया कि समझौते ने अन्यायपूर्ण ढंग से मुसलमानों को 1909 के सुधारों से प्राप्त उपलब्धियों से वंचित कर दिया था और लीग को अधिमान के सिद्धान्त पर समझौता करने के लिए बाध्य किया। फरजाना की टिप्पणी, ''मुस्लिम अशरफ (उच्च वर्ग) से आए लोग जो नेतृत्व पर अपना स्वाभाविक हक समझते थे, मुसलमानों को अतिरिक्त प्रतिनिधित्व और 'राजनीतिक महत्त्व' के सिद्धान्त के प्रति समझौते में अपनाए गए हल्के-फुल्के रवैये से अत्यधिक दुःखी हुए।''[9]

सैयद बिलगरामी, सैयद नवाब अली चौधरी और मियां मुहम्मद शफी (पंजाब से) जैसे अशरफ (उच्च) मुसलमानों ने हमेशा मुसलमानों के विशेष दर्जे और उनको आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व देने पर जोर दिया, जिससे बार-बार समस्या पैदा हुई। इसके विपरीत राष्ट्रवादी मुसलमानों और उलेमाओं ने ऐसी व्यवस्था के लिए कभी जोर नहीं दिया। इस तरह लीग का मुसलमानों में हमेशा सीमित प्रभाव रहा और इसने हमेशा विनम्र प्रार्थना में विश्वास किया (जैसा कि मौलाना शिबली ने भी रेखांकित किया और लीग के इस रवैये की खिल्ली उड़ाई)। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन की शुरुआत के बाद लीग कांग्रेस पर बोझ बन गई। मुस्लिम जनता अभिजात वर्ग की बजाय असहयोग आन्दोलन के साथ थी।

यह बात ध्यान में रखने की है कि सन्दर्भ बदलने के साथ मानव-व्यवहार भी बदल जाता है। किसी ऐतिहासिक चरित्र के व्यवहार का मूल्यांकन करते समय ऐतिहासिक सन्दर्भ ध्यान में रखना आवश्यक है। जिन्ना का व्यवहार भी अपरिवर्तनशील नहीं था। बदलते राजनीतिक सन्दर्भों के साथ वह बदलता गया। अपने शुरुआती दिनों में जिन्ना भी औरों की तरह ही राष्ट्रवादी थे। सरोजनी नायडू के शब्दों में ''मुहम्मद अली जिन्ना और वजीर हुसैन ने मुस्लिम लीग में शामिल होने से पहले शपथ ली कि मुस्लिम लीग और मुस्लिम हितों के जुड़ाव से किसी भी समय और किसी भी तरह से राष्ट्रीय हितों को आंच नहीं आनी चाहिए, जिसके प्रति उनका जीवन समर्पित था।''[10] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उन दिनों मुस्लिम हितों के मुकाबले जिन्ना का राष्ट्रीय हितों से गहरा लगाव था और वे मुस्लिम उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय हितों को त्याग देने के विरुद्ध थे, लेकिन यह अर्थ कतई नहीं है कि जिन्ना का मुस्लिम हितों से कोई लगाव नहीं था। राजमोहन गांधी ने कहा, ''ऐसा

नहीं है कि 1913 से पहले जिन्ना मुस्लिम हितों से उदासीन थे। दो साल पहले ही मुस्लिम परिवार के किसी एक सदस्य के मूर्खतापूर्ण कार्यों से परिवार के सदस्यों के हितों की रक्षा के लिए वेलीडेटिंग बिल प्रस्तुत किया था। गोखले और जिन्ना के यूरोप जाने से कुछ समय पहले इसे वायसराय की स्वीकृति मिल गई। यह बिल पारित होने से मुसलमानों में जिन्ना का कद ऊँचा हो गया, निःसन्देह यह मुहम्मद अली की लीग में शामिल होने की इच्छा को व्यक्त करता है।''[11]

जिन्ना का दृष्टिकोण अपने आप में उदार और आधुनिक था, उन्हें धर्म और राजनीति का घालमेल पसन्द नहीं था। वह खिलाफत के मुद्दे को उठाने के विरुद्ध थे, क्योंकि इससे धर्म का राजनीति में हस्तक्षेप होता था। खिलाफत के सवाल पर जिन्ना के साथ मिलकर सी. आर. दास और विपिन चन्द्र पाल ने भी महात्मा गांधी का विरोध किया, लेकिन अली बन्धुओं (मुहम्मद अली व शौकत अली) व मोतीलाल नेहरू के समर्थन से कलकत्ता कांग्रेस में महात्मा गांधी ने बहुमत जीत लिया। अन्य नरमपन्थियों की तरह जिन्ना राजनीति में जनता की भागीदारी के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि उन्हें इस भागीदारी से घबराहट होती थी। जिन्ना ने गांधी जी के निमन्त्रण–''नए जीवन में भाग लो जो कि देश के सामने खुल चुका है, और अपने अनुभव व मार्गदर्शन से देश का भला करो''[12] का उत्तर दिया–

''यदि 'नए जीवन' से आपका अर्थ आपके तरीके और कार्यक्रम से है, मुझे डर है, मैं उन्हें स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि मेरा पक्का विश्वास है कि यह विनाश की ओर ले जाएगा। परन्तु वास्तविक नया जीवन जो देश के सामने है वह यह है कि हमारा वास्ता ऐसी सरकार से पड़ा है जो जनता की शिकायतें, भावनाओं और आस्थाओं की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रही। हमारे अपने देश के लोग बंटे हुए हैं, नरमपन्थी दल अभी भी गलत राह पर हैं। आपने अभी तक जिन संस्थाओं में पहुंच बनाई है, आपके तरीकों ने लगभग उन सारी संस्थाओं में विभाजन किया है और देश के जनजीवन में न केवल हिन्दू और मुसलमानों के बीच, बल्कि हिन्दू-हिन्दू के बीच और मुसलमान-मुसलमान के बीच यहां तक कि पिता-पुत्र के बीच भी। देश भर में लोग आमतौर पर मरने-मारने को तैयार हैं और आपके अतिवादी कार्यक्रमों ने कुछ समय के लिए अधिकतर अनुभवहीन युवाओं, अज्ञानी व अनपढ़ लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है। इसका अर्थ है–पूर्ण बिखराव व अव्यवस्था। इसके परिणामों की कल्पना करके ही डर लगता है, लेकिन मैं स्वयं आश्वस्त हूं कि सरकार की मौजूदा नीति इसका प्राथमिक कारण है और जब तक यह कारण दूर नहीं होता इसके प्रभाव बने रहेंगे। इस कारण को दूर करने की ताकत मुझमें नहीं है, लेकिन साथ ही मैं नहीं चाहता कि मेरे देशवासियों को तबाही के किनारे तक घसीटकर ले जाया जाए।''[13]

स्पष्ट है कि जिन्ना ने गांधीजी के तरीके पर कड़ी प्रतिक्रिया की, क्योंकि वे राजनीति में जनता की भागीदारी के पूर्णतः विरुद्ध थे। इस पत्र से एक बात और स्पष्ट है कि जिन्ना देशवासियों से जुड़ाव महसूस करते थे। वह नहीं चाहते थे कि 'देशवासियों को तबाही के कगार तक घसीटकर ले जाया जाए', वे हिन्दू और मुसलमान की दृष्टि से नहीं सोचते रहे थे, बल्कि अपने देशवासियों की दृष्टि से सोच रहे थे। लेकिन सन् तीस के बाद जिन्ना ने सिर्फ मुसलमानों के हितों को ही आगे रखा, ऐसा उनमें क्यों बदलाव हुआ इसकी भी एक रोचक कथा है। इस पर हम बाद में कुछ प्रकाश डालेंगे। यह भी रोचक है कि जिन्ना केवल विचारों और राजनीति में ही उदार नहीं थे, बल्कि पूर्णतः पश्चिमी सभ्यता में रंगे हुए थे। यहां तक कि वह सूअर का मांस खाना भी बुरा नहीं मानते थे। यह एक मजेदार कथा है—"सितम्बर, 1923 के चुनाव-प्रचार अभियान के दौरान (जिन्ना भी चुनाव लड़ रहे थे) जिन्ना और छगला दोपहर के भोजन के लिए जा रहे थे। श्रीमती जिन्ना टॉउन हॉल में खाने का डिब्बा लेकर आईं और सीढ़ियां चढ़ते हुए बोलीं—'जे (वह जिन्ना को यही सम्बोधित करती थीं) मैं तुम्हारे लिए सूअर के मांस की ताजा सैंडविच लाई हूँ।' जिन्ना हक्के-बक्के रह गए, 'हे भगवान्! ये तुमने क्या किया? क्या तुम मुझे चुनाव हराना चाहती हो? क्या तुम्हें अहसास है कि मैं ऐसे क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा हूं जिसमें केवल मुसलमान ही वोट डालते हैं। यदि मतदाताओं को पता चल जाए कि मैं दोपहर को सूअर का मांस खा रहा हूँ तो क्या तुम्हें लगता है कि मैं चुनाव जीत जाऊँगा?' 'वे बम्बई के प्रसिद्ध रेस्टोरेंट कोर्नावालिया में गए। जिन्ना ने दो कप कॉफी, एक प्लेट पेस्ट्री और एक प्लेट सूअर के मांस का अचार मंगाया। तभी मुसलमानी दाढ़ी वाला एक बुजुर्ग लगभग 10 साल के बच्चे के साथ अन्दर आया, शायद वह उसका पोता था। वे आए और जिन्ना के पास बैठ गए। यह स्पष्ट था कि उनको टॉउन हाल से भेजा गया था। तभी मैंने देखा कि बच्चे का हाथ धीरे-धीरे सूअर के अचार की प्लेट की ओर बढ़ रहा था। थोड़े संकोच के बाद उसने प्लेट से एक फांक उठाई, और मुंह में डाल ली और ऐसे चबाने लगा जैसे उसमें उसे बहुत मजा आ रहा हो। मैं बेचैनी से देखता रहा। कुछ समय बाद वे चले गए और जिन्ना मेरी ओर मुड़े और गुस्से में बोले, 'छगला, आपको अपने पर शर्म आनी चाहिए।' मैंने कहा, 'मैंने क्या किया?' जिन्ना ने सवाल किया, 'तुमने बच्चे को सूअर के मांस का अचार क्यों खाने दिया?' मैंने कहा, 'देखो जिन्ना, मैंने जल्दी निर्णय लेने के लिए दिमाग की सारी शक्ति लगा दी। मेरे लिए धर्मसंकट यह था कि जिन्ना को चुनाव हार जाने दूं या बच्चे का धर्म भ्रष्ट हो जाने दूँ? मैंने आपके पक्ष में निर्णय लिया।' "[14] इस तरह जिन्ना की इस्लाम में कोई धार्मिक आस्था नहीं थी। वह सूअर का मांस खाने को भी बुरा नहीं समझते थे, जिसकी इस्लाम में सख्त मनाही है।

राजमोहन गांधी ने महात्मा गांधी और जिन्ना के बीच एक रोचक तुलना की है। उसने कहा कि, "गांधी और जिन्ना में लन्दन की कानून शिक्षा और गुजराती पृष्ठभूमि ही एकमात्र समानता नहीं थी। दोनों हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वशासन चाहते थे। फिर भी उनमें कुछ विभिन्नताएं रेखांकित करने वाली हैं—गांधी अपने धार्मिक विश्वासों को प्रदर्शित करते थे, जबकि जिन्ना ने उनके बारे में कभी बात नहीं की। गांधी गरीबी को गले लगाते थे और उसकी वकालत करते थे जबकि जिन्ना ने करोड़ों रुपये कमाए और दूसरों को कमाने के लिए प्रेरित किया, जिन्ना बहुत बढ़िया कोट-पैंट पहनते थे और मालाबार पहाड़ी पर ऐश्वर्यपूर्ण घर में रहते थे, गांधी किसानों से कपड़े पहनते थे और मरुस्थल के गांव की झोंपड़ी में रहते थे। गांधी सभी को गर्मजोशी से मिलते थे, लेकिन बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि जिन्ना गर्मजोश हो सकते हैं। गांधी निराशाजनक माहौल में भी खुश रहते थे जबकि जिन्ना खुशगवार माहौल में भी शुष्क रहते थे। गांधी विनम्रता के स्रोत थे तो जिन्ना कई बार अहंकारी नजर आते थे। गांधी जी आम अनता को आन्दोलन में शामिल करना चाहते थे दूसरी ओर जिन्ना अभिजात रहकर ही सन्तुष्ट थे। जिन्ना और गांधी के विरोधों की सूची काफी लम्बी है।"[15]

बाद में, जिन्ना का अभिमानी व्यक्तित्व, आभिजात्यवादी दृष्टिकोण और अहंवादी व्यवहार देश के विभाजन के कारणों में से थे। जिन्ना कड़ा रुख लेते थे और अपना विरोध पसन्द नहीं करते थे। वे 'कट्टर संवैधानिक' थे और जन-आन्दोलनों में जनता की भागीदारी को पसन्द नहीं करते थे।

यद्यपि जिन्ना ने देश के विभाजन का रास्ता तैयार किया, लेकिन वे अकेले ही इसके जिम्मेदार नहीं हैं। और भी कई तथ्य हैं जिनको ध्यान रखना जरूरी है। यह रेखांकित करने योग्य है कि यद्यपि स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान मुस्लिम राजनीति की कई धाराएं थीं, लेकिन साम्प्रदायिक प्रचार ने पढ़े-लिखे काफी लोगों में यह प्रभाव जमा दिया है कि मुसलमानों में जिन्ना और उसकी मुस्लिम लीग की राजनीति का ही आधिपत्य था, और यह सच्चाई से कोसों दूर है।

मुसलमानों के विभिन्न समूहों में विवादास्पद मुद्दों पर शायद ही कभी सर्वसम्मति हुई होगी। जिन्ना के नेतृत्व में काफी नरमपन्थी मुसलमानों ने खिलाफत आन्दोलन की मदद करने का विरोध किया, जबकि कई जाने-माने मुसलमानों जैसे अली भाइयों, मौलाना आजाद और अन्य कई प्रसिद्ध उलेमाओं ने खिलाफत आन्दोलन का दिलोजान से समर्थन किया। वास्तव में इस आन्दोलन से लाखों मुसलमान कांग्रेस के निकट आए। जैसे कि पहले निष्कर्ष सामने आए हैं कि राष्ट्रवाद और धर्मनिरपेक्षता के विचार भारतीयों की समझ से परे थे और इन विषयों को लेकर मुसलमानों और हिन्दुओं को राजनीति में खींचना लगभग असम्भव होता। गांधीजी जनता की नब्ज को पहचानते थे और भारतीय राजनीतिक परिदृश्य को भांपने में

चतुर थे। मुस्लिम जनता को आकर्षित करने और उसे ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन में शामिल करने के लिए गांधी ने खिलाफत मुद्दे को तुरन्त पकड़ लिया। खिलाफत आन्दोलन के कारण मौलाना आजाद, अली भाई व अन्य कई मुस्लिम नेता और उलेमा गांधी जी से जुड़े।

धर्म की, सामान्यतः भारतीय राजनीति में और विशेषतः मुस्लिम राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। कुछ राजनीतिक संघर्षों में धर्म के प्रभाव को जानने के लिए मैक्सी रोडिसन को उद्धृत करना उचित होगा। उन्होंने कहा, "ईसाई धर्म की तरह इस्लाम की धार्मिक शिक्षाएं समाजवादी कार्यक्रमों द्वारा दिखाए गए रास्ते के अनुसार असमानता के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरणा दे सकती हैं। इस आधार पर थोड़े से ईसाइयों को हम संघर्ष में भाग लेते हुए देख चुके हैं और पालमिरो टॉग्लियाटी जैसे व्यक्ति ने महसूस किया कि न्याय के लिए संघर्ष करने के लिए कुछ लोगों को धार्मिक विश्वास द्वारा प्रेरित किया जा सकता है। उन लोगों के साथ जो धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त करते हैं इस तरह की तुलना अपने आप दिमाग में आती है, क्योंकि जैसा कि कुछ कल्पना करते हैं कि मुस्लिम संस्कृति दुनिया से अलग तरह की नहीं है।"[16]

स्वाभाविक है कि सामाजिक न्याय या राजनीतिक-मुक्ति के किसी संघर्ष में धर्म की भूमिका को नकारना नहीं चाहिए। धर्मनिरपेक्षता पाश्चात्य विचारधारा है, जो शायद भारतीय सन्दर्भों में इतनी सार्थक न होती। आजादी के 48 साल बाद भी धर्म एक बड़ी शक्ति है। बीसवीं शती के आरम्भ के बारे में सोचिए जबकि धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया बहुत धीमी थी और मध्यवर्ग बहुत ही संकुचित था। मेरे विचार से गांधी जी ने साम्राज्यवाद विरोधी-संघर्ष के लिए धर्म का सकारात्मक प्रयोग ठीक ही किया। और फिर, एक राजनीतिक नेता तात्कालिक स्थिति से जुड़ा होता है और उसे तात्कालिक सन्दर्भों में ही निर्णय लेने होते हैं और समय की जरूरत उसे विशिष्ट निर्णय लेने के लिए तैयार करती है। खिलाफत-आन्दोलन में ब्रिटिश-विरोध की बेहद सम्भावना थी। गांधी जैसा नेता उसे कैसे अनदेखा कर सकता था? गांधी जी स्वयं धार्मिक व्यक्ति थे और वे मुसलमानों की गहरी धार्मिक भावनाओं को जानते थे। खिलाफत-आन्दोलन के कारण ही लाखों मुसलमानों ने जोश के साथ साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में भाग लिया। सिर्फ यही नहीं, काफी उलेमाओं ने घोषणा की थी कि ब्रिटेन के अधीन भारत 'दारूल-ए-हरब' है और मुसलमान का कर्तव्य है कि अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए जेहाद छेड़ दें। काफी मुसलमान नेता जैसे उबैदुल्ला सिन्धी अफगानिस्तान चले गए और संघर्ष जारी रखने के लिए अस्थायी सरकार बनाई।

खिलाफत-आन्दोलन ने मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे बड़े नेता पैदा किए, यद्यपि बाद में खिलाफत-आन्दोलन के बारे में उनके विचारों में बहुत अधिक

बदलाव आया, लेकिन यह वाद का घटनाक्रम था। मौलाना आजाद ने गहरी धार्मिक आस्था के कारण खिलाफत आन्दोलन की वकालत की। यह सच है कि मौलाना आजाद स्वतन्त्रता-आन्दोलन में खिलाफत-आन्दोलन के माध्यम से नहीं आए, असल में वे 1905 में ही हिन्दू-क्रान्तिकारियों से जुड़ गए थे और अरविन्द घोष के साथी श्याम सुन्दर चक्रवर्ती के माध्यम से उनके एक समूह में शामिल होने का दावा किया था।[17] लेकिन खिलाफत आन्दोलन ने देश की स्वतन्त्रता के लिए उनकी निष्ठा को निश्चित रूप से बढ़ाया। इसके अतिरिक्त देवबन्दी उलेमाओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष में कांग्रेस की न केवल मदद की, बल्कि जमाएत-उल-उलेमा-ए-हिन्द नाम का अपना संगठन भी बनाया, जो कांग्रेस के बहुत करीब था। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, जमायत ने देश-विभाजन का डटकर विरोध किया। खिलाफत आन्दोलन के दौरान उलेमाओं ने स्वतन्त्रता-आन्दोलन में सीधे भाग लिया।

कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि उलेमाओं ने शक्ति का स्वाद चखा और राजनीति में उनका प्रवेश स्वास्थ्यकर नहीं था, उन्होंने राजनीति को धर्म से जोड़ दिया और धार्मिक कानूनों में बदलाव का विरोध किया। इलाहाबाद के दैनिक 'द इण्डिपेण्डेट' ने 3 जून 1920 के अंक में चेताया, "कहीं खिलाफत आन्दोलन की बागडोर पूरी तरह से आध्यात्मिक और धर्मवेत्ताओं के हाथ में न चली जाए।" आधुनिक काल के महत्त्वपूर्ण इतिहासकार मुशीरल हसन ने भी महसूस किया, "इस सच्चाई में कोई संदेह नहीं कि मुस्लिम पुजारियों को शामिल करना खतरों भरा था क्योंकि इन्होंने धार्मिक पक्ष को उठाया और खिलाफत-आन्दोलन के उपनिवेशवाद-विरोधी आयाम को कमजोर किया।" लेकिन वे भी मानते हैं, "आन्दोलन की सफलता के लिए उनकी भूमिका मुख्य थी, इस वास्तविकता के कारण पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त मुसलमानों और गांधी जी दोनों ने उलेमाओं के राजनीति में जुड़ाव के स्पष्ट खतरों की चेतावनी को नजरन्दाज करके भी इन्हें राजनीति से जोड़ा।"[18] यहां तक कि पाकिस्तानी विद्वानों ने भी उलेमाओं को खिलाफत राजनीति में जोड़ने पर विपरीत टिप्पणी की।[19] हसन ने रेखांकित किया, "1921 के आरम्भ तक उलेमा बोझ साबित हो रहे थे और उनके गठबन्धन के पास इसके सारे संकेत थे। अप्रैल 1921 में, मेरठ में अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेंस में कुछ उलेमाओं ने खिलाफत आन्दोलन में हिन्दुओं के शामिल होने को लेकर आपत्ति करके तथा शरीयत के अनुसार इसका क्षेत्र परिभाषित करने की मांग करके इसका स्पष्ट संकेत दिया। इसके बाद अब्दुल बरी ने गम्भीर चेतावनी दी कि मुसलमान आन्दोलन को छोड़ने और अपनी समस्याओं को हिंसक तरीके से दूर करने के लिए तैयार थे। उलेमाओं ने महात्मा गांधी की उदार और सतर्कतापूर्ण नीति और खिलाफत आन्दोलन के लिए सीमित कदम उठाए जाने के प्रति असन्तोष प्रकट किया। मई

1921 में कुछ उलेमाओं ने प्रयास बन्द कर दिए और बिहार व पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों में 'दारुल कजा' अदालतों की स्थापना की और ग्रामीण क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन के खिलाफ 'जेहाद' का धर्मोपदेश दिया।''[20]

यद्यपि खिलाफत आन्दोलन में उलेमाओं की भूमिका के बारे में मुशीरल हसन की आलोचना काफी हद तक सच है, लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हर मानव-समूह में नरम से उग्र की ओर अलग-अलग रुझान मिलते हैं। कुछ उलेमाओं ने गांधी को अतिरिक्त सावधान और नरमपन्थी समझकर अधीरता दिखाई, तो दूसरों ने गांधी की विवशताओं को समझा। उन्हें पूरे देश के लोगों को अपने साथ लेकर चलना था। खिलाफत संघर्ष पर हिन्दू भी एकमत नहीं थे। कुछ बिल्कुल शान्त रहे, तो कुछ ने विरोध भी किया। वास्तविकता तो यह थी कि उलेमाओं के बीच भी सत्ता-संघर्ष था और कुछ उलेमा उग्र मुद्रा अख्तियार करके दूसरों से पहलकदमी छीनना चाहते थे। भारत जैसे विशाल देश में विभिन्न समूहों और विभिन्न विचारों में सत्ता संघर्ष का होना स्वाभाविक ही था। इसी कारण साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन में धर्म की भूमिका को पूर्णतः नहीं नकारा जा सकता, विशेषकर तब जबकि भारत के लोगों को धर्मनिरपेक्ष मुद्दे इतना प्रेरित न कर रहे हों जितना धार्मिक मुद्दे। खिलाफत आन्दोलन के प्रति आम मुसलमानों के उत्साह ने सभी सीमाओं का अतिक्रमण किया। यहाँ अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेंस, बम्बई की घटना का जिक्र करना उचित ही होगा। जब मौलवी गुलाम मुहम्मद ने, मौलवियों व अन्यों के खिलाफ दर्ज मुकद्दमों के बारे में प्रस्ताव पेश किया और 200 रुपये का योगदान दिया, तो दूसरों ने प्रस्ताव का समर्थन किया और अपना योगदान देने की घोषणा की। तभी बड़े उत्तेजनापूर्ण माहौल के बीच हैदराबाद का एक फकीर अयूब आगे आया और उसने कहा कि वह भी कुछ देना चाहता है, लेकिन उसके पास पैसा नहीं है। उसने अपने को एक दास के रूप में बेचने को प्रस्तुत किया। उसने कहा कि वह अपने खरीददार की वफादारी से सेवा करेगा बशर्ते उसका क्रय मूल्य इस निधि में डाल दिया जाए। एक मानव-प्रेमी ने उसकी ओर से बीस रुपए जमा करवाकर उसे दासता से बचाया।[21]

खिलाफत आन्दोलन ने हकीम अजमल खान और डॉ. अंसारी जैसे शान्त व नरमपन्थी नेता भी पैदा किए। स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनकी भूमिका किसी से रत्तीभर भी कम नहीं है। वे इधर केवल धार्मिक भावनाओं के कारण ही नहीं झुके थे। यहां हम सीमान्त गांधी के नाम से प्रसिद्ध खान अब्दुल गफ्फार खान का जिक्र करना चाहेंगे। खान साहब ने हिंसक पठानों को अहिंसक खुदाई खिदमतगार में बदलने का चमत्कार किया। जो खुदाई खिदमतगार बनने का इच्छुक था, वह विधिवत शपथ लेकर घोषणा करता था, ''मैं खुदाई खिदमतगार हूँ, क्योंकि खुदा को किसी सेवा की जरूरत नहीं है, इसलिए मैं उसके जीवों की निस्वार्थ भाव से

सेवा करके उसकी सेवा करूंगा। मैं कभी भी हिंसा नहीं करूंगा, मैं किसी तरह का प्रतिकार या बदला नहीं लूंगा, अपने प्रति निर्दयी व अत्याचारी को भी मैं क्षमा कर दूंगा। मैं किसी प्रकार के षड्यन्त्र, पारिवारिक कलह और बैर में शामिल नहीं हूंगा, और सभी पख्तूनों को मैं अपना भाई और साथी समझूंगा। मैं बुरे रीति-रिवाज व व्यवहार को त्याग दूंगा। मैं सादा जीवन जिऊँगा, अच्छे कार्य करूंगा और बुरे कार्यों से दूर रहूंगा। मैं अच्छा चरित्र निर्माण करूंगा और अच्छी आदतें डालूंगा। मैं निरर्थक जीवन नहीं जिऊंगा। मैं सेवा के बदले में इनाम की उम्मीद नहीं करूंगा। मैं निर्भय बनूंगा और हर तरह के त्याग के लिए तैयार रहूंगा।"[22]

पठानों में अनुशासनात्मक, शान्तिपूर्ण और अहिंसक शक्ति तैयार करना वास्तव में चमत्कार था। खुदाई खिदमतगार सिर्फ अहिंसक नहीं रहे, बल्कि देश की स्वतन्त्रता के लिए बड़ी संख्या में अंग्रेजी जेलों में भी गए। ये मुस्लिम साम्प्रदायिक राजनीति के समर्थक नहीं थे, बल्कि उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से देश के विभाजन का विरोध किया।

अब्दुल गफ्फार खान पख्तूनों से बात करने गांव-गांव गए। उनके संगियों ने देखा कि उनकी सफेद कमीजें जल्दी ही मैली हो जाती हैं। उन्होंने इन्हें रंगने का निर्णय लिया। उनमें से एक चमड़ा रंगने के कारखाने में गया और उसने अपनी कमीज, पायजामा और पगड़ी को पशुओं का चमड़ा रंगने के लिए बनाए गए घोल में डुबो दिया। उनका रंग गहरा लाल हो गया। दूसरों ने भी ऐसा ही किया। इस रंग ने सबका ध्यान आकर्षित किया। लाल कपड़े वालों को देखने के लिए लोग खेतों में अपना काम छोड़-छोड़ कर आए। वे इन्हें देखकर वशीभूत हो गए। अब्दुल गफ्फार खान ने खुदाई खिदमतगारों के लिए लाल रंग चुना। इसीलिए इन्हें लाल कुर्ती भी समझा जाता है। आजादी उनका मंतव्य था और सेवा उनकी प्रेरणा। यात्रा करते हुए वे गाते थे—

हम ईश्वर की सेना,
मौत और धन से विचलित हुए बिना,
हम और हमारा नेता बढ़ते जा रहे,
मरने को तैयार।
हम करते हैं सेवा और प्यार
अपने लोगों और लक्ष्य को,
स्वतन्त्रता हमारा लक्ष्य है
हमारा जीवन कीमत है जो हम अदा करते हैं।[23]

खान अब्दुल गफ्फार खान ने अपने साथियों को अहिंसक रहने और गांधी के तरीके का सख्ती से पालन करने के लिए प्रेरित किया। जैसा कि सभी जानते हैं कि खान साहब ने विभाजन का पूर्णतः विरोध किया। उन्होंने हमेशा राष्ट्रवाद

में विश्वास किया और अपने राष्ट्रवादी निश्चयों से वे कभी नहीं डिगे। वे सीमान्त प्रान्त के रहने वाले थे जहां धार्मिक और जातीय पूर्वाग्रह बहुत मजबूत थे (आज भी हैं) लेकिन वे खुले विचारों और उदार दृष्टिकोण के थे। एक घटना से उनकी उदार मानसिकता की व्याख्या की जा सकती है। 2 अक्टूबर 1936 को महात्मा गांधी अपना 67वां जन्मदिन मनाकर 'भारत माता' के मन्दिर के उद्घाटन समारोह में भाग लेने बनारस गए। वहां पत्थर पर भारत का मानचित्र खोदा गया था। भगवानदास ने मेहमानों का स्वागत किया और इस पर जोर दिया कि सभी धर्मों के मूल सिद्धान्त समान हैं—प्रेम, शान्ति और एकता को बढ़ावा—गांधीजी ने वेद का श्लोक उच्चरित किया, "हे धरती माता, विष्णु की पत्नी, समुद्र जिसके वस्त्र हैं, पहाड़ जिसकी छाती है, मैं तुझे नमन करता हूं। मैं तुझे अपने पैरों से छू रहा हूं इसके लिए मुझे क्षमा करना।" अब्दुल गफ्फार खान ने इस समारोह में उपस्थिति पर आनन्द व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि पुराने जमाने में मस्जिदें इसलिए बनाई गई थीं ताकि सभी धर्मों के लोग वहां जाकर प्रार्थना कर सकें। उन्होंने कहा कि महात्मा गांधी ने जिस मन्दिर का अभी उद्घाटन किया है वह पूजा व प्रार्थना के सांझे-स्थल के उच्च उद्देश्य को पूरा करेगा।[24] खान साहब का धार्मिक मान्यताओं के बारे में दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था और उन्होंने साझे पूजा-स्थल का उत्साहपूर्वक स्वागत किया। यदि हिन्दू और मुसलमानों में ऐसा रवैया रहता तो हमारा देश साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा के आतंक से बच सकता था। 26 जनवरी 1938 को बन्नू में उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त की सभा में ली गई शपथ से अहिंसा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता स्पष्ट है। उन्होंने नेहरू व अन्यों को भी शपथ दिलाई, "हम स्वीकार करते हैं कि हिंसा स्वतन्त्रता प्राप्ति का सबसे कारगर तरीका नहीं है। भारत ने शान्तिपूर्ण व वैध तरीकों से शान्ति व आत्मनिर्भरता प्राप्त की है और स्वराज प्राप्ति के लिए लम्बा रास्ता तय किया है। इन तरीकों को अपनाकर ही हमारा देश स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा।" शपथ में आगे है, "हम स्वतन्त्र भारत के लिए शपथ लेते हैं और पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति तक अहिंसक तरीके से स्वतन्त्रता संघर्ष चलाने की प्रतिज्ञा करते हैं।" नेहरू के मन में उनके लिए बहुत सम्मान था। उसी सभा में 20,000 से अधिक लोगों को सम्बोधित करते हुए नेहरू ने कहा, "प्रान्त ने एक महान इन्सान पैदा किया है जिस पर पूरे भारत को नाज है। सारे माहौल को बदलकर उसने सीमान्त लोगों को दलदल से निकाला है। इन्होंने खुदाई खिदमतगारों की बड़ी सेना खड़ी की और एक लड़ाकू जाति को अहिंसक स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए संगठित किया। यह चमत्कार है जो उन्होंने किया है। अहिंसा का हथियार शक्तिशाली हथियार है। बहादुर और साहसी ही इसे अपना सकते हैं। हमने बहादुरी से अंग्रेजी सत्ता को चुनौती दी है। इसने भारत की समाप्त हो रही व शिथिल पड़ी चेतना को जीवनी शक्ति दी है। केवल शक्ति

ही शक्ति का सामना कर सकती है। हवाई बमों का मुकाबला केवल हवाई-बम ही कर सकते हैं, तीर और धनुष नहीं और यहां तक कि बन्दूक भी नहीं, ये अब अनुपयोगी और पुराने पड़ चुके हैं। इसलिए भारत ने शक्तिशाली शत्रु से मुकाबला करने के लिए अहिंसा के इस नए हथियार को ईजाद किया है और अंग्रेजी साम्राज्य की नींव हिला दी है।''[25] खान साहब दृढ़निश्चयी थे, उनको अहिंसा, शान्ति और सांझे राष्ट्रवाद से कोई नहीं डिगा सकता था।

यह रोचक तथ्य है कि राष्ट्रवाद और हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रति खुदाई खिदमतगारों के उत्साह में 1946 के अन्त तक भी कोई कमी नहीं आई थी। 21 अक्तूबर 1946 को 25 हजार लोगों की विशाल सभा आयोजित हुई जिसमें विभिन्न भागों में रहने वाले लोग और सरदारयब के पास रहने वाले आजाद मोहम्मद जनजाति के नेता नेहरू का स्वागत करने आए। खुदाई खिदमतगार की ओर से 'केन्द्रीय सरकार के उप-राष्ट्रपति' नेहरू के स्वागत सम्भाषण में कहा :

''सम्माननीय नेता—आज हम पख्तून खुदाई खिदमतगार के माध्यम से आपका हार्दिक स्वागत करते हैं। हे बहादुर सेनापति, हम सब देश की आजादी के लिए आपकी मेहनत और त्याग की प्रशंसा करते हैं और हम समझते हैं कि लोगों की राजनीतिक तरक्की और अंग्रेजों से सत्ता छीनने में आपका महान योगदान है। पख्तून जानते हैं कि आप हिन्दुओं, मुसलमानों और देश के अन्य निवासियों के बीच कोई भेदभाव नहीं करते। दुःखी मुसलमान नागरिकों की ओर से काश्मीर के हिन्दू राजा के साथ आपका व्यवहार इस बात का सबूत है कि आपके दिमाग में साम्प्रदायिकता के लिए कोई जगह नहीं है और यही कारण है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों आपका आदर करते हैं।''[26]

जब साम्प्रदायिक उन्माद पूरे चरम पर था उस समय में दिया गया यह स्तुति पत्र पख्तून और उनके नेता का हिन्दू-मुस्लिम एकता पर आधारित साझे राष्ट्रवाद को समर्थन करने का स्पष्ट प्रमाण था। इससे स्पष्ट होता है कि पाकिस्तान की मांग पर सभी मुसलमान एकमत नहीं थे, जैसा कि आमतौर पर माना जाता है।

खान अब्दुल गफ्फार खान के अलावा काफी मुसलमान नेता और बुद्धिजीवी देश-विभाजन के विचार के पूर्णतः विरुद्ध थे। जैसाकि पहले बताया है कि जमायत-अल, उलेमा-ए-हिन्द खिलाफत के समय से ही कांग्रेस का सहयोगी बना और पूरे स्वतन्त्रता- आन्दोलन में इसका समर्थक रहा। वास्तव में मुस्लिम लीग को भी मुसलमान धर्मवेत्ताओं का समर्थन नहीं मिला। दूसरी ओर कांग्रेस की तरफ लगभग सभी भारतीय मुस्लिम धर्मवेत्ता थे। बाद में मुस्लिम लीग केवल एक महत्त्वपूर्ण धर्मवेत्ता— मौलाना शबीर अहमद उस्मानी के कारण शेखी बघारती थी, जो कि जमायत से सांगठनिक सवाल पर अलग हो गए थे। धर्मवेत्ताओं के संगठन

में प्रमुख धर्मवेत्ता मौलाना महमुदुल हसन, मौलाना हसन अहमद मदनी, मौलाना हिफजूर रहमान और अन्य थे।

मौलाना महमुदुल हसन स्वतन्त्रता-आन्दोलन के पक्के समर्थक थे और मौका मिलते ही अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना चाहते थे। जमायत-ए-अल-उलेमा-ए-हिन्द के अक्तूबर, 1920 के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में मौलाना ने जोर देकर कहा कि अंग्रेज, इस्लाम और मुसलमानों के सबसे बड़े शत्रु हैं, उनको सहयोग न करना हर मुसलमान का धार्मिक कर्तव्य है। उन्होंने कहा कि 'इस्तिखलास-ए-वतन' (देश की आजादी) के लिए लोगों से मदद मांगना उचित है, लेकिन इससे धार्मिक अधिकार प्रभावित नहीं होने चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ने के लिए जिनके पास तोप, बन्दूक, हवाई जहाज आदि नहीं हैं तो उनको धरने-प्रदर्शन, राष्ट्रीय एकता (कौमी इत्तिहाद) और अंग्रेजों से मांगों पर एकमत होकर कार्रवाई जैसे हथियार अपनाने चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि अल्लाह का शुक्र करना चाहिए कि मुसलमानों को उसने इस पवित्र काम के लिए (तुर्की में खिलाफत) देशवासियों से मदद दिलवाई। उन्होंने कहा कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकता को सबसे जरूरी और कारगर समझते हैं और एकता के लिए कोशिश करने वालों का बहुत आदर करते हैं, क्योंकि इसके बिना भारत की आजादी हासिल करना असम्भव होगा....यदि भारत की आबादी के ये दो भाग और सिख भी एकता और शान्ति से रहें तो अभी तक ऐसी कोई चौथी शक्ति इतनी ताकतवर नहीं है कि अपने क्रूर तरीकों से इनको दबा या हरा सके। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक-दूसरे के प्रति दुराग्रह न रखने को चेताया। एक हिन्दू को मुसलमान के बर्तन से पानी पीने को मना नहीं करना चाहिए और मुसलमान को हिन्दू के शव को कन्धा देने से इन्कार नहीं करना चाहिए। यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए सामे-कातिल है (मारने वाला जहर)। ये काफी प्रेरक विचार हैं।

उलेमाओं में एक और बड़ा नाम अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामिक पाठशाला के दारुल ऊलम, देवबन्द के शेख-उल-जामिया यानि उपकुलपति मौलाना हुसैन अहमद मदनी का है, जो मौलाना महमुदुल हसन के उत्तराधिकारी थे। मौलाना हुसैन अहमद भी सांझे राष्ट्रवाद (मुताहिद कौमियत) की अवधारणा से प्रतिबद्ध थे, वे इसे इस्लाम की शिक्षा के विपरीत नहीं समझते थे। वास्तव में जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द का मानना था कि पवित्र पैगम्बर ने भी यहूदी, ईसाइयों और मदीना के पेगनों से समझौता (मुआहीदाह) किया था। जब वे मक्का से स्थानान्तरण के बाद उस शहर में गए तो विभिन्न धार्मिक समुदायों से परस्पर शान्ति और सद्भाव से रहने के लिए समझौता किया। इस मुआहीदाह के अनुसार ही एक-दूसरे की धार्मिक स्वन्तन्त्रता का आदर हुआ।

दिसम्बर, 1937 में जामा-मस्जिद, दिल्ली के बाहर मौलाना हुसैन अहमद मदनी के भाषण के बाद प्रसिद्ध उर्दू शायर इकबाल ने उनको राष्ट्रीयता के सवाल पर चुनौती दी। इस भाषण में उन्होंने कहा था कि आजकल कौमें वतन (भौगोलिक सीमाओं) की बुनियाद पर बनती हैं, न कि मजहब पर। यह वह समय था जब पाकिस्तान-आन्दोलन जोर पकड़ता जा रहा था और इस आन्दोलन का आधार धार्मिक राष्ट्रवाद था। विचारधारात्मक दृष्टि से इकबाल राष्ट्रवाद का विरोध कर चुके थे। 1930 में इलाहाबाद में मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय भाषण में इस विषय पर उन्होंने बोला था कि मुसलमान चाहे किसी भी देश से सम्बन्ध रखता हो, वह इस्लामिक राष्ट्र का सदस्य है। मौलाना की सांझे राष्ट्रवाद की अवधारणा से इकबाल बहुत नाराज हुए। मुस्लिम लीग समर्थक उर्दू अखबारों ने इस विवाद को हवा दी। इकबाल ने भी फारसी के कुछ पद संकलित किए जो काफी अखबारों में प्रकाशित हुए। इन पदों में उसने कहा, "गैर-अरब दुनिया अभी भी धर्म के रहस्यों को नहीं जानती, नहीं तो देवबन्द से हुसैन अहमद के यह अजीब वक्तव्य क्या हैं। धर्म-उपदेशक की गद्दी से कहा कि मिलात (इस्लामिक समुदाय) राष्ट्र (वतन) है। मुहम्मद अरबी (इस्लामिक पैगम्बर) के रुतबे से वे कितने अनभिज्ञ हैं। धर्म की मूर्ति मुस्तफा तक (पैगम्बर) पहुंचो। यदि वहां तक नहीं पहुंचते तो यह सब बू लहावी है (यानि अबू लहान, पैगम्बर का दुश्मन)" ।[28]

उर्दू के महान शायर इकबाल के इन पदों ने एक ओर 'वतनीयत' (राष्ट्रवाद) को खारिज किया तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद की अवधारणा देने के लिए मौलाना हुसैन अहमद मदनी को लताड़ा। इन पदों ने गहरा विवाद पैदा किया। मौलाना के विरुद्ध सम्पादकीयों, बयानों और लेखों की बाढ़-सी आ गई। मौलाना के शिष्य तलत ने उन्हें अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने इस मामले में तलत को विस्तृत पत्र लिखकर बताया कि लीग के कार्यकर्ताओं का उनकी सभा (राजनीतिक) में विघ्न डालने का इरादा था। भारत की आन्तरिक स्थितियों के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि आधुनिक समय में राष्ट्र भौगोलिक सीमाओं पर आधारित है नस्ल या धर्म पर नहीं। जो इंग्लैण्ड में रहते हैं, चाहे वे यहूदी, ईसाई, प्रोटेस्टेंट या कैथोलिक कोई भी हों, वे एक राष्ट्र हैं। यही बात अमेरिका, जापान, फ्रांस आदि पर भी लागू होती है। कुछ ने सभा में विघ्न डालना शुरू कर दिया। अगले दिन अल-अमन जैसे अखबारों ने समाचार छाप दिया कि मौलाना अहमद ने कहा कि राष्ट्रीयता देश से तय होती है, धर्म से नहीं। उन्होंने तलत को लिखा, "मेरे भाषण का सन्दर्भ छोड़ दिया और मेरे विचारों को जानबूझकर तोड़ा-मरोड़ा गया।" मौलाना ने कहा कि उनका यह आशय बिल्कुल नहीं था कि धर्म और धार्मिक समुदाय (मिलात) भौगोलिक सीमाओं पर निर्भर करती हैं। मौलाना के अनुसार, यहां तक कि इकबाल जैसा व्यक्ति भी 'कौम' और 'मिलात' शब्दों में

अन्तर नहीं कर सका, यद्यपि दोनों शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। मिलात का अर्थ है शरीयत और दीन (धर्म) और कौम का अर्थ है स्त्री-पुरुषों का समुदाय जो एक राज्य में रहता है। तब वे इस कथन पर पहुंचे कि हिन्दुस्तानी जनता का अर्थ है जो भारत में रहते हैं चाहे वह गोरा या काला है, बंग्ला या उर्दू बोलता है, हिन्दू या मुसलमान है, पारसी या सिख है, क्योंकि हिन्दुस्तानी एक कौम है।

मौलाना आगे स्पष्ट करते हैं कि इस्लाम नस्ल या भाषायी या भौगोलिक भेदभाव में विश्वास नहीं करता, लेकिन इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि वह राष्ट्रीयताओं पर आधारित विशिष्टताओं को कमतर करके देखता है। मौलाना हुसैन के अनुसार शरीयत के अनुसार ऐसे कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं है जो विभिन्न राष्ट्रों पर कौम की अवधारणा के खिलाफ जाते हों। इसके बाद गरीबी और पिछड़ेपन का सन्दर्भ देकर उन्होंने कहा कि धार्मिक भेदभाव व अन्य मतभेदों को भुलाकर बुराइयों के खिलाफ सभी भारतीयों की एकता के अलावा कोई रास्ता नहीं है और इस एकता का आधार सिर्फ भौगोलिक सीमाएं हो सकती हैं। उन्होंने कहा कि भौगोलिक राष्ट्रवाद ही एक रास्ता है। सभी धर्मों, जातियों और भाषायी वर्गों पर आधारित संयुक्त राष्ट्रवाद ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का मकसद था।

रोचक तथ्य है कि मौलाना ने सर सैयद तक की नीतियों की भी आलोचना की और बाद में मुस्लिम लीग की भी। उन्होंने कहा कि सर सैयद ने मुसलमानों को डरपोक और अंग्रेजों का वफादार बना दिया। उनका (सर सैयद) संगठन कांग्रेस विरोधी था। वह लिखते हैं कि यह उनकी नीति ही थी जिसकी परिणति शिमला में अंग्रेजी शासकों के संकेत पर मुस्लिम लीग के निर्माण में हुई। उन्होंने कहा कि भारत की जनता में फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने 'शुद्धि और संगठन' को प्रोत्साहित किया। मौलाना ने यहां तक कहा कि लीग हमेशा अंग्रेजी शासकों की सहायक रही है और अपने आकाओं की सेवा के लिए लीग नेताओं ने जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द व मुस्लिम समुदाय के सच्चे सेवकों और गम्भीर कार्यकर्ताओं पर हमले किए।

लेकिन मौलाना मदनी के दूसरे पत्र, जिसमें उन्होंने डॉ. इकबाल को जवाब दिया, का एक पैरा परेशान करता है। वे लिखते हैं, "मैं कह रहा था कि वर्तमान समय में राष्ट्र वतन (भौगोलिक सीमा) से बनते हैं। यह वर्तमान समय की मानसिकता और दृष्टिकोण पर टिप्पणी है। यहां यह नहीं कहा था कि तुम्हें ऐसा करना चाहिए। यह मन्तव्य नहीं, बल्कि तथ्य है। किसी (अखबार) ने इसकी रिपोर्टिंग सलाह के रूप में नहीं की और किसी ने इसे निर्देश और अभिप्राय होने का संकेत भी नहीं दिया।"[29]

डॉ. इकबाल की मुस्लिम समुदाय में काफी शह थी, उनसे शान्तिपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के लिए यह मौलाना हुसैन अहमद मदनी का कूटनीतिक बयान भी हो सकता है, लेकिन वास्तविकता यह थी कि मौलाना कांग्रेस और इसके सांझे

राष्ट्रवाद के बहुत बड़े समर्थक थे। मुस्लिम लीग के गुण्डों ने उन पर कई बार हमला किया। ऐसे ही एक हमले का जिक्र उनके अनुयायी मौलाना तैयब साहब, जो बाद में देवबन्द पाठशाला के मुखिया बने, के पत्र में मिलता है[30]–

"आपको पत्र लिखते हुए कलेजा मुंह को आता है। मैं अपनी भावनाओं को दबा नहीं सकता। इसका बयान नहीं किया जा सकता कि मुस्लिम लीग के गुण्डों ने मेरे गुरु व शेखउल (उपकुलपति) इस्लाम मौलाना हुसैन अहमद साहब मदनी को किस तरह तंग किया और उन पर जानलेवा हमला किया। यह देखकर मेरा दिल बहुत दुखी हुआ। जिस व्यक्ति ने अपना जीवन इस्लाम के लिए लगा दिया, मुस्लिम लीगी उससे इस कदर अनैतिक, अनादर, पीड़ादायक व दुष्टतापूर्वक पेश आए।

"मगरिब की प्रार्थना के बाद वे सैदपुर के लिए रवाना हुए। वहां मुस्लिम लीग के गुण्डों की भीड़ ने उन्हें व उनके साथियों को घेर लिया और उनका रास्ता रोक लिया। बड़ी मुश्किल से वे प्लेटफार्म से बाहर आए। लेकिन लीग के गुण्डों ने उन्हें आगे नहीं जाने दिया। वे काले झण्डे लिए हुए थे और मुर्दाबाद के नारे लगा रहे थे। बहुत से गुण्डों ने शराब पी रखी थी। एक लीगी ने हजरत मदनी के सिर से टोपी उतार दी। उनके साथियों को बहुत मुक्के मारे। गाड़ीवान घायल कर दिया गया। पुलिस को सूचना दी गई, लेकिन उसने किसी तरह की जिम्मेवारी लेने से इन्कार कर दिया, और उनका आगे जाना असम्भव हो गया....उन्होंने स्टेशन पर ही रात बिताई और सुबह कटिहार वापस आ गए। जो वहां घटित हुआ वह शर्मनाक था, लीगियों ने (जिनमें गुण्डों से भी अधिक स्कूलों के बच्चे थे) गड्ढे में कीचड़ भर दिया, एक फटे-पुराने जूतों की माला लाए और एक मधुमक्खियों के छत्ते को गन्दे पानी में डुबोया और काले झण्डे लहराते हुए मुर्दाबाद के नारे लगाए।"

कई प्रख्यात उलेमा कांग्रेस के साथ रहे और लीग व उसकी पाकिस्तान की मांग के खिलाफ लड़े। इसलिए यह सोचना गलत होगा कि पाकिस्तान की मांग धार्मिक कारणों से की गई थी। इकबाल और मौलाना मदनी के बीच बहस से स्पष्ट है कि पाकिस्तान की मांग इस्लाम पर आधारित नहीं थी। जमायत-अल-उलेमा-ए-हिन्द के अलावा पंजाब के अहरारों ने भी पाकिस्तान की मांग का जबरदस्त विरोध किया। अहरार पंजाब के स्वतन्त्रता सेनानी थे। ऐतिहासिक शख्सियत अताउल्ला शाह बुखारी ने इसका नेतृत्व किया। चौधरी अफजल हक भी इसके नेता थे।

चौ. अफजल हक ने अपने भाषण में मुसलमानों से कहा कि सच्चे मुसलमान और ईमानदार राष्ट्रवादी हिन्दू में सोचने के ढंग के अलावा कोई अन्तर नहीं है। व्यवहार में दोनों देश की आजादी की मांग कर रहे हैं और एक-दूसरे के अच्छे

पड़ोसी हैं। भारत के हितों से विश्वासघात करने वाले को दोनों देश और समुदाय का गद्दार मानते हैं।[31] चौधरी ने मुस्लिम लीग और इसकी भय की राजनीति का पर्दाफाश किया, उन्होंने कहा कि हालांकि मुस्लिम लीग में ईमानदार लोगों की कमी नहीं है, लेकिन एक पार्टी के तौर पर यह मुसलमानों में हिन्दू वर्चस्व का भय पैदा करती है। चूंकि भय का भूत समुदाय को तबाह कर देता है और समुदाय बिना मारे ही मर जाता है, इसलिए यह भय की राजनीति इस्लाम के शत्रुओं के प्रति नहीं, बल्कि खुद इस्लाम के प्रति ही शत्रुता है।....केवल वही मुसलमान दूसरे समुदायों से डरता है जिसमें इस्लाम के सच्चे सिपाही की भावना नहीं है। ऐश्वर्य में पले-पुसे मुस्लिम लीग के नेता इस्लाम जैसे निर्भय धर्म और शूरवीर मुसलमानों का नेतृत्व नहीं कर सकते। समझदार लोग विचार करें कि लीग में धन के आकर्षण के सिवाय क्या है। मुस्लिम लीग त्याग व बलिदान की भावना से कोसों दूर है। इस्लाम में पूंजीवाद का अस्तित्व अवांछनीय है क्योंकि यह (इस्लाम) के समता के सिद्धान्त के विरुद्ध है।

कांग्रेस पार्टी में हिन्दू वर्चस्व के कारण अहरार भी कांग्रेस और इसके कुछ नेताओं के आलोचक थे। उन्हें यह धर्मनिरपेक्ष पार्टी से अधिक हिन्दू पार्टी नजर आई। इस कारण काफी मुसलमान कांग्रेस से अलगाव महसूस करते थे। यद्यपि अहरारों ने आजादी के लिए हिन्दुओं से मिलकर संयुक्त संघर्ष को मान्यता दी, लेकिन उन्होंने कांग्रेस के हिन्दू वर्चस्व पर आपत्ति की और मुस्लिम लीग की राजनीति को पूर्णतः नकार दिया। कांग्रेस अपने में—उग्र दक्षिणपन्थ से उग्र वामपन्थ तक और धर्मनिरपेक्षता से साम्प्रदायिकता तक—कई धाराएं समेटे थी। उग्र हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन हिन्दू महासभा के सदस्य भी कांग्रेस में थे। इन तत्त्वों के वक्तत्व यह प्रभाव छोड़ते थे जैसे कांग्रेस हिन्दू संगठन था। कांग्रेस में ऐसे तत्त्वों की मौजूदगी से कांग्रेस और उसकी धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ मुस्लिम लीग के प्रचार को बल मिलता था।

पुनः रेखांकित करने की जरूरत है कि साम्प्रदायिकता का धार्मिकता से कोई लेना-देना नहीं था। इसमें किसी को सन्देह नहीं था कि स्वतन्त्र भारत में अल्पसंख्यक मुसलमानों को पूरी धार्मिक आजादी होगी। इस सवाल को तभी सुलझा लिया गया था जब उलेमाओं ने अपने को कांग्रेस से जोड़ा। कांग्रेस ने उनको विश्वास दिला दिया था कि मुस्लिम पसर्नल कानून को नहीं बदला जाएगा और मुसलमानों को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता होगी और उलेमाओं ने भी साझे राष्ट्रवाद की आधुनिक अवधारणा को सच्चे दिल से स्वीकार किया था। उलेमाओं के साथ-साथ कई प्रमुख मुसलमान भी कांग्रेस को समर्थन दे रहे थे। वे भी धार्मिक अल्पसंख्यकों के प्रति कांग्रेस की नीति पर किसी तरह का सन्देह नहीं करते थे। असल में विवाद धार्मिक आजादी पर नहीं था, बल्कि सत्ता में हिस्सेदारी को लेकर था। साम्प्रदायिक सवाल

मुख्यतः इसी से जुड़ा था, चूंकि सत्ता में हिस्सेदारी के सवाल का आखिर तक कोई सन्तोषजनक हल नहीं निकला और अन्ततः देश का विभाजन हो गया। यहां तक कि जिन्ना के चौदह सूत्री मांग-पत्र, जो उन्होंने 1929 के प्रारम्भ में ही (नेहरू रिपोर्ट विवाद के बाद) तैयार कर लिया था और जो मुस्लिम लीग के लिए महत्त्वपूर्ण बन गया था, में भी मुसलमानों की धार्मिक आजादी के बारे में कुछ विशेष नहीं था। मुख्यतया यह धर्मनिरपेक्ष मांगों से सम्बन्धित था। यह विधान-मण्डलों में मुसलमानों के प्रभावी प्रतिनिधित्व, बाम्बे प्रान्त से सिन्ध का अलगाव, अलग चुनाव क्षेत्र जारी रखने आदि से सम्बन्धित था।[32] यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों पार्टियां इसका सन्तोषजनक हल निकाल लेतीं तो शायद हमारे देश के विभाजन का सवाल ही नहीं उठता।

नेहरू रिपोर्ट इस मामले में मुख्य पड़ाव है। मुसलमानों के एक वर्ग ने मुख्य मांग उठाई कि केन्द्रीय विधानमण्डलों में वे एक-तिहाई प्रतिनिधित्व इसलिए चाहते थे ताकि बहुसंख्यक हिन्दू अल्पसंख्यक मुसलमानों के खिलाफ कोई कानून न बना सकें। 20 मार्च, 1927 को, दिल्ली में, जिन्ना की अध्यक्षता में प्रमुख मुस्लिम नेताओं की बैठक हुई। इसमें सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि यदि निम्न सुझाव मान लिए जाएं तो मुसलमान अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग छोड़ देंगे– "(1) सिन्ध को बाम्बे प्रान्त से अलग करके एक अलग राज्य बनाया जाए; (2) उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्तों और बलूचिस्तान में भारत के अन्य प्रान्तों की तरह सुधार किए जाएं; (3) पंजाब और बंगाल में आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाए; (4) केन्द्रीय विधानमण्डल में एक-तिहाई से उपरोक्त ढंग से गठित किए सभी प्रान्तों में संयुक्त मतदाता सूची के लिए तैयार हैं और बंगाल, पंजाब व उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्तों में जहां हिन्दू अल्पसंख्यक हैं, उनको वही रियायतें होंगी जो हिन्दू बहुल प्रान्तों में मुसलमानों को देने के लिए तैयार होंगे।"[33] जिन्ना ने मुस्लिम दृष्टिकोण इन शब्दों में व्यक्त किया, "मुसलमानों को महसूस हो कि वे बहुसंख्यक समुदाय की ओर से किसी भी अत्याचार से सुरक्षित हैं। राष्ट्रीय सरकार के पूर्णतः विकास के संक्रमण काल के दौरान उन्हें महसूस न हो कि कहीं बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यकों को दबाने और उनसे निर्दयता का व्यवहार न करने लगे जैसा कि दूसरे कई देशों की बहुसंख्यक जनता की प्रवृत्ति रहती है।"[34]

काफी हद तक यह देश के विभाजन का कारण बना। धर्म या धार्मिक आजादी नहीं थी बल्कि सत्ता में हिस्सेदारी व आजाद भारत में मुसलमानों का उचित ध्यान रखने की गारण्टी वास्तविक विवाद थी। हालांकि मुस्लिम जनता प्रतिनिधित्व आदि के इन सवालों के लिए चिन्तित नहीं थी और केवल पढ़े-लिखे मुसलमान ही ये गारण्टी चाहते थे। जिन्ना के 14 सूत्रों में गरीब ओर अनपढ़ मुसलमान जनता

के लिए कुछ नहीं था। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जिन्ना जैसे आधुनिक शिक्षा प्राप्त किए हुए मुसलमानों ने ही पाकिस्तान-आन्दोलन का नेतृत्व किया, न कि धार्मिक मामलों के विद्वान मौलाना अहमद मदनी जैसों ने या धार्मिक नेताओं में उच्च स्थान रखने वाले अबुल कलाम आजाद जैसे लोगों ने, बल्कि ये तो पाकिस्तान के विचार के ही विरुद्ध थे।

ध्यान देने योग्य है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का दिल्ली में मुसलमान नेताओं द्वारा तैयार की गई मांगों के प्रति नकारात्मक रुख नहीं था। कांग्रेस कार्यकारिणी ने संयुक्त मतदाता सूची स्वीकार करने के लिए मुस्लिम नेताओं की सराहना की। अखिल भारतीय कमेटी ने 15 मई, 1927 को बम्बई में होने वाले अधिवेशन में प्रस्तुत करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम सवाल पर लम्बा प्रस्ताव पारित किया। यह उल्लेखनीय है कि इसने मुसलमानों के समस्त सुझाव मान लिए। अखिल भारतीय केन्द्रीय कमेटी ने थोड़ा सुधार करके इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।[35]

दिसम्बर, 1927 के मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने मुसलमानों को पूरा आश्वासन दे दिया कि उनके जायज हितों की रक्षा की जाएगी....संयुक्त मतदाता सूची में आबादी के आधार पर प्रत्येक प्रान्त व केन्द्रीय विधानमण्डल में सीटें आरक्षित की जाएंगी....। सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त और ब्लूचिस्तान से सम्बन्धित अन्य मुस्लिम सुझावों को भी इसमें स्वीकार कर लिया गया।[36]

मद्रास अधिवेशन में पारित प्रस्ताव पर बोलते हुए कांग्रेसी नेता गोविन्द वल्लभ पन्त ने प्रस्ताव के बारे में कहा, "सबसे अच्छा सबसे सही इन्तजाम जिसे दोनों समुदायों से भरी समर्थन मिला।" उन्होंने यहां तक कहा कि प्रस्ताव पर एम. आर. जयकर और मदन मोहन मालवीय जैसे हिन्दू महासभा के नेताओं की भी पूरी सहमति थी।[37]

हालांकि जल्दी ही हिन्दू और मुसलमान दोनों की ओर से समस्याएं खड़ी हुईं। मुहम्मद शफी के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के विरोधी गुट ने अलग मतदाता सूची त्यागने से मना कर दिया ओर जिन्ना को इस महत्त्वपूर्ण सवाल पर हिन्दुओं से समझौता करने का दोषी करार दिया। हिन्दू महासभा ने भी किसी भी प्रान्त में किसी भी समुदाय के लिए आरक्षण के सिद्धान्त को रद्द कर दिया, इसने संयुक्त मतदाता सूची मानने के एवज में नए मुस्लिम प्रान्त के गठन का कड़ा विरोध किया। इसने नए राज्य निर्माण की अपेक्षा मतदाता सूची को छोटी बुराई माना।[38] इस तरह साम्प्रदायिक समस्याएं पैदा करने के लिए दोनों तरफ से साम्प्रदायिक लोग जिम्मेवार थे। जिन्ना के विचार तर्कसंगत थे और वे कहीं भी विभाजन के नजदीक की बात नहीं कर रहे थे। दूसरी ओर उन्होंने मुसलमान नेताओं को संयुक्त मतदाता सूची स्वीकार करने के लिए राजी किया। अपने एक

भाषण में समझौते के संकेत दिए। ये साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रबल इच्छुक नेता की आवाज प्रतीत होती है—

"हमारी तरक्की के लिए जरूरी है कि हिन्दू-मुस्लिम की समस्या सुलझाई जाए, हमारे जैसे विशाल देश के समस्त समुदाय मैत्री एवं भाईचारे की भावना से रहें। कोई देश किसी एक समुदाय का प्रभुत्व बनाकर और अल्पसंख्यकों को सुरक्षा की गारण्टी दिए बिना लोकतान्त्रिक संविधान और जनतान्त्रिक प्रतिनिधिक संस्थाएं स्थापित करने में सफल नहीं हुआ है, जहां भी ऐसी समस्या पैदा हुई है। जब तक वैधानिक प्रावधानों के तहत स्पष्ट व पूर्ण रूप से अल्पसंख्यकों के हितों और अधिकारों की रक्षा न की जाए तो अल्पसंख्यक पूर्वाग्रही हो सकते हैं, कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अत्याचारी एवं उत्पीड़नकारी बन सकता है और यह भय और भी बढ़ जाता है जब हमारा वास्ता बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता से पड़ता है।"[39]

एकता बनाए रखने के लिए तेज बहादुर सप्रू ने केन्द्रीय विधानमण्डल में सीटें आरक्षण के लिए जिन्ना की मांग का समर्थन किया। उन्होंने इस मांग के बारे में कहा, "यह नेहरू रिपोर्ट की विरोधी नहीं है।" उन्होंने अपने प्रतिनिधि साथियों से कहा, "समस्या को सुलझाने के लिए हमें कुशल राजनीतिज्ञ की तरह व्यवहार करना चाहिए और अंकगणितीय आंकड़ों से भ्रमित नहीं होना चाहिए।"[40]

बहस का उत्तर देते हुए आजादी हासिल करने के लिए जिन्ना ने पुनः हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा—

"....यदि आप इस प्रश्न को आज नहीं सुलझाते तो हमें इसे कल सुलझाना पड़ेगा, लेकिन इस दौरान हमारे राष्ट्रीय हितों को नुकसान पहुँचेगा। हम सब इस धरती के पुत्र हैं। हमें मिलकर रहना है। हमें मिलकर काम करना है, और अपने मतभेदों को हर हालत में दूर करना है, न कि अधिक बिगाड़ना है। यदि हम एकमत नहीं होते तो कम से कम हम इस बात से सहमत हों कि मत वैभिन्न्य हो सकता है और हम दोस्तों की तरह विदा हों (सम्मेलन से—अनु.)। मुझ पर विश्वास करो, मैं एक बार फिर दोहराता हूँ कि जब तक हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता नहीं होती, तो भारत कोई तरक्की नहीं कर सकता। हमारे समझौते में कोई तर्क, विचार या कोई और अड़चन न आए। हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता देखने से अधिक खुशी मुझे किसी चीज में नहीं मिलेगी।"[41]

इस तरह यह सामने आता है कि 1928 तक जिन्ना हिन्दू-मुस्लिम एकता के हामी थे और कांग्रेस के काफी नेता उनके विचारों का अनुमोदन करते थे। नेहरू रिपोर्ट की असफलता की जिम्मेदार हिन्दू-महासभा थी। एसोसियेटिडड प्रैस से साक्षात्कार में कहा, "सम्मेलन में जयकर के भाषण ने नेहरू रिपोर्ट की नियति पर मुहर लगा दी थी।"[42] एम. सी. छगला ने नेहरू रिपोर्ट पर बातचीत असफल हो जाने पर निम्न बयान जारी किया—

"मैं विशेष रूप से रेखांकित करना चाहता हूं कि मुस्लिम लीग ने सम्मेलन में जो प्रतिनिधि भेजे, वे अत्याधुनिक विचारों के मुसलमान थे, जिनमें से अधिकतर ने पहले ही नेहरू रिपोर्ट पर सहमति दे दी थी, और राष्ट्रीय हितों के लिए उनमें से कई अपने ही साथियों से लड़े हैं और संगठन से अलग हो गए हैं....यदि इन प्रतिनिधियों को साम्प्रदायिक करार दिया जाए तो शायद पूरे देश में एक भी राष्ट्रवादी मुसलमान नहीं है। मैं अभी भी आशा करता हूं कि सम्मेलन समापन से पहले लीग की मांगें स्वीकार करने का कोई रास्ता जरूर निकल आएगा। जिस प्रकार मुस्लिम लीग ने संघर्ष किया है और शफी गुट को बाहर निकाल दिया है, उसी प्रकार हर प्रावधान में मुसलमानों द्वारा दिए गए सुझावों, सुधारों और सलाहों पर हर बार सम्मेलन छोड़ने की धमकी देने वाली गूंजों और जयकार से भी निबटना चाहिए।"[43]

हालांकि सम्मेलन इस मुद्दे को सुलझा नहीं सका और इस कारण जिन्ना के रवैये में बदलाव हुआ, अब वे सोचते थे कि मुसलमानों को एक संस्था के रूप में कांग्रेस के प्रति अपने रुख पर पुनर्विचार करना चाहिए। वे इस विचार से सहमत हो गए कि मुसलमानों के बिखराव के कारण ही एक बार उनकी मांग अस्वीकार करके कांग्रेस उन्हें नजरन्दाज कर रही है। इस प्रकार नेहरू रिपोर्ट साम्प्रदायिक सवाल और कांग्रेस के प्रति जिन्ना के रवैये में बदलाव बिन्दु थी। इसके बाद उन्होंने कड़ा रुख अपनाना शुरू किया। तीस के दशक के आरम्भ में लन्दन में दो गोलमेज कांफ्रेंसों में उनका रवैया इसका प्रमाण है। अभी तक पाकिस्तान के विचार का जन्म नहीं हुआ था और जिन्ना साम्प्रदायिक समस्या को विभिन्न प्रान्तों के विधानमण्डल और संसद में मुस्लिम प्रतिनिधित्व के रूप में सुलझाना चाहते थे। गोलमेज कांफ्रेंस सफल नहीं हुई और अन्ततः अंग्रेजों ने 1935 के संविधान में अपनी योजना के तहत मुसलमानों को संसद में एक-तिहाई प्रतिनिधित्व देने की घोषणा की। नेहरू रिपोर्ट की असफलता के बाद के घटनाक्रम से जिन्ना इतने हताश हुए कि वे भारत छोड़कर लन्दन में बस गए और वहां वकालत शुरू कर दी।

जिन्ना के दृष्टिकोण में दूसरा मोड़ 1937 के चुनावों और कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग के दो मन्त्री लेने से इन्कार करने पर आया। हालांकि दोनों के बीच औपचारिक या अनौपचारिक कोई समझौता नहीं था, लेकिन चुनावों के दौरान दोनों में कोई टकराव भी नहीं था। वास्तव में काफी जगह कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने एक-दूसरे के उम्मीदवारों को समर्थन दिया और उम्मीद थी कि कांग्रेस लीग के प्रतिनिधियों को कैबिनेट में शामिल करेगी। 1937 के चुनाव अभियान के जिन्ना के भाषणों में भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति चिन्ता झलकती है। जनवरी, 1937 को नागपुर में अपने भाषण में उन्होंने कहा–

"हिन्दुओं और मुसलमानों को एक साझे मंच पर आना चाहिए। अपने प्रदेश

के कल्याण और मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए उन्हें इकट्ठे रहना और इकट्ठे काम करना चाहिए....यह (लीग) स्वतन्त्र और प्रगतिशील आदर्शों के लिए कटिबद्ध है। उसकी नए विधानमण्डल में सर्वोत्तम प्रतिनिधि भेजने की इच्छा है, जो प्रगतिशील समूहों के साथ मिलकर मृातभूमि की स्वतन्त्रता और विकास के लिए काम करें। मुसलमानों व सहयोगी समुदायों को सलाह है कि वे उत्तम चरित्र-निर्माण करें और स्वतन्त्रता के रास्ते में आड़े आने वाले तत्त्वों को निकाल बाहर करें।''[44]

जिन्ना के इस भाषण से स्पष्ट है कि 1937 तक वे हिन्दू-मुस्लिम एकता और भारतीय मातृभूमि की बात करते थे और मातृभूमि के विकास एवं तरक्की के लिए दोनों समुदायों को मिलकर काम करने की बात करते थे, लेकिन बाद के घटनाक्रम से कांग्रेस और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति उनके दृष्टिकोण में मूलभूत बदलाव आया। कुछ लोगों का कहना है कि यदि कांग्रेस उत्तर प्रदेश में मुस्लिम लीग के दो मन्त्रियों को कैबिनेट में शामिल करती तो यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के हित में होता। लेकिन कांग्रेस पर ऐसा करने का कोई बन्धन नहीं था। दूसरी ओर रफी अहमद किदवई जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान कांग्रेस-मुस्लिम लीग गठबन्धन को निरस्त करने वालों में थे। 28 मार्च, 1937 को बाराबंकी से उन्होंने पंडित नेहरू को लिखा : ''मेरा मानना है कि यदि कांग्रेस कभी मुस्लिम लीग से समझौता या गठबन्धन करने की सोचती है तो यह भारतीय मुसलमानों के प्रति अपने कर्तव्य को नहीं निभा रही होगी.....किसी व्यक्ति-विशेष की सुविधा के लिए कांग्रेस सिर्फ उत्तर प्रदेश में अलग पैमाना नहीं अपना सकती।''[45]

नेहरू मुस्लिम लीग के दो मन्त्रियों को न लेने के लिए राष्ट्रवादी मुसलमानों के दबाव में थे। यह कहना गलत होगा कि कांग्रेस किसी औपचारिक समझौते से पीछे हटी। 21 जुलाई, 1937 को नेहरू द्वारा राजेन्द्र प्रसाद को लिखे पत्र से यह काफी स्पष्ट है। वह लिखते हैं : ''उत्तर प्रदेश के आम चुनावों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच अधिक विरोध नहीं था....उत्तर प्रदेश में कांग्रेस और लीग में कोई समझौता नहीं था, लेकिन एक सहमति-सी बन गई थी....कार्यकारिणी की बैठक से कुछ समय पहले उत्तर प्रदेश मुस्लिम लीग के नेता खालिक जामन और नवाब इस्माइल खान ने कांग्रेस से सम्पर्क किंया था....स्वाभाविक तौर पर इसका कुछ सम्बन्ध मन्त्रीपद की सम्भावना से था...जब मौलाना अबुल कलाम आजाद वर्धा से लखनऊ पहुंचे तो वे खालिक से मिले, जिसने उन्हें बताया कि—उनको और उत्तर प्रदेश बोर्ड के अध्यक्ष नवाब इस्माइल खान—दो को मंत्रिमण्डल में शामिल करने के बदले उन्हें खाली चैक (सीटों के बारे में—अनु.) देने के लिए तैयार हैं। मौलाना ने इस स्थिति को सन्देह की नजर से देखा, लेकिन पूरी मुस्लिम लीग का एक संगठन के रूप में अस्तित्व समाप्त होने और इसके कांग्रेस में आत्मसात की सम्भावना ने उनको आकर्षित किया। हम इन व्यक्तियों को लेना नापसन्द

करते थे, जो कांग्रेस के दृष्टिकोण से कमजोर थे। हमें आम कांग्रेसियों की प्रतिक्रिया का डर था।''[46]

इस प्रकार इस बहस के दो पहलू थे। मुस्लिम लीग के दो मन्त्रियों को शामिल करने में–दोनों पार्टियों के बीच मधुर सम्बन्ध और हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ने की सम्भावना थी। लेकिन कांग्रेस ने पार्टी में भी इसके प्रभावों को देखना था। इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था।

हालांकि मन्त्रीमण्डल में शामिल न किए जाने से कड़ुवाहट बढ़ी और लीग ने जोरशोर से कांग्रेस-विरोधी अभियान छेड़ दिया। लेकिन लीग द्वारा लगाए गए अधिकतर आरोप झूठे थे। मौलाना आजाद ने कहा, ''मुस्लिम लीग का कांग्रेस के विरुद्ध मुख्य प्रचार यह था कि यह केवल नाम से ही राष्ट्रीय है। कांग्रेस को सामान्य तौर पर बदनाम करने से ही सन्तुष्ट नहीं हुई, बल्कि लीग ने कांग्रेस के मन्त्रियों द्वारा अल्पसंख्यकों पर अत्याचार के आरोप भी मढ़े। इसने एक समिति गठित की जिसने मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों के प्रति हर तरह के भेदभावपूर्ण व्यवहार के आरोप लगाए। मैं अपनी जानकारी के आधार पर कह सकता हूं कि ये आरोप पूर्णतः बेबुनियाद थे। वायसराय और विभिन्न प्रान्तों के गवर्नरों का भी यही विचार था। इसलिए लीग द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट को संवेदनशील लोगों में कोई मान्यता नहीं मिली।''[47]

अब मुस्लिम लीग का सरोकार लगाए गए आरोपों की सत्यता के प्रति नहीं, बल्कि मुसलमानों में कांग्रेस के खिलाफ भारी प्रचार से था। केवल इसलिए नहीं कि कांग्रेस ने इनको नीचा दिखाया था, बल्कि इसलिए भी कि वह अभी तक अभिजात वर्ग की राजनीति में विश्वास करती थी। चुनाव-परिणामों ने इसकी आंखें खोल दीं। 1937 के चुनावों में इसकी करारी हार हुई, उसने 482 सीटों पर चुनाव लड़ा जिसमें से केवल 109 सीटें ही जीत पाई। इसके साथ ही, मुस्लिम बहुल चार प्रान्तों में से किसी भी प्रान्त में बहुमत हासिल नहीं कर पाई।[48] ''मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करने वाली पार्टी के लिए यह करारा झटका था। लीग चुनाव परिणामों से चिन्तित थी और अब मुसलमानों को रिझाना चाहती थी। यह 'हिन्दू' कांग्रेस का 'मुसलमानों के प्रति भेदभाव' का भूत खड़ा करके किया जा सकता था। जिन्ना एक कुशल कूटनीतिज्ञ था, उसने मुसलमानों में 'हिन्दू' कांग्रेस के प्रति दुर्भावना पैदा करने के लिए हर सम्भव चाल चली। इस दुष्प्रचार ने मुसलमानों को, विशेषकर पढ़े-लिखे मुसलमानों को कांग्रेस से दूर किया।

यहां पुनः इस पर जोर देना जरूरी है, जैसा कि 1937 के चुनावों ने भी दर्शा दिया कि मुस्लिम लीग का आम मुसलमानों में कभी लोकप्रिय आधार नहीं रहा। शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग में भी इसकी अधिकतर स्वीकार्यता केवल उर्दू-भाषी राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार के अल्पसंख्यक मुसलमानों में और कुछ हद

तक बाम्बे प्रान्त में ही थी, जबकि दक्षिण भारत के मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रान्तों में इसका कोई आधार नहीं था। जिन्ना को अपने और पार्टी के सीमित व संकीर्ण आधार का अहसास हुआ, इसलिए उन्होंने मुस्लिम जनता का विश्वास जीतने के लिए नए-नए तरीके अपनाने शुरू किये, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। कांग्रेस के पास आर्थिक कार्यक्रम था, जो बहुत क्रान्तिकारी तो नहीं था, लेकिन फिर भी इसने भारतीय जनमानस को आकर्षित किया। लीग के पास ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं था। जब उल्लेखनीय उर्दू शायर इकबाल ने जिन्ना को मुसलमान जनता विशेषकर पंजाब से गरीबी दूर करने के लिए आर्थिक कार्यक्रम को प्राथमिकता देने के लिए लिखा तो उनसे पंजाब मुस्लिम लीग की अध्यक्षता छीन ली गई। जिन्ना को अब मुसलमानों के शक्ति सम्पन्न वर्गों—जागीरदारों, ताल्लुकेदारों और व्यापारियों का समर्थन हासिल था, इन वर्गों के नाराज हो जाने के डर से वे कोई क्रान्तिकारी आर्थिक कार्यक्रम बनाने से बचते रहे। मुस्लिम लीग का मुस्लिम-समाज में अत्यधिक सीमित आधार था। गरीब जनता इसकी ओर कभी आकर्षित नहीं हुई। इस तरह जब 23 मार्च, 1940 को लाहौर में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित हुआ तो मुसलमानों ने कोई जोश नहीं दिखाया। दूसरी ओर हजारों अंसारी (जुलाहा) मुसलमानों ने दिल्ली में दो-तीन महीने बाद इसके विरुद्ध प्रदर्शन किया।

उस समय सबको वोट का अधिकार नहीं था। 1935 में अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए संविधान के अनुसार दस प्रतिशत भारतीय आबादी को भी वोट का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ। जिनके पास कुछ शैक्षिक योग्यता थी या कुछ सम्पत्ति थी, केवल वही वोट डाल सकते थे। इस कारण जनभावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था और सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय लोकप्रिय विचार जाने बिना लिए जाते थे।

मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुस्लिम लीग की स्थिति और भी खराब थी। आयशा जलाल ने इस पहलू पर प्रकाश डाला है, वह लिखती हैं कि "पंजाब और बंगाल प्रान्त अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण थे। इन दोनों प्रान्तों में मुसलमान बहुत कम अन्तर से ही बहुसंख्यक थे, इसलिए दूसरे लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने की जरूरत के कारण कट्टर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अख्तियार नहीं कर सकते थे। दोनों प्रान्तों के क्षेत्रीय-दृष्टिकोण जिन्ना के अनिश्चित केन्द्रीय जनमत को कमजोर करते थे, इसलिए जिन्ना के लिए इन प्रान्तों पर नियन्त्रण रखना मुश्किल हो रहा था, और साथ ही पंजाब के उत्तर-पश्चिम में स्थित नवगठित प्रान्त सिन्ध व उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में समर्थन जुटाने के लिए उससे भी अधिक मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। लीग 1937 के चुनावों में सिन्ध और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में सम्मानजनक प्रदर्शन भी नहीं कर पाई थी। असल में मुस्लिम बहुल सीमान्त प्रान्त ने अपने को कांग्रेस से जोड़ लिया

था। अल्लाबक्श मन्त्रिमण्डल जो सत्ता से बाहर-अन्दर होता रहा, वह शुरू से आखिर तक कांग्रेस के समर्थन पर निर्भर रहा।''[49]

यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान निर्माण के जिम्मेदार थे। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे मुस्लिम अल्पसंख्यक राज्यों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग तो अपने विशेषाधिकारों के छिनने के डर से पाकिस्तान के प्रति लालायित था, लेकिन मुस्लिम बहुल प्रान्तों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग भी इसे लेकर उत्सुक नहीं था। वास्तव में पंजाब में जिन्ना के लिए यह काम आसान नहीं था। यहां विभिन्न धर्मों के सामन्तों के अवसरवादी घटकों के ढीले-ढाले गठबन्धन से बनी यूनियनिस्ट पार्टी का दबदबा था। लीग को मन्त्रिमण्डल से बाहर रखना यूनियनिस्ट पार्टी के हित में था। मई, 1942 में सिकन्दर हयात खान ने कांग्रेस में शामिल होने की सम्भावनाएं तलाशना शुरू कर दिया था, लेकिन इस वर्ष के अन्त में उनकी मृत्यु हो गई। जिन्ना के रास्ते की सबसे बड़ी रुकावट दूर हो गई। मुस्लिम बहुल राज्यों में अपना रास्ता बनाने में जिन्ना को बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था और इन प्रान्तों में हिन्दुओं से कोई डर नहीं था, क्योंकि इनमें से कुछ प्रान्तों में हिन्दू गठबन्धन मन्त्रीमण्डल का हिस्सा थे। इन राज्यों में मुसलमान राजनीतिज्ञों को मुस्लिम लीग में शामिल करने के लिए जिन्ना को कई तरह के पापड़ बेलने पड़े। ऐसा करने में वह 1945 के बाद ही कामयाब हो पाये, तेजी से बदल रही परिस्थितियों में जिन्ना उनको यह समझाने में सफल हुए कि बेशक उनको प्रान्तीय स्तर पर कोई डर न हो, लेकिन केन्द्रीय स्तर पर केवल वही (जिन्ना) उनको आवश्यक रियायत दिला सकते हैं।

ध्यान देने की बात है कि 1945 तक सोचा नहीं जा सकता था कि पाकिस्तान एक सच्चाई बन सकता है। पाकिस्तान बनाने का अन्तिम प्रस्ताव 9 अप्रैल, 1946 को पारित हुआ। प्रस्ताव में अब दो के बजाय एक 'स्वतन्त्र सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न देश' की मांग की गई। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए हिन्दू और मुसलमान प्रान्तों के लिए दो अलग-अलग संवैधानिक सभाओं की मांग भी।[50]

कैबिनेट मिशन योजना में भारतीय संघ के ढांचे में राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता का उचित सुझाव था। इसमें केन्द्र को केवल तीन विषय—रक्षा, संचार और विदेश नीति सौंपे जाने थे, शेष सभी शक्तियां स्वायत्त राज्यों को दी जानी थीं और इन राज्यों को दस साल बाद संघ से अलग होने की छूट थी। गहन सन्देह का वातावरण था, जुबान की जरा-सी फिसलन भी विनाशकारी साबित हो सकती थी, कैबिनेट मिशन योजना के साथ यही हुआ। जवाहरलाल नेहरू ने कैबिनेट मिशन योजना के बारे में जो कहा वह जिन्ना के लिए बम का धमाका साबित हुआ। मौलाना आजाद ने उन 30 पृष्ठों में से एक में इसका वर्णन किया है, जो प्रतिबन्धित

थे, और 1988 में प्रकाशित हुए हैं—

''इतिहास बदल देनेवाली दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में से एक घटी। 10 जुलाई को जवाहरलाल नेहरू ने बम्बई में प्रेस कांफ्रेंस में विचित्र बयान दिया। प्रेस के कुछ प्रतिनिधियों ने उनसे पूछा कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी में प्रस्ताव पारित करके कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार की बनावट समेत योजना को पूर्णतः स्वीकार कर लिया है।

''जवाहरलाल ने अपने उत्तर में कहा कि कांग्रेस समझौते से प्रभावित हुए बिना संविधान सभा में जाएगी और वह स्थिति के अनुसार निर्णय लेने में स्वतन्त्र है।

''प्रेस के प्रतिनिधियों ने आगे पूछा कि इसका अर्थ है कि कैबिनेट मिशन योजना में बदलाव किया जा सकता है।

''जवाहरलाल नेहरू ने दृढ़ता से जवाब दिया कि कांग्रेस ने सिर्फ संविधान सभा में भाग लेना स्वीकार किया है, कैबिनेट मिशन योजना के सम्बन्ध में वह इसे बदलने या सुधार करने जैसा वह उचित समझे वैसा करने को स्वतन्त्र है।''[51]

मुस्लिम लीग ने इस योजना को दबाव में स्वीकार किया था। आजाद के अनुसार, ''जवाहरलाल नेहरू का बयान जिन्ना को बम की तरह लगा। उसने तुरन्त बयान जारी किया कि कांग्रेस अध्यक्ष की इस घोषणा से समस्त स्थिति पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है।'' मुस्लिम लीग ने योजना को इस आश्वासन पर सहमति दी थी कि कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया है। जवाहरलाल नेहरू के दुर्भाग्यपूर्ण बयान में यह निहित था कि योजना में बहुसंख्यक हिन्दुओं द्वारा बदलाव किया जाएगा और अल्पसंख्यक मुसलमान बहुसंख्यक हिन्दुओं की दया पर होंगे। 27 जुलाई, 1946 को बम्बई में मुस्लिम लीग परिषद की बैठक में जिन्ना ने पाकिस्तान की मांग दोहराई और इसे मुस्लिम लीग के सामने बचा एकमात्र रास्ता बताया।

तीन दिन की बहस के बाद लीग परिषद ने कैबिनेट मिशन योजना को अस्वीकार कर दिया और पाकिस्तान निर्माण के लिए सीधी कार्यवाही करने का फैसला भी किया। इस अहम् फैसले के बाद जो घटित हुआ, उसे हम सब जानते हैं।

नेहरू ने ऐसा बयान क्यों दिया, जिसने भारतीय इतिहास को बदल दिया? पूछे जाने पर इस घटना के 12 साल बाद भी नेहरू कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे सके। लेकिन जो उन्होंने कहा कि वह विचारधारात्मक स्तर पर महत्त्वपूर्ण था : ''मैं समझता हूं कि एक ऐसी बलवती भावना थी कि यदि ऐसा संघ बनता है तो एक तो इससे आन्तरिक दबाव खत्म नहीं होते और दूसरे इसके विभिन्न संघटकों को सत्ता-हस्तान्तरण करने से केन्द्र सरकार बहुत कमजोर रह जाती, यह इतनी कमजोर रह जाती कि यह ठीक तरह से काम करने या प्रभावी आर्थिक कदम उठाने में

भी सक्षम नहीं होती। यही असली कारण थे जिनके कारण हमें अन्ततः विभाजन स्वीकार करना पड़ा। यह कितने भारी मन से किया गया चयन था, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। अब यह कहना मुश्किल है कि उन परिस्थितियों में और क्या किया जा सकता था।"[52]

जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल दोनों मजबूत केन्द्र के पक्ष में थे। उन्हें कमजोर केन्द्र और अविभाजित भारत या मजबूत केन्द्र और विभाजित भारत में से एक चुनना था, इन्होंने मजबूत केन्द्र और विभाजित भारत को चुना। यह स्पष्ट है कि दो समुदायों के अभिजात वर्ग के बीच साम्प्रदायिक सवाल का सन्तोषजनक हल नहीं निकल पाया। हिन्दू महासभा की भी साम्प्रदायिक माहौल बनाने में भूमिका रही। वह भी इस विचार की थी कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं और ये सद्भावना से इकट्ठे नहीं रह सकते। उन्होंने मुस्लिम लीग के 1940 के लाहौर प्रस्ताव से काफी पहले 1937 में इस आशय का प्रस्ताव पारित किया था। महासभा के नेता भाई परमानन्द ने 1938 में लिखा, "मि. जिन्ना मानते हैं कि इस देश में दो राष्ट्र हैं...यदि जिन्ना ठीक हैं और मैं मानता हूँ कि वे हैं, तो कांग्रेस की साझी राष्ट्रीयता की अवधारणा ही धराशायी हो जाती है। इस स्थिति के केवल दो ही समाधान हैं। एक तो देश का विभाजन है और दूसरा देश के अन्दर ही एक अलग मुस्लिम देश विकसित होने देना।"[53] इस तरह हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिक शक्तियों ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन का समर्थन किया। भारत को विभाजित करने के लिए सभी उत्तरदायी हैं।

सन्दर्भ

1. जवाहरलाल नेहरू, ग्लिम्प्स ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री, 1989, ओ. यू. पी., न्यूयार्क, पृ. 336
2. स्टॉन्ले वॉल्पेट, जिन्ना ऑफ पाकिस्तान, ओ. यू. पी. न्यूयार्क, 1984, पेज-22
3. जी. एल्लाना (सं.) पाकिस्तान मूवमेण्ट : हिस्टोरिक डॉक्यूमेण्टस वाल्यूम, यूनिवर्सिटी ऑफ कराची, कराची, 1967
4. एल्लाना जी., वही
5. मकलत-ए-शिबली, 1954, आजमगढ़, पृ. 161
6. वही, पृ. 163, 168, 171
7. मकलत-ए-शिबली, वाल्यूम VII, पृ. 152
8. फरजाना शेख, कम्यूनिटी एण्ड कन्सेन्सस इन इस्लाम : मुस्लिम रिप्रेजेंटेशन इन कॉलोनियल इंडिया, 1860-1947, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस एण्ड ओरिएण्ट लांगमैन, 1989, पृ. 169
9. फरजाना शेख, पृ. 171 जी एल्लाना, पाकिस्तान मूवमेण्ट-हिस्टोरिक डॉक्यूमेंट, इस्लामिक बुक सर्विस, लाहौर 1977, पृ. 40
10. हेक्टर बोलिथो, जिन्ना-क्रियेटर ऑफ पाकिस्तान, ग्रीनवुड प्रैस, वेस्टपोर्ट, कॉनेक्टिक्ट, पृ. 58
11. राजमोहन गांधी, एट लाइंस, ए स्टडी ऑफ हिन्दू-मुस्लिम एनकाउंटर, 1986, दिल्ली, पृ.128

12. गांधी टु जिन्ना, अक्तूबर 25, 1920, सी. डब्ल्यू एम जी, (III, 15), वाल्यूम XVII-I, पृ. 372 ऑफ वॉल्पेट, पृ. 70
13. एम. एच. सैयद, मोहम्मद अली जिन्नाह, एस. एम. अशरफ, लाहौर, 1945, पृ. 264-65
14. एम. सी. छगला, रोज़ेज इन दिसम्बर : एन ऑटोबायोग्राफी, 1974, बम्बई
15. राजमोहन गांधी, वही पृ. 135-136
16. मैक्सिम रोडिसन, मार्क्सिज्म एण्ड द मुस्लिम वर्ल्ड, ओरिएण्ट लांगमैन, 1979, पृ. 158
17. इयान हेंडरसन डगलस, अबुल कलाम आजाद—एन इंटेलेक्चुएल एण्ड रिलीजियस बायोग्राफी, गेल मिनाल्ट एण्ड क्रिश्चिन डब्ल्यू. ट्रोल, (सं.) ओ. यू. पी., 1988, पृ. 78
18. मुशीरल हसन, (सं.) कम्यूनल एण्ड पान-इस्लामिक ट्रेण्ड इन कॉलोनियल इण्डिया, दिल्ली, 1981, पृ. 15
19. उदाहरण के लिए देखें अब्दुल हमीद, मुस्लिम सेप्रेटिज्म इन इंडिया—ए ब्रीफ सर्वे, 1858-1947 (लाहौर, 1971) पुनर्मुद्रित, पृ. 151-52, साथ ही एम. नोमान, राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ द ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग, इलाहाबाद, 1942, पृ. 213-14
20. मुशीरल हसन, पृ. 15, उद्धृत डब्ल्यू आर डी सी आई, 11 अप्रैल 1921, होम पोल, डिपासिट, जून, 54, एन. ए. आई.
21. सोर्स मेटीरियल ऑर ए हिस्ट्री ऑफ द फ्रीडम मूवमेण्ट—खिलाफत मूवमेण्ट—1920-21, वाल्यूम X, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र, बॉम्बे, 1982, पृ. 46
22. डी. जी. तेंदुलकर, अब्दुल गफ्फार खान—फेथ इज ए बैटल, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे, 1967
23. अब्दुल गफ्फार खान, उपरोक्त, पृ. 60
24. वही, पृ. 210-11
25. वही, पृ. 226
26. वही, पृ. 389-90
27. मौलाना सैयद मुहम्मद मियां साहेब, उलेमा-ए-हक और इन के मुजाहीदाना कारनामे, 1939, दिल्ली
28. असगर अली इंजीनियर, 'द उलेमा एण्ड द फ्रीडम स्ट्रगल' इन असगर अली इंजीनियर (सं.) द रोल ऑफ माइनॉरिटीज़ इन फ्रीडम स्ट्रगल, 1986, दिल्ली पृ. 8-9
29. मौलाना सैयद मुहम्मद मियां साहेब, असीरां-ए-मलता, दिल्ली, 1976, पृ. 182-83
30. उलेमा-ए-हक, दिल्ली, 1948, वाल्यूम II, पृ, 298-301
31. चौ. अफजल हक, आए-ए-रफ्ता, संकलित द्वारा जांबाज मिर्जा, लाहौर, न. द.,पृ. 14
32. शरीफ अल मुजाहिद काएदे-आजम जिन्ना—स्टडीज इन इन्टरप्रेटेंशन, दिल्ली, 1985, पुनर्मुद्रित, पृ. 473
33. जमालुद्दीन अहमद, हिस्टोरिक डॉक्यूमेण्ट ऑफ द मुस्लिम फ्रीडम मूवमेण्ट, लाहौर, 1970, पृ. 86
34. एन. एन. मित्रा, (सं.) इण्डियन क्वाटरली रजिस्टर, 1927, वाल्यूम I, पृ. 37
35. वही, पृ. 15
36. रिपोर्ट ऑफ द इण्डियन नेशनल कांग्रेस, फोरटी सेंकड सेशन, मद्रास, 1927, पृ. 61
37. उमा कौरा, मुस्लिम एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म, दिल्ली, 1977, पृ. 31 और देखें रिपोर्ट ऑन इण्डियन नेशनल कांग्रेस, फोरटी-सेशन, वही, पृ. 75
38. पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, न्यू दिल्ली, उद्धृत उमा कौरा, उपरोक्त, पृ. 32

39. द प्रोसिडिंग्स ऑफ द आल पार्टीज नेशनल कन्वेशन, इलाहाबाद, 1928, पृ. 78
40. वही, पृ. 78 उद्धृत उमा कौरा, उपरोक्त, पृ. 44
41. द प्रोसिडिंग्स ऑफ द ऑल पार्टीज नेशनल कन्वेशन, वही, पृ. 94-95
42. द ट्रिब्यून, लाहौर, 2 जून 1929
43. बॉम्बे क्रानिकल, 12 जनवरी, 1929, उद्धृत उमा कौरा, पृ. 46
44. स्टार ऑफ इण्डिया, 2 जनवरी 1937 और देखें पी. एन. चोपड़ा (सं.) टुवर्ड्स फ्रीडम, वाल्यूम I, पृ. 7 उद्धृत खालिक अहमद निजामी मौलाना अबुल कलाम आजाद एण्ड द 30 पेज़ेज ऑफ हिज इंडिया विन्स फ्रीडम, दिल्ली, 1989, पृ. 46-47
45. ए आई सी सी फाईल नं. जी 5 (1)/1937 टू टुवर्डस फ्रीडम (सं.), पी. एन चोपड़ा, वाल्यूम 1, पृ. 288-89
46. नेहरू पेपर्स, उद्धृत पी. एन. चोपड़ा (सं.), टुवर्ड्स फ्रीडम, वही, पृ. 736-768, खालिक अहमद निजामी, पृ. 52
47. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इण्डिया विन्स फ्रीडम, ओरिएन्ट लांगमैन, 1988 (पूर्ण संस्करणी), पृ. 16
48. द टाइम्स ऑफ इण्डिया, 3 मार्च 1937
49. आयशा जलाल, द सोल स्पोक्समैन—जिन्ना, द मुस्लिम लीग एण्ड द डिमांड फॉर पाकिस्तान, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, 1985, पृ. 109
50. पीरजादा सईद शरीफद्दीन (सं.) फाउंडेशन ऑफ पाकिस्तान : ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग डॉक्यूमेण्टस : 1906-1947, कराची, 1970, वाल्यूम II, पृ. 512-13
51. इण्डिया विन्स फ्रीडम, उद्धृत उपरोक्त, 164-65
52. खालिक अहमद निजामी, उद्धृत, उपरोक्त, पृ. 32
53. एन. एल. गुप्ता (सं.) नेहरू ऑन कम्यूनलिज्म, दिल्ली, 1965, 12, पृ. 22

अध्याय 4

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में साम्प्रदायिकता

देश का विभाजन आधुनिक भारत की बड़ी त्रासदियों में से एक है। स्वतन्त्रता-सेनानियों ने कभी नहीं सोचा था कि उन्हें आजादी की इतनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। विभाजन के दंगों में करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति के नुकसान के अलावा लाखों लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी। हमारे समय की यह हर तरह से बड़ी त्रासदी थी, इसके अलावा इसने समाज में ऐसी कडुवाहट को जन्म दिया जिसे हम अब तक नहीं भूल पाए। विभाजन से साम्प्रदायिकता की समस्या सुलझने की बजाय और अधिक बढ़ गई। हालांकि दो भाइयों का लड़ना और अलग हो जाना स्वाभाविक बात है, और अलग होने के बाद वे एक-दूसरे के और करीब आ जाते हैं व शान्तिप्रिय ढंग से रहते हैं, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद के घटनाक्रम ने इस कहावत को झुठला दिया है। दोनों देशों के निकट आने और शान्ति व सद्भावपूर्ण जीवन में निहित स्वार्थ आड़े आए। यदि किसी नेता ने दोनों देशों के बीच अच्छे सम्बन्ध निर्माण की कोशिश की भी तो उसके राजनीतिक विरोधियों ने उस पर अपने देश के हितों को ताक पर रखने का आरोप लगाकर, उसकी सारी कोशिशों को मिट्टी में मिला दिया और दोनों देशों के सम्बन्धों को कभी सुधरने नहीं दिया और साम्प्रदायिक शक्तियों ने दोनों देशों के बीच व्याप्त इस तनाव को साम्प्रदायिक रंग दे दिया। हिन्दू सम्प्रदायवादी आज भी भारत में रह रहे मुसलमानों की वफादारी पर उंगली उठाते हैं और उन पर पाकिस्तान के प्रति वफादार होने का आरोप लगाते हैं। बहुसंख्यक समुदाय की भावना को भड़काने के लिए 'मुसलमान जाए पाकिस्तान या कब्रिस्तान' का नारा आज भी बहुत से धार्मिक-राजनीतिक जुलूसों में लगता है। विभाजन के बाद भारत में मुसलमानों को पाकिस्तान निर्माण का मुख्य दोषी माना गया। एक, जो मुसलमान विभाजन के दोषी थे, वे सब अपनी खुशहाली के लिए पाकिस्तान चले गए, उनमें अधिकांश अभिजात (उच्च) वर्गों से थे। गरीब मुसलमान जो अधिकतर भारत में ही रह गए, उनकी पाकिस्तान के समर्थन में या विरोध में कोई आवाज नहीं थी, वे केवल मूक दर्शक थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि इनमें से अधिकतर ने विभाजन की योजना का विरोध किया। दूसरी

ओर हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों ने अलग राष्ट्र की मांग तो नहीं की थी, लेकिन उन्होंने द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त में विश्वास जताया था। हिन्दू-महासभा ने 1937 के अधिवेशन में जिन्ना के द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त को स्वीकृति दी थी। अंग्रेजी शासन के अन्तिम दिनों में कांग्रेस का भी एक वर्ग विभाजन की योजना को स्वीकार कर रहा था। मौलाना आजाद ने कहा, "कांग्रेसियों में विभाजन के सबसे बड़े समर्थक सरदार पटेल थे। यद्यपि वे विभाजन को समस्या का उत्तम समाधान नहीं मानते थे, लेकिन वित्तमन्त्री लियाकत अली खान के हर कदम पर नकारात्मक रवैये से निराश होकर दुःखी मन से विभाजन का समर्थन किया। लियाकत अली खान सरदार पटेल के हर सुझाव पर नकारात्मक रवैया दर्शाते थे, इससे सरदार पटेल तंग आ गए और गुस्से में निर्णय किया कि यदि और कोई विकल्प ही नहीं है तो विभाजन को स्वीकार करो। वे इस बात से सहमत थे कि नए राज्य पाकिस्तान का कोई औचित्य नहीं है, यह टिकाऊ नहीं होगा। उन्होंने सोचा था कि पाकिस्तान की सहमति मुस्लिम लीग को कड़ुवा सबक सिखाएगी....शायद सरदार पटेल को आशा थी कि वे भारत में वापस आने को बाध्य हो जाएंगे।" उन्होंने आगे कहा, "मैं मानता हूं कि उनमें मुस्लिम लीग के प्रति पूर्वाग्रह पैदा हो गया था, मुस्लिम लीग को अनुसरण करने वाले मुसलमानों के कष्टों से उन्हें कोई दुःख नहीं होता।"[1] मौलाना आजाद ने इस ओर ध्यान दिलाया है कि कांग्रेस द्वारा विभाजन-योजना की स्वीकृति का यह अर्थ नहीं है कि इसे भारत की जनता ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा, "विभाजन के प्रति लोगों के रवैये की असली परख 14 अगस्त 1947 को हुई, जब पाकिस्तान स्वतन्त्र हुआ। यदि भारत के लोग खुशी से विभाजन को स्वीकार करते, तो पंजाब, फ्रंटियर, सिंध और बंगाल के हिन्दू और सिख भी मुसलमानों की तरह जश्न मनाते। इन प्रान्तों से हमें जो सूचनाएं मिलीं उनसे यह दावा खोखला लगता था कि कांग्रेस द्वारा विभाजन की स्वीकृति का अर्थ भारत की जनता की स्वीकृति लगाया गया।

"14 अगस्त, 1947 का दिन पाकिस्तान के मुसलमानों के लिए उल्लास का दिन था। हिन्दू और सिखों के लिए यह शोक-दिवस था। सिर्फ लोगों की ही नहीं, बल्कि कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण नेताओं की भी यही भावना थी। आचार्य कृपलानी उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। वे सिन्ध के रहने वाले थे। उस दिन उन्होंने बयान दिया कि यह भारत के लिए दुःख और विनाश का दिन है। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं और सिखों ने भी यही भावनाएं खुलेआम व्यक्त कीं। सचमुच यह एक अजीब स्थिति थी कि हमारे राष्ट्रीय संगठन ने विभाजन के पक्ष में निर्णय लिया, लेकिन लोगों ने विभाजन पर शोक प्रकट किया।"[2]

मौलाना आजाद की टिप्पणी से स्पष्ट है कि कांग्रेस व इसके कुछ महत्त्वपूर्ण नेता भी विभाजन के जिम्मेदार थे। दूसरे, देश के विभाजन का फैसला भारत के

लोगों का नहीं था, वह सिर्फ कांग्रेस व मुस्लिम लीग का था और निश्चित रूप से यह लोकप्रिय निर्णय नहीं था। दूसरे शब्दों में यह कि हिन्दू व मुस्लिम अभिजात वर्ग ने देश के भाग्य का फैसला किया और हिन्दू व मुस्लिम जनता को उनकी नियति पर छोड़ दिया। देश की विभाजन-योजना से साम्प्रदायिक समस्या का कोई हल नहीं निकला, बल्कि भारत व पाकिस्तान दोनों देशों में अल्पसंख्यकों की बदहाली ज्यों की त्यों बनी रही।

मुस्लिम लीग के बहुत से समर्थक भी पाकिस्तान निर्माण के परिणामों को सही ढंग से नहीं समझते थे। मौलाना आजाद ने इस पर कुछ प्रकाश डाला है–

"विभाजन के बाद सबसे अधिक अजीब स्थिति मुस्लिम लीग के उन नेताओं की हुई जो भारत में रह गए। जिन्ना अपने अनुयायियों को यह सन्देश देते हुए कराची के लिए रवाना हो गए कि अब देश का विभाजन हो गया और उनको भारत का वफादार नागरिक बनकर रहना चाहिए। इस सन्देश ने उनमें एक अजीब किस्म की निराशा व कमजोरी का अहसास पैदा किया। उनकी दशा दयनीय थी। वे पश्चाताप और गुस्से में कहते थे कि संकट की स्थिति में छोड़कर जिन्ना ने उनको धोखा दिया है।

"जिन्ना ने उनको धोखा दिया है उनके ये कहने का मतलब मैं एकदम नहीं समझ पाया। उन्होंने मुस्लिम बहुल राज्यों के आधार पर देश के विभाजन की मांग रखी थी। अब देश का विभाजन एक सच्चाई थी और पूर्व और पश्चिम का मुस्लिम बहुल क्षेत्र पाकिस्तान के अंग थे, फिर मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता ऐसा क्यों कह रहे थे कि वे धोखा खा गए?

"जब मैंने उनसे बात की तो मुझे लगा कि देश के विभाजन की जो तस्वीर उन्होंने बनाई थी उसका वास्तविक स्थिति से कोई मेल नहीं था। असल में वे पाकिस्तान-निर्माण के वास्तविक परिणामों का अहसास नहीं कर सके। यदि मुस्लिम बहुल प्रान्तों से एक नया देश बनना था तो यह स्पष्ट ही था कि जिन प्रान्तों में मुस्लिम अल्पसंख्या में हैं वे भारत का ही अंग रहेंगे। चूंकि उत्तर प्रदेश और बिहार में मुसलमान अल्पसंख्यक थे इसलिए विभाजन के बाद भी ऐसा ही रहना था। यह अजीब बात है कि मुस्लिम लीग के ये कार्यकर्ता सोचते थे कि मुसलमान चाहे अल्पसंख्यक प्रान्तों के हों या बहुसंख्यक प्रान्तों के रहने वाले हों, उनका एक अलग राष्ट्र बनाया जाएगा और उन्हें अपने भविष्य को स्वयं निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त होगा। अब जबकि मुस्लिम बहुल प्रान्त भारत से बाहर चले गए, पंजाब व बंगाल भी बंट गए और जिन्ना कराची के लिए रवाना हो गए, तो इन मूर्खों की समझ में आया कि उन्होंने हिन्दुस्तान के विभाजन से कुछ भी हासिल नहीं किया, बल्कि वास्तव में सब कुछ खो दिया।"[3]

इस तरह उत्तर प्रदेश और बिहार के मुस्लिम लीग के नेताओं को पाकिस्तान

के स्वरूप के बारे में सही अनुमान नहीं था। वे ऐसा सोचते थे या मुस्लिम लीग के प्रचारतन्त्र ने उनके दिमाग में बिठा दिया था कि द्वि-राष्ट्र के सिद्धान्त के आधार पर देश के विभाजन से उनको एक अलग 'मुस्लिम राष्ट्र' के रूप में कुछ अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त होंगे। लेकिन विभाजन के बाद जिन्ना ने जब उनको 'अपने देश के प्रति वफादार रहो' के सन्देश के साथ पीछे छोड़ दिया तो उनको पाकिस्तान आन्दोलन में सहयोग देने के असली परिणाम समझ आए। उनको कोई अधिकार-विशेषाधिकार तो हासिल हुए ही नहीं, बल्कि हमेशा के लिए अल्पसंख्यक होने की नियति झेलते रहेंगे, जिससे बचने के लिए उन्होंने पाकिस्तान आन्दोलन को समर्थन दिया था। लेकिन उनको यह बहुत देर बाद समझ आया जब सारा खेल खत्म हो चुका था और सारा काम तमाम हो गया था। अब उनके पछतावे का क्या लाभ!

विभाजन के बाद मुसलमानों को, विशेषकर जो भारत में रह गए उनको सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ा। मौलाना ने भी भारतीय मुसलमानों को बड़े स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी थी कि यदि विभाजन एक वास्तविकता बनी तो अधिकांश मुसलमानों के पाकिस्तान में चले जाने से वे भारत में छोटे व महत्त्वहीन अल्पसंख्यक बन कर रह जाएंगे।[4]

इस तरह देश का विभाजन औरों की तुलना में मुसलमानों के लिए अधिक विनाशकारी साबित हुआ। जो मुसलमान भारत में रह गए उन्होंने विभाजन के दंगे झेले। जिन हिन्दुओं के रिश्तेदार-सम्बन्धी सीमा पार मारे गए, वे गुस्से में भारत आए। इन निराश्रित हिन्दुओं ने भारत में रहने वाले मुसलमानों को मारकर अपने रिश्तेदारों का बदला लिया। दूसरे, जिसकी ओर मौलाना आजाद ने भी इंगित किया था, वे महत्त्वहीन अल्पसंख्यक बनकर रह गए जो सरकार के निर्णयों को उतना प्रभावित नहीं कर सकते जितना कि विभाजन से पहले कर सकते थे। जल्दी ही पाकिस्तानी मुसलमानों ने भी महसूस किया कि धार्मिक राष्ट्रवाद की वैधता में विश्वास करना नितान्त अवास्तविक है। आधुनिक राष्ट्र-राज्य धर्म के आधार पर नहीं बन सकते।

मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने सही ध्यान दिलाया था कि 'उम्मा' (धार्मिक समुदाय) और राष्ट्र (राज्य का समुदाय जो कि सांस्कृतिक व अन्य बहु आयामी बन्धनों से बंधा है) में अन्तर करना चाहिए। एक 'उम्मा' आदर्श और कल्पित समुदाय है, जबकि आधुनिक राष्ट्र-राज्य अपने तमाम अन्तर्विरोधों, तनावों, खींचतान, दबावों के साथ एक ठोस सच्चाई है। 'उम्मा' सिर्फ धार्मिक विमर्श का विषय बन सकता है, आधुनिक राजनीतिक विमर्श का नहीं। पाकिस्तानी नागरिक इसे लेकर अभी तक असमंजस में हैं कि उन्होंने 'उम्मा' बनाया है या एक राष्ट्र-राज्य? इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। यदि यह एक 'उम्मा' है जैसा कि पाकिस्तान के जमाइतल

इस्लामी समेत बहुत से उलेमा उसे मानते हैं तो बलूच नेता अकबर बुघती व अन्य लोगों ने सवाल उठाया है कि पाकिस्तान सरकार इण्डोनेशिया, मोरक्को से किसी भी मुसलमान को पाकिस्तान में बसने की स्वीकृति दे। लेकिन ऐसा नहीं होगा। यहां तक कि अब भारतीय मुसलमान को भी वहां बसने की इजाजत नहीं दी जाएगी। तब यह कैसे मान लिया जाए कि यह एक उम्मा है। यदि पाकिस्तान राष्ट्र-राज्य होने का दावा करता है तो इसके निर्माण का सिद्धान्त ही खतरे में पड़ जाएगा। वह अपनी उत्पत्ति का दावा इस्लाम और इस्लामिक-राष्ट्रवाद के आधार पर करता है।

पाकिस्तान के राजनीतिक विमर्श में पाकिस्तानी की पहचान का सवाल भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनकी वास्तविक पहचान क्या है और यह कब से शुरू हुई? उनकी विरासत क्या है? क्या उस क्षेत्र की इस्लाम पूर्व की विरासत उनकी विरासत है? या उनकी विरासत सिर्फ मुहम्मद-बिन कासिम के आगमन से प्रारम्भ होती है? इस्लामिक राष्ट्रवाद के चिन्तकों ने इन प्रश्नों के कभी स्पष्ट उत्तर नहीं दिए। वास्तविकता तो यह है कि सऊदी अरब और ईरान (इस्लाम क्रान्ति के बाद) भी अपने इस्लामिक राज्य होने के तमाम दावे के बावजूद राष्ट्र-राज्य की तरह व्यवहार करते हैं। राष्ट्र-राज्य शाश्वत अवधारणा नहीं हो सकती, लेकिन सुधार युग के बाद जब से यूरोप में उसकी उत्पत्ति हुई है यह चली आ रही है और यह स्वमेव समाप्त नहीं हुई। अभी तक तो यह एक ठोस सच्चाई है और कम से कम निकट भविष्य में तो इससे नहीं बचा जा सकता। दुर्भाग्य से उपनिवेश के मालिकों ने अपने औपनिवेशिक संसार में जो नक्शे बनाए, उन नक्शों के आधार पर राष्ट्र-राज्य अस्तित्व में आए। समस्त मुस्लिम जगत की अपनी-अपनी राष्ट्रीय पहचान है जो अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में इस्लामिक पहचान पर हावी होती है और 'उम्मा' की अवधारणा पीछे पड़ जाती है। इस सच्चाई को सभी स्वीकार करते हैं।

पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के बहुत कम समय में ही वहां जातीय संघर्ष और अलगाववादी आन्दोलन शुरू हुए। बंगाली पहचान ने बहुत शक्ति के साथ संघर्ष किया और जातीय सवाल पर पाकिस्तान के दो टुकड़े हो गए। इससे पाकिस्तान के अस्तित्व का कारण बने मुस्लिम एकता के विचार की नींव हिल गई और यह सिद्ध हो गया कि धार्मिक एकता तभी तक काम करती है जब तक किसी 'बाहरी अन्य' से सामना होता है जैसे दूसरे धर्म से सम्बन्धित से। लेकिन ज्यों ही 'बाहरी अन्य' नहीं रहता या ताकत के रूप में नहीं रहता तो 'भीतरी अन्य' अपने आप गम्भीरतापूर्वक सिर उठाने लगता है और धार्मिक एकता कमजोर करता है। 1971 में दो टुकड़े होने के बाद भी पाकिस्तान में हिंसापूर्ण जातीय संघर्ष आज तक जारी हैं। इस प्रकार मुस्लिम राष्ट्रवाद का कोई तार्किक आधार नहीं है। पाकिस्तान का विचार ही गलत था। जैसा कि मौलाना हुसैन अहमद मदनी और मौलाना अबुल

कलाम आजाद दोनों ने रेखांकित किया कि इसका किसी भी तरह से धार्मिक औचित्य नहीं था।

देश के विभाजन से भारतीय मुसलमानों को धार्मिक और राजनीतिक दोनों दृष्टि से बहुत भारी नुकसान हुआ। दुर्भाग्यपूर्ण है कि जल्दबाजी में लिए गए राजनीतिक निर्णयों से बहुत लम्बे समय तक बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं। देश के विभाजन का निर्णय भी ऐसा ही निर्णय था। किसी ने भी इसके दूरगामी परिणामों पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया।

विभाजन के बाद का घटनाक्रम देखकर भारतीय मुसलमान स्तब्ध रह गए। उत्तर प्रदेश और बिहार की हिंसा से उनको सदमा पहुंचा। यहां तक कि वे अपने जिन्दा रहने या भारत में अपने भविष्य के बारे में भी आश्वस्त नहीं थे। एक बार फिर मौलाना आजाद ने उनमें विश्वास जगाया। जामा मस्जिद के चबूतरे से मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि भारत उनका देश है, उन्हें यहीं जीना है और यहीं मरना है। वे भारतीय हैं और उन्हें भारतीय विरासत पर नाज है। उनके पूर्वज यहीं दफन हैं, ताजमहल व अन्य ऐतिहासिक स्मारक उनकी विरासत के अंग हैं। तब के भारत के सबसे कद्दावर मुस्लिम नेता मौलाना अबुल कलाम आजाद के इन विचारों ने मुस्लिमों को तसल्ली दी। उनमें विश्वास की किरण जगाई और उनमें भारत में नए सिरे से अपना भविष्य बनाने के लिए निश्चय पैदा किया।

विभाजन के दंगों का स्वरूप इतना प्रलंयकारी था कि इसके बाद मुसलमानों के लिए राजनीति में वैसी भूमिका निभाना कठिन हो गया जैसी कि विभाजन से पहले वे निभाते थे। विभाजन के लगभग एक दशक बाद तक वे राजनीतिक रूप से निष्क्रिय रहे। वे अपनी सुरक्षा व भलाई के लिए आमतौर पर कांग्रेस की ओर तथा विशेष तौर पर नेहरू की ओर देखते थे। उत्तर प्रदेश व बिहार के धनी, शिक्षित मध्यवर्ग व व्यावसायिकों का प्रवाह अपने जीवन की खुशहाली के लिए पाकिस्तान की ओर उमड़ पड़ा। यद्यपि इनमें बहुत ऐसे वर्ग भी थे जो पाकिस्तान के निर्माण के विरुद्ध थे और भारत में ही रह गए। वह तथ्य गौर करने लायक है कि दक्षिण राज्यों जैसे मद्रास, कर्नाटक और केरल आदि से शायद ही कोई मुसलमान पाकिस्तान गया होगा। केवल हैदराबाद की निजाम रियासत से सम्बन्धित चन्द मुसलमानों ने पाकिस्तान में जाना स्वीकार किया। इसके पीछे जातीय व भाषायी जुड़ाव की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। गरीब मुसलमानों में से शायद ही कोई पाकिस्तान गया होगा। वहां स्थानान्तरण से उन्हें शायद ही कुछ हासिल होता। वे भारत में ही रहे। वे उत्तर प्रदेश और बिहार की मुस्लिम आबादी का बहुल हिस्सा हैं। इन्हीं गरीब लोगों को निहित स्वार्थों की राजनीति में हमेशा भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

जमात-ए-इस्लामी के संस्थापक अध्यक्ष मौलाना मौदूदी ने न तो कभी जिन्ना

को समर्थन दिया (उसके अनुसार धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करता था और उसने पाकिस्तान को धर्म का राज्य स्थापित करने से इन्कार कर दिया था) और न ही अंग्रेजी शासन विरोधी संघर्ष में भाग लिया, उसने साम्राज्यवाद और धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र की तुलना दो 'झूठे भगवानों' से की और अब वह धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र से दूर रहने की सलाह देकर भारतीय मुसलमानों में भ्रान्तियां पैदा कर रहा था। उसने कहा, ''जहां तक मुसलमानों का सम्बन्ध है मैं उन्हें स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि वर्तमान धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय लोकतन्त्र उनके धर्म व आस्थाओं के पूरी तरह विपरीत है। यदि आप इसके सामने सिर झुकाओगे तो यह कुरान से मुंह मोड़ना होगा, यदि आप इसकी स्थापना एवं मजबूती के लिए कार्य करोगे तो यह खुदा व उसके सन्देशवाहकों के प्रति विद्रोह होगा और यदि आप इसका झण्डा बुलन्द करोगे तो आप खुदा के प्रति व्रिदोह का झण्डा उठा रहे होंगे।''[5]

चूंकि जमात-ए-इस्लामी का प्रभाव चन्द पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित था, इसलिए भारतीय मुसलमानों पर मौदूदी की घोषणा का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। पचास के दशक के पूर्वार्द्ध में उर्दू प्रेस में चले विमर्श से लगता है कि 'धर्मनिरपेक्षता' की अवधारणा के बारे में कुछ भ्रान्तियां थीं। उन दिनों इसका अनुवाद अक्सर 'लादिनियत' (धर्म-विरोधी) किया जाता था। इससे काफी मुसलमानों में इसके बारे भ्रम पैदा हुआ। वे सोचते थे कि भारत सरकार धर्म-विरोधी है लेकिन जल्दी ही ये भ्रम समाप्त हो गया और कुछ वर्षों में ही धर्म-निरपेक्ष सरकार को 'लादिनी हुकुमत' (धर्म-विरोधी सरकार) कहना बन्द हो गया और उसे सिर्फ 'सेक्युलर' सरकार कहना शुरू हुआ। 'सेक्युलर' शब्द उर्दू भाषा की शब्दावली का अंग बन गया। इससे उत्तर भारत के मुसलमानों में भारत सरकार की धर्मनिरपेक्ष नीयत में पुनः विश्वास पैदा किया। 26 जनवरी, 1950 को धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणराज्य वाले भारतीय संविधान का प्रकाशन एक क्रान्तिकारी कार्य था। भारत को धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र को घोषणा करके भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस व इसके नेता स्वतन्त्रता पूर्व किए अपने वायदे पर खरे उतरे, यहीं नहीं सभी को वोट का अधिकार देना भी क्रान्तिकारी कदम से कम नहीं था। जाति, नस्ल, सामाजिक-आर्थिक हैसियत को नजरन्दाज करते हुए भारत की समस्त आबादी को कलम के एक ही प्रहार से वोट का अधिकार दे दिया गया। संविधान में धारा 25, 26, 29 व 30 को शामिल करके धार्मिक व भाषायी अल्पसंख्यकों को विशेष सुरक्षा भी प्रदान की गयी। ये महत्त्वपूर्ण संवैधानिक कार्य इस बात के सकारात्मक सूचक थे कि भारत ने अपनी मध्यकालीन विरासत व रूढ़िवादी अतीत को छोड़ने का संकल्प कर लिया है। यह एक तरह से धार्मिक अल्पसंख्यकों में विश्वास जगाता था।

नत्थूराम गोडसे व उसके साथियों द्वारा 1948 में महात्मा गांधी की हत्या के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सरकार की

विज्ञप्ति ये थी–"...सरकार ने खेद के साथ चिह्नित किया है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का व्यवहार उसके प्रस्तावित आदर्शों के अनुकूल नहीं है। संघ के सदस्यों द्वारा अवांछनीय और यहां तक कि खतरनाक कार्य किए गए हैं। पाया गया है कि देश के कई भागों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य हिंसा, आगजनी, लूट, डकैती एवं हत्याओं व अवैध हथियार की गतिविधियों में लिप्त हैं। वे लोगों को आतंकी तरीकों, आगजनी के हथियार, लोगों का सरकार से मोहभंग करने, पुलिस व सेना को धोखा देने सम्बन्धी भड़काऊ पर्चे बांटते पाए गए हैं।

"ये गतिविधियां गुप्त तरीके से चलाई गई हैं और सरकार ने समय-समय पर इस पर विचार किया है कि संघ की गतिविधियों से कैसे निबटा जाए।

"इन परिस्थितियों में भयावह हिंसा की पुनरावृत्ति रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाना सरकार का कर्तव्य है। इस दिशा में पहले कदम के तौर पर सरकार ने संघ को गैरकानूनी संगठन घोषित करने का निर्णय लिया है।"[6]

जवाहरलाल नेहरू समय-समय पर साम्प्रदायिकता पर आक्रमण करते रहे। उदाहरण के लिए 6 जुलाई, 1952 को दिल्ली में सभा सम्बोधित करते हुए उन्होंने जनसंघ, हिन्दू-महासभा व प्रजा परिषद की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि ये काश्मीर की समस्या को समझे बिना नारे लगाकर समस्या को जटिल बनाने की कोशिश कर रहे हैं, इनकी गतिविधियां काश्मीर और भारत दोनों के लिए हानिकारक हो सकती हैं।[7]

15 अगस्त, 1952 को स्वतन्त्रता-दिवस के भाषण में उन्होंने देश के सामने मौजूद खतरों का जिक्र किया : हिंसा की संस्कृति, साम्प्रदायिकता और स्वार्थपरता। ....उन्होंने कहा कि साम्प्रदायिकता देश को केवल और ज्यादा कमजोर कर सकती है। धार्मिक कट्टरपन्थी और साम्प्रदायिक नेताओं ने इतिहास से सबक लेने से इन्कार कर दिया है। "हमें साम्प्रदायिक तत्वों और स्वार्थी-लालची लोगों से सतर्क रहना है जो झूठ और पाखण्ड से देश को नुकसान पहुंचाते हैं। यदि इन तीन चीजों को रोका नहीं गया तो ये हमारे देश को बर्बाद कर देंगी।"[8] इसी तरह नेहरू ने साम्प्रदायिकता फैलाने में समाचार पत्रों की भूमिका की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि साम्प्रदायिक घृणा फैलाने वाले समाचार-पत्रों पर अंकुश लगाया जाए। यद्यपि वे विचारों की स्वतन्त्रता के हिमायती थे, लेकिन वे नहीं चाहते थे कि अपना विस्तार करने के लिए समाचार पत्र साम्प्रदायिक घृणा फैलाएं। साम्प्रदायिक घृणा फैलाने वाले समाचार पत्रों के विरुद्ध कार्रवाई करने के लिए कानून में संशोधन या नया कानून बनाना चाहते थे। "यह असहनीय हो गया है कि कोई समाचार-पत्र मिथ्या प्रचार करके लोगों की साम्प्रदायिक भावना को भड़काए और इसके बदले धन बटोरे। ऐसे समाचार-पत्र को सजा मिलनी चाहिए।" उन्होंने मुस्लिम लीग का उदाहरण दिया जिसने भारत के वातावरण में जहर घोला

था। फिर भी कुछ लोग भारत में मुस्लिम लीग की नकल करना चाहते हैं। हिन्दू महासभा, जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने भी वही चोला पहन रखा है और उनके विचार और तरीके बिल्कुल उसी जैसे हैं–धर्म के नाम पर लोगों को उकसाना।[9]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद पहले दशक की ये आधिकारिक घोषणाएं दर्शाती हैं कि स्वातन्त्र्योत्तर भारत में साम्प्रदायिकता ने अपना भद्दा सिर उठा लिया था। देश के विभाजन से साम्प्रदायिकता की समस्या सुलझने की बजाय और बढ़ गई थी, महात्मा गांधी की हत्या इसका प्रमाण है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पहले मुस्लिम लीग सबसे उग्र थी, लेकिन स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के पहले दशक में कई दंगे हुए। सन् 1950 में पश्चिम बंगाल में गोरा बाजार, दमदम आदि में दंगे फैल गए। इन दंगों में 34 मुसलमान और 16 हिन्दू मारे गए और 146 मुसलमान व 110 हिन्दू घायल हुए।[10] ये कोई छोटे-मोटे झगड़े-फसाद नहीं थे, बल्कि ये दंगे पूर्वी-पाकिस्तान में हिन्दू विरोधी हिंसा की प्रतिक्रिया प्रतीत होते थे। पचास के पूरे देश में साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाएं घटित होती रहीं। सन् 1954 में कुल 54 दंगे हुए जिनमें 34 व्यक्ति मारे गए और 512 घायल हुए। 1956 ई. में 82 दंगों का विवरण है जिनमें 35 लोग मारे गए और 575 घायल हुए। 1957 में 58 दंगे पंजीकृत हुए और मरने वालों की संख्या 58 तथा घायलों की संख्या 316 पहुंच गई। उसके बाद 1958 में साम्प्रदायिक दंगों की 40 घटनाएं दर्ज हुईं जिनमें 7 लोग मौत की नींद सो गए और 369 घायल हुए। 1959 में साम्प्रदायिकता की 42 घटनाएं घटित हुईं जिनमें 41 लोगों की मौत हुई और 1344 घायल हुए। 1960 में 26 घटनाएं घटित हुईं जिनमें 14 व्यक्तियों की मृत्यु हुई और 262 लोग घायल हुए।

ये घटनाएं दर्शाती हैं कि कोई भी वर्ष ऐसा नहीं है जिसमें साम्प्रदायिक हिंसा न हुई हो। अपनी धर्मनिरपेक्ष रहने की प्रतिज्ञा के बावजूद भी भारत कभी साम्प्रदायिक हिंसा और साम्प्रदायिकता के दानव से नहीं बच सका। 1962 के जबलपुर दंगों ने पूरे राष्ट्र को झकझोर दिया। यह आजाद भारत में पहला बड़ा साम्प्रदायिक दंगा था। इस साम्प्रदायिक दंगे से नेहरू इतना दहल गए थे कि उन्होंने राष्ट्रीय एकता परिषद गठित करने का निर्णय लिया। इस दंगे से मुसलमानों का मोहभंग हुआ जो सामान्यतौर पर भारतीय धर्मनिरपेक्षता में और विशेषतौर पर नेहरू में विश्वास करते थे। जाने-माने राष्ट्रवादी मुसलमान और नेहरू की कैबिनेट के मन्त्री सैयद महमूद जैसों का भी मोहभंग हुआ और मुस्लिम मजलिस-ए-मशावरात नामक अलग मुस्लिम मंच बना (मुसलमानों की सलाहकार संस्था)। सभी मुस्लिम संगठन और दूसरे धर्मनिरपेक्ष दलों व संगठनों के मुसलमान पहली बार इस मंच पर एकत्रित हुए। उत्तर प्रदेश के मुस्लिम नेता फरीदी और महमूद ने इसके लिए पहल की। मुसलमानों का कांग्रेस की धर्मनिरपेक्षता से विश्वास डोल गया। बड़े दंगों की शृंखला में यह पहला दंगा था। ज्यादातर बड़े दंगे साठ के दशक के मध्य में पूर्वी भारत के रांची, जमशेदपुर, दुर्गापुर

आदि बड़े औद्योगिक केन्द्रों पर हुए। ऐसी घटनाएं घटीं कि एक सम्प्रदाय के मजदूरों ने दूसरे समुदाय के मजदूरों को लोहे की भट्टी में फेंक दिया। इन दंगों ने मुसलमानों को न केवल निराश किया बल्कि उन्हें अपनी ही खोल तक सीमित रहने को विवश किया। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि उत्तर प्रदेश और बिहार से मध्यवर्ग के मुसलमानों के पाकिस्तान चले जाने से वहां मुसलमानों का प्रभाव काफी कमजोर हो गया था। गरीब जनता रूढ़िवादी धार्मिक नेताओं के अत्यधिक प्रभाव में होती है, और यह बात हमेशा मुसलमानों के खिलाफ जाती थी, क्योंकि इससे मुसलमानों को प्रायः अनुदार, उग्र, धार्मिक मामलों में कट्टर और परिवर्तन के प्रति अनिच्छुक समझा जाता था। इस दुष्प्रचार ने हिन्दू साम्प्रदायिकतावादियों की मदद की। यद्यपि यह पूर्णतः झूठ नहीं है, लेकिन आरोपों को बढ़ा-चढ़ाकर लगाया गया और इस तरह से दुष्प्रचार किया कि मुस्लिमों के प्रति हिन्दुओं का रुख कड़ा होता गया। इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों के अभिजात्य वर्गों की दूरी दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। स्वतन्त्रतापूर्व की स्थिति ने अपने आपको दोहराना शुरू कर दिया। दक्षिणपंथी हिन्दू साम्प्रदायिक पार्टी जनसंघ भी मजबूत हो रही थी। 'पार्टी की ताकत' एण्डरसन और दामले ने कहा, ''हिन्दी-भाषी राज्यों में ही केन्द्रित रही विशेष तौर पर उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, संघ शासित राज्य दिल्ली व पंजाब के हिन्दू बहुल नगरों में जहाँ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ 1940 में ही मजबूत आधार बना चुका था। उत्तर प्रदेश में 1952 और 1957 के संसदीय चुनाव में जनसंघ का वोट प्रतिशत 7.29 से दोगुना होकर 14.89 हो गया। 1957 में जनसंघ ने उत्तर प्रदेश में 86 संसदीय सीटों में से 2 तथा 430 विधानसभा सीटों में से 17 सीटें जीतीं। 1962 में संसदीय प्रतिनिधित्व 7 और विधानसभा में 49 तक बढ़ा लिया। अधिकांश दूसरे राज्यों की तरह जनसंघ ने उत्तर प्रदेश में भी अपनी शुरुआत शहरी आधार से की, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में आधार बनाने के लिए खूब प्रयास किए।[12]

एण्डरसन और दामले आगे रेखांकित करते हैं कि आंकड़े दर्शाते हैं कि ''ग्रामीण क्षेत्रों का काफी समर्थन हासिल करने में सफलता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त 1959 में उत्तर प्रदेश के नगरपालिका चुनावों में पांच सबसे बड़े शहरों में दिखा दिया कि शहरी क्षेत्रों में पार्टी उल्लेखनीय समर्थन जुटाने में सक्षम है। जनसंघ ने इन नगरपालिका चुनावों में 296 सीटों में से 56 सीटें जीतीं, राज्य की राजधानी लखनऊ में सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और अन्य चार शहरों में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी रही।''[13] इस तरह स्वतन्त्र भारत में जनसंघ साम्प्रदायिक प्रचार को तेज करके अपनी शक्ति बढ़ा रही थी। उस समय तक इसका मुख्य आधार शहर के छोटे व्यापारियों में था, जो कि बहुत अधिक रूढ़िवादी था। इस वर्ग को मुसलमान कई कारणों से अपने प्रतिद्वन्द्वी नजर आते थे जिनमें एक कारण व्यापार में प्रतिस्पर्धा थी।

1962 में चीन युद्ध के दौरान और 1965 में पाकिस्तान युद्ध के दौरान भी जनसंघ की लोकप्रियता में बढ़ोत्तरी हुई, क्योंकि इसको कांग्रेस से ज्यादा 'राष्ट्रभक्त' समझा गया। जनसंघ के नेता काफी आश्वस्त थे कि चीन और पाकिस्तान के प्रति उनके कड़े रवैये से उनको लोकप्रियता हासिल हुई है। जनसंघ के नेताओं ने इन दो युद्धों के दौरान राष्ट्रभक्ति की बढ़ी हुई भावनाओं को अपने पक्ष में भुनाया। महात्मा गांधी की हत्या के बाद प्रतिबन्धित संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अब एक सम्मानित संगठन के रूप में देखा जाने लगा। सम्मान का एक प्रतीक यह था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को, नई दिल्ली से, 1963 में गणतन्त्र दिवस की परेड में भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया गया और इसके 200 से अधिक 'स्वयंसेवकों' ने पूरी वर्दी व बैण्ड-पार्टी के साथ परेड में भाग लिया।

जनसंघ की और शक्ति बढ़ी और उसने 1967 में और जीतें दर्ज कीं। 1967 के आम चुनावों से एक वर्ष पहले हिन्दू विचारधारा को उग्र ढंग से प्रसारित करने वाले बलराज मधोक को जनसंघ का अध्यक्ष बनाया गया, जिन्होंने चुनावों के लिए स्थानीय इकाइयों को गठित करने का अभियान तुरन्त छेड़ दिया। चुनाव पूर्व राजनीति के तौर पर पार्टी की इकाइयों को उल्लेखनीय तरीके से पार्टी के महासचिव ने रिपोर्ट दी कि पार्टी की सदस्यता 1956 में 6 लाख के मुकाबले 1966 के आरम्भ में 13 लाख तक बढ़ चुकी थी और 268 जिलों में पार्टी की इकाइयां थीं।

मधोक ने पार्टी में और अधिक उग्रता फूंक दीं। देश की सामान्य स्थितियां भी खराब हो रही थीं, कुछ वर्षों के लगातार सूखा पड़ने से अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ा। वास्तव में यह आर्थिक गिरावट और औद्योगिक मन्दी का दौर था। लोगों का कांग्रेस से मोहभंग हो रहा था। विपक्षी दलों ने गठजोड़ करके संयुक्त विधायक दल बनाया। परिणामस्वरूप 1967 के उत्तर प्रदेश चुनावों में कांग्रेस चुनाव हार गई और चौधरी चरणसिंह के नेतृत्व में संयुक्त विधायक दल ने सरकार बनाई। केन्द्र में भी कांग्रेस की 83 सीटें कम हो गईं और केवल 25 सीटों से अपना बहुमत बचा पाई। दूसरी तरफ, जनसंघ ने काफी अच्छा प्रदर्शन किया। संसद में इसकी संख्या 1962 में 14 के मुकाबले 1967 में 35 सीटें हो गई और वोट प्रतिशत 6.44 प्रतिशत से बढ़कर 9.44 प्रतिशत हो गया। इसने 1967 में विधानसभाओं में भी 266 सीटें प्राप्त कीं, यह 1962 में जीतीं 119 सीटों के मुकाबले दोगुनी थीं। 1967 में हिन्दी-भाषी क्षेत्र के अलावा भी जनसंघ ने विधानसभा सीटें जीतीं, बंगाल में (1), आन्ध्रप्रदेश में (3) और कर्नाटक में (4) सहित गैर-हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कुल 32 विधानसभा व 2 संसदीय सीटें जीतीं।[16]

साठ के अन्तिम वर्षों में औद्योगिक मन्दी ने बम्बई को बुरी तरह प्रभावित किया और बेरोजगारी बहुत तेजी से बढ़ रही थी; वामपन्थी ट्रेड यूनियनें छंटनी और तालाबन्दी आदि के खिलाफ संघर्ष कर रही थीं। मराठी युवाओं में बेरोजगारी

सबसे अधिक थी। शिवसेना जैसी संकीर्ण क्षेत्रवादी पार्टी बनने के लिए यह अनुकूल समय था। यह कहा जाता है कि 1967 में शिवसेना के निर्माण के पीछे कुछ कांग्रेसी भी थे। यह भी कहा जाता है कि एक प्रसिद्ध गैर-मराठी उद्योगपति ने आर्थिक साधन उपलब्ध कराए। चाहे सच्चाई जो भी हो शिवसेना ने धमाकेदार शुरुआत की और दक्षिण भारतीय विरोधी अभियान शुरू कर दिया और कुछ समय बाद ही मुस्लिम-विरोधी प्रचार शुरू कर दिया। कोसा दंगों के दौरान बाल ठाकरे ने भड़काऊ बयान दिए और 1970 के भिवंडी व जलगांव के दंगों में उनकी पार्टी ने प्रमुख भूमिका अदा की। बाल ठाकरे के वक्तव्यों ने उन दिनों महाराष्ट्र के साम्प्रदायिक तापमान को काफी बढ़ा दिया। शिवसेना के धुआंधार प्रचार व शिव जयन्ती जुलूस निकालने के परिणामस्वरूप 1970 में भिवंडी और जलगांव आग की चपेट में आ गए।

भिवंडी-जलगांव दंगों से पहले, अहमदाबाद और गुजरात के अन्य स्थानों पर भयावह साम्प्रदायिक हिंसा हुई। इनके पीछे धार्मिक कारण इतने नहीं थे, जितने कि राजनीतिक। यदि हम साठ के दशक के अन्तिम चरण की साम्प्रदायिकता के उच्च तापमान के कारणों को समझना चाहते हैं तो हमें उस समय के राजनीतिक घटनाक्रम पर एक नजर डालनी पड़ेगी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि साठ के दशक का अन्तिम चरण आर्थिक व राजनीतिक दृष्टि से संकट का समय था। लम्बे सूखे की वजह से देश आर्थिक गिरावट की ओर जा रहा था। 1966 में लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधानमन्त्री बनीं। अतुल्य घोष, कामराज, मोरारजी देसाई तथा कांग्रेस के अन्य तथाकथित 'मालिक' (Bosses) सत्ता का वास्तविक प्रयोग करना चाहते थे, वे सोचते थे कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को अपनी मर्जी के मुताबिक चला सकेंगे। लेकिन श्रीमती गांधी ने ऐसे तमाम प्रयासों का प्रतिरोध किया और अपनी तरह से शासन करना चाहा। एक सत्ता-संघर्ष शुरू हो गया। कांग्रेस के तथाकथित मालिकों के वर्चस्व से पीछा छुड़ाने के लिए तथा मतदाताओं का लोकप्रिय समर्थन हासिल करने के लिए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने भारत के प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। राष्ट्रीयकृत बैंकों को छोटे दुकानदारों, रिक्शा चालकों तथा टैक्सी चालकों आदि को भी बिना कोई गारंटी लिए ऋण देने के निर्देश दिए गये। इस कदम से भारत की शोषित-वंचित जनता में उनकी लोकप्रियता में भारी वृद्धि हुई और वह कांग्रेस की सबसे बड़ी नेता बन गईं। उनकी चुनावी लोकप्रियता तेजी से बढ़ी। हालांकि, इस कदम से कई दूसरे राजनीतिक दुष्परिणाम भी निकले। ऐसा सोचा गया कि श्रीमती इन्दिरा गांधी का झुकाव समाजवाद की ओर है, और वे समाजवादी खेमे में जा रही हैं। समाजवाद के विरोधियों ने उसके खिलाफ मोर्चा बना लिया। जनसंघ और स्वतन्त्र पार्टी इकट्ठी हो गईं। स्वतन्त्र पार्टी में अधिकांश रियासतों के पूर्व-राजा व राजकुमार

थे, वे इन्दिरा गांधी से इसलिए नाराज थे कि उनके प्रीवीपर्स पर पाबन्दी लगा दी गई थी। श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस से टूटकर बनी कांग्रेस (o) पार्टी भी इस गठबन्धन में शामिल हो गई। श्रीमती इन्दिरा गांधी अपना राजनीतिक आधार अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों को विशेषकर मुसलमानों में विस्तृत करने की कोशिश कर रही थीं। ऐसा वह धर्मनिरपेक्ष अपील करके ही कर सकती थीं। उन्होंने अपनी समाजवादी धर्मनिरपेक्ष छवि प्रस्तुत की जिससे साम्यवादियों का समर्थन भी हासिल हो गया। इस तरह उनकी राजनीतिक हैसियत अजेय हो गई।

अब कांग्रेस (o) जनसंघ और स्वतन्त्र पार्टी ने इकट्ठे मिलकर उनकी राजनीतिक हैसियत को कमजोर करने की कोशिश की। इस कार्य के लिए सबसे आसान चीज थी साम्प्रदायिक सौहार्द्र को बिगाड़ कर उनकी धर्मनिरपेक्ष अपील को कमजोर करना ताकि अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों का काफी शक्तिशाली वोट समूह उनसे दूर हो जाए। गुजरात में इसे अन्जाम देना सम्भव था। गुजरात में हितेन्द्र देसाई के नेतृत्व में कांग्रेस (o) की सरकार थी और राजस्थान के अतिरिक्त स्वतन्त्र पार्टी यहां भी शक्तिशाली थी। उस समय गुजरात में जनसंघ इतनी शक्तिशाली नहीं थी, लेकिन वह अपनी स्थिति को सुधारने की कोशिश में थी। जनसंघ के लिए इस राज्य में राजनीतिक विस्तार करने के लिए साम्प्रदायिक प्रचार काफी लाभदायक रहा। सितम्बर, 1969 के दंगों से एक सप्ताह पहले बलराज मधोक अहमदाबाद गए और उन्होंने गुजरात में कई जगह सभाएं सम्बोधित कीं। भारत से हजारों मील दूर स्थिति मस्जिद (अल-अक्सा) के लिए शोर-शराबे के बारे में मुसलमानों की आलोचना की। उन्होंने यह भी कहा कि यही लोग एक शब्द भी नहीं बोले जब भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान पाकिस्तान ने द्वारका मन्दिर पर हमला किया था, उन्होंने पूछा, "क्या वे सोचते हैं कि हिन्दुओं की अपने धर्म के लिए कोई भावना नहीं है।"[17]

कुछ और कारण भी इसमें जुड़ गए जैसे जमायत-अल-उलेमा कांफ्रेस, इसराइल में अल-अक्सा मस्जिद पर हमले के विरुद्ध जुलूस आदि। 1962 के जबलपुर दंगों की तरह अहमदाबाद दंगों ने भी पूरे देश को झकझोर दिया। भारत के लोग बहुत जरूरी राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों को छोड़कर अचानक साम्प्रदायिक समस्या पर विचार-विमर्श करने लगे। श्रीमती गांधी की हैसियत भी कमजोर होती प्रतीत हुई। पूरे गुजरात में दंगे फैल गए और हितेन्द्र देसाई की सरकार साम्प्रदायिक दंगों को फैलने से रोकने में नाकाम रही।

जयप्रकाश नारायण इससे बहुत अधिक विचलित हुए और उन्होंने महात्मा गांधी की जन्मशताब्दी उत्सव में भारत आए खान अब्दुल गफ्फार खान के साथ मिलकर 'इन्सानी बिरादरी' नामक संगठन बनाया। यह दुर्भाग्यपूर्ण था कि महात्मा

गांधी की जन्म शती के दौरान गुजरात अभूतपूर्व साम्प्रदायिक हिंसा से ग्रसित था। आजादी के वर्षों बाद भी भारत में इतने साम्प्रदायिक दुर्भाव को देखकर खान अब्दुल गफ्फार खान भी हैरान थे। उन्होंने साम्प्रदायिकता के खिलाफ अभियान छेड़ने के लिए भारत के कई स्थानों का दौरा किया। पूरे मीडिया में साम्प्रदायिक समस्या केन्द्र में थी, किसी समाचार पत्र या लेखक का दृष्टिकोण धर्मनिरपेक्ष या साम्प्रदायिक कुछ भी रहा हो, लेकिन समाचार पत्रों में इस विषय पर लेखों की झड़ी लग गई। साम्प्रदायिक तनावपूर्ण माहौल में जनसंघ ने दिसम्बर 1969 में पटना अधिवेशन में 'मुसलमानों का भारतीयकरण' का प्रस्ताव पारित किया।''[18] जिसने आगे इस विचार को मजबूत किया कि भारत में रहने वाले मुसलमान सच्चे भारतीय नहीं हैं और इनकी वफादारी भारत से कहीं बाहर है।

1969 के अहमदाबाद और गुजरात के दंगों के बाद 1970 में भिवंडी और जलगांव में दंगे हुए। जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सहायता एवं उकसावे से शिवसेना ने इन दंगों में मुख्य भूमिका निभाई। इस तरह साठ के दशक के अन्तिम चरण में साम्प्रदायिक हिंसा का घटिया से घटिया जो रूप नजर आया, वह देश में पहले कभी देखने में नहीं आया था। हालांकि सत्तर के प्रारम्भिक समय में कुछ समय के लिए साम्प्रदायिकता से कुछ राहत मिली। बंगला देश-आन्दोलन से प्राथमिकताएं बदलती प्रतीत हुईं। 1971 में भारतीय सेना ने ढाका में प्रवेश किया, पाकिस्तानी सेना को हरा दिया और बांगलादेश का जन्म हुआ। पाकिस्तान को तोड़ने और बांगलादेश निर्माण में भूमिका के कारण श्रीमती इन्दिरा गांधी की लोकप्रियता उच्च शिखर पर थी। यहां तक कि जनसंघ नेता वाजपेयी ने संसद में उन्हें 'दुर्गा का अवतार' कहा। अब उसकी राजनीतिक हैसियत उतनी ही बुलन्द थी जितनी कि साठ के अन्तिम चरण में बैंकों के राष्ट्रीयकरण करने के समय थी। सामान्यतः भारतीय मुसलमान पाकिस्तान के टूटने पर खुश नहीं थे, लेकिन उन्होंने अपनी इस नाखुशी को कभी भी व्यक्त नहीं किया और साम्प्रदायिक स्थिति शान्तिपूर्ण बनी रही। हालांकि युद्ध के कारण खस्ता हुई आर्थिक हालत के चलते श्रीमती गांधी की लोकप्रियता अधिक समय तक नहीं टिक सकी। जीने के लिए आवश्यक वस्तुओं की कमी, महंगाई और शीर्ष स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार ने लोगों में रोष उत्पन्न किया और जयप्रकाश ने एक बार फिर 'कांग्रेस कुशासन' के विरुद्ध लोगों को संगठित करने का नेतृत्व संभाला। गुजरात में चिमनभाई पटेल की सरकार के विरुद्ध लम्बा संघर्ष चला। देश के बहुत भागों में कानून और व्यवस्था की स्थिति खराब हो गई। इसी समय इलाहाबाद उच्च-न्यायालय ने 1975 में इन्दिरा गांधी के खिलाफ दायर याचिका पर अपना फैसला सुनाते हुए उनकी संसदीय सदस्यता समाप्त कर दी। जयप्रकाश नारायण ने पुलिस व सशस्त्र सेना से आह्वान किया कि यदि सरकार के आदेश असंवैधानिक हों तो उनका पालन न किया जाए। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इमरजेन्सी की घोषणा कर

दी और संविधान में कई संशोधन किए जिनसे फिर ताकत प्राप्त कर ली। हालांकि हमारा वास्ता सामान्य राजनीतिक स्थिति की अपेक्षा साम्प्रदायिक स्थिति से अधिक है, कहा जा सकता है कि इमरजेन्सी के दौरान कुल मिलाकर साम्प्रदायिक स्थिति नियन्त्रण में रही। इसके कई कारण हैं, पहला, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जमात-ए-इस्लामी और जनसंघ के सभी नेता गिरफ्तार थे, साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़काने वाला कोई नहीं था। दूसरा, पुलिस को सख्त आदेश थे कि साम्प्रदायिक हिंसा या किसी भी तरह के हिंसक जन-आक्रोश को न होने दिया जाए। तीसरा, निरकुंश शासन के तहत कानून और व्यवस्था को नियन्त्रण में रखना आसान होता है। यह आश्चर्यजनक लेकिन सच है कि ऐसे शासन में साम्प्रदायिक या किसी संकीर्ण धार्मिक मत के कम से कम कानून-व्यवस्था से जुड़े पहलुओं को बेहतर ढंग से समाप्त किया जा सकता है, विशेषकर तब यदि शासक या प्रशासक का इसमें स्वार्थ निहित न हो तो। उस समय श्रीमती इंदिरा गांधी मुसलमानों का समर्थन हासिल करने के लिए अपनी धर्मनिरपेक्ष छवि प्रस्तुत करना चाहती थीं। लेकिन वे और उनका बेटा संजय गांधी जिसे मीडिया ने 'अतिरिक्त संवैधानिक शक्ति' की संज्ञा दी थी, जल्दी ही मुसलमानों से अलग-थलग हो गए। पहला, समुदाय की इच्छा के विपरीत जबरदस्ती परिवार नियोजन थोपकर और दूसरा, दिल्ली में तुर्कमान गेट पर मुसलमानों के मकान जबरदस्ती तुड़वाने की एक कार्य योजना में काफी लोग पुलिस की गोली से मारे गए और इसमें कुछ बच्चे बुलडोजर के नीचे कुचले गए। चूंकि सेंसर के सख्त कानूनों के तहत प्रैस को ऐसी घटनाओं की रिपोर्ट करने की अनुमति नहीं थी, इसलिए अफवाहों के माध्यम से इस घटना का विवरण बढ़ा-चढ़ाकर प्रसारित हुआ। इसने श्रीमती इन्दिरा गांधी को मुसलमानों से बिल्कुल अलग कर दिया। 1977 में जब चुनाव हुए तो उत्तर भारत में औरों के साथ श्रीमती इन्दिरा गांधी भी बुरी तरह हार गईं। मुसलमानों ने भी बड़ी संख्या में उसके विरुद्ध मतदान किया।

यद्यपि अस्थायी, लेकिन एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना घटी। जयप्रकाश के मार्गदर्शन में बनी जनता पार्टी में जनसंघ का विलय हो गया। और इसके नेताओं ने दिल्ली में महात्मा गांधी की समाधि पर धर्मनिरपेक्षता पर दृढ़ रहने की शपथ ली। जनसंघ के इसका अंग होने के बावजूद भी मुसलमानों का जनता पार्टी में विश्वास पैदा हुआ। 1977 के संसदीय चुनावों में मुसलमानों ने जनता पार्टी को भारी मात्रा में वोट दिए जिससे संसद में इसने अच्छा बहुमत प्राप्त किया। इस चुनाव में भारत की जनता की दबी हुई भावनाएं बाहर निकलीं। स्वतन्त्र भारत में मुसलमानों ने पहली बार गैर-कांग्रेस पार्टी को भारी मात्रा में वोट दिए। यह एक तरह का रिकार्ड था। यहां तक कि जनता पार्टी को भी मुसलमानों से इतने भारी समर्थन की उम्मीद नहीं थी। 1977 के चुनाव प्रचार के दौरान अटलबिहारी वाजपेयी और शाही इमाम ने अनेकों जनसभाएं इकट्ठे सम्बोधित की थीं। ये एक-दूसरे के प्रति घनिष्ठता व्यक्त कर रहे

थे। दोनों मिलकर मुसलमानों को आश्वस्त कर रहे थे कि जनता पार्टी धर्मनिरपेक्ष नीतियों को अपनाएगी और मुसलमानों के हितों की रक्षा करेगी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमात-ए-इस्लामी के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने जेलों में इकट्ठा समय बिताया और दावा किया कि अब वे एक-दूसरे को बेहतर ढंग से जानने लगे हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेताओं ने कहना शुरू कर दिया कि उनकी इस्लाम और मुसलमानों के बारे में गलत समझ काफी हद तक दूर हो गई है। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसे दावों में कोई सैद्धान्तिक समझ नहीं थी, बल्कि एक बड़ा भारी राजनीतिक अवसरवाद था। एक चीज निश्चित थी, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमात दोनों का साम्प्रदायिक दृष्टिकोण एक जैसा था। अपनी राजनीतिक विचारधारा में दोनों धर्मनिरपेक्षता विरोधी थे, और हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जहां हिन्दू राष्ट्र और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद स्थापित करने की शपथ लेता है, तो जमात-ए-इस्लामी भारतीय सन्दर्भ में हिकमत-ए-दीन (इस्लाम की स्थापना) की बात करती है। आश्चर्य की बात तो यह थी कि जो जमात-ए-इस्लामी धर्मनिरपेक्ष राजनीति को पूर्णतः खारिज करती है (मौलाना मौदूदी ने भारत छोड़ते हुए कहा कि धर्मनिरपेक्ष राजनीति अल्लाह और उसके पैगम्बर के विरुद्ध विद्रोह है), वह उस जनता पार्टी को समर्थन देने के लिए तैयार थी, जो उस समय धर्मनिरपेक्षता की शपथ ले रही थी। क्या यह घोर राजनीतिक अवसरवाद नहीं है? क्या इसे सिद्धान्तों की राजनीति कहा जा सकता है, जिसका दावा करते-करते जमात कभी नहीं थकता?

जनता पार्टी अपने आप में अन्तर्विरोधों से भरी थी। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इसे 'खिचड़ी सरकार' की संज्ञा देकर खारिज किया। हालांकि ऐसा कहने के पीछे उनके अपने राजनीतिक मकसद थे, लेकिन फिर भी इसकी सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता। अन्ततः जनता पार्टी अपने ही अन्तर्विरोधों के भार से टूट गई। समाजवादी और जनसंघी 'दोहरी सदस्यता' के मुद्दे पर लड़ने लगे। जनता पार्टी के समाजवादी सदस्यों ने जनसंघी सदस्यों से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सदस्यता त्यागने की बात की, जिसके लिए जनसंघी तैयार नहीं थे। वास्तव में, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सदस्य बने रहना जनसंघियों के पक्ष से सैद्धान्तिक था। जनता पार्टी धर्मनिरपेक्ष पार्टी थी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सदस्यता रखने वाला व्यक्ति धर्मनिरपेक्ष होने का दावा नहीं कर सकता था। जनता पार्टी के लोहियावादी-समाजवादी राजनारायण ने यह मुद्दा उठाया। मधु लिमये, मधु दंडवते और अन्य लोग भी इसी मत के थे। इस मुद्दे को सुलझाया नहीं जा सका, जनता पार्टी टूट गई और 1979 में केन्द्र में इसकी सरकार गिर गई।

जनसंघ पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अत्यधिक प्रभाव के कारण जनता पार्टी शासन के दौरान साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा में वृद्धि नजर आई।

महात्मा गांधी की समाधि पर ली गई शपथ के प्रति जनसंघ गम्भीर नहीं था, यह महज एक राजनीतिक नाटक था या फिर घटनाओं के दबाव में किया गया काम या शायद जनसंघ के लिए यह केवल सत्ता हथियाने का ढंग था, क्योंकि अपने बूते पर वह कभी सत्ता प्राप्त नहीं कर सकती थी। जनता पार्टी शासन के दौरान जमशेदपुर, वाराणसी, अलीगढ़ और अन्य स्थानों पर बड़ी संख्या में दंगे हुए, जिसमें सैकड़ों निर्दोष लोग मारे गए। इन सभी दंगों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का सीधा हाथ था। इन दंगों ने एक राजनीतिक संकेत दिया कि जनसंघ अपने आपको राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिकंजे से मुक्त नहीं कर सकता।

सन्दर्भ

1. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इण्डिया विन्स फ्रीडम, ओरिएण्ट लांगमैन, 1988, पृ. 225
2. वही, पृ. 225-226
3. वही, पृ. 226-227
4. वही, पृ. 227
5. मुहम्मद सरवर, मौलाना मौदूदी की तहरीके-ए-इस्लामी, लाहौर, न. द. पृ. 426-427 (उर्दू से अनूदित)
6. द स्टेटसमैन, दिल्ली, फरवरी 15, 1948
7. वही, जुलाई 7, 1952
8. वही, दिल्ली, अगस्त 16, 1952
9. वही, सितम्बर 24, 1956
10. केसिंग्स कंटम्परेरी अर्काइव्स 1948-1950, 1950-1952, लन्दन
11. पी. आर. राजगोपाल, कम्यूनल वायलेंस इन इण्डिया, दिल्ली, 1987, पृ. 16-17 (राजगोपाल ने आंकड़े कार्यलयी सूत्रों से लिए हैं)
12. वाल्टर के. एंडरसन एण्ड श्रीधर दामले, द ब्रदर इन सैफरॉन—द राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एण्ड हिन्दू रिवाइवलिज्म, दिल्ली, 1982, पृ. 165
13. वही, पृ. 168
14. डी. आर. गोयल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, नई दिल्ली, 1979, पृ. 106 उद्धृत ब्रदरहुड इन सैफरॉन पृ. 172
15. आर्गेनाइजर, नई दिल्ली, मई 8. 1966
16. द ब्रदरहुड इन सैफरॉन, पृ. 175-176
17. घनश्याम शा, 'द 1969 कम्यूनल रॉयट इन अहमदाबाद : ए केस स्टडी' असगर अली इंजीनियर, (सं.) कम्यूनल रॉयट इन पोस्ट-इण्डिपेंडट इंडिया, बम्बई, 1991, पृ. 181-182
18. ए. जी. नूरानी, इण्डियांज कांस्टीट्यूशन एण्ड पॉलिटिक्स, बम्बई, पृ. 571

अध्याय 5

साम्प्रदायिक दंगे : सामान्य और विशिष्ट कारण

इस लेखक एवं अन्य लोगों ने विभिन्न साम्प्रदायिक दंगों का अध्ययन किया है। साम्प्रदायिकता पर एक समग्र सिद्धान्त विकसित करना रोचक होगा। हालांकि इसमें प्रत्येक दंगे की विशिष्टताओं को नहीं लिया जा सकता क्योंकि प्रत्येक दंगे की सामान्य विशेषताओं के साथ कुछ अपनी विशिष्टताएं भी होती हैं। हम ऐसी कुछ विशिष्टताओं पर प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे।

देश-विभाजन से पहले के सभी दंगों का कारण अंग्रेजी शासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को माना जाता है। यह सच है कि अपना शासन मजबूत करने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय समाज को विभाजित करने की कोशिश की, लेकिन हिन्दू और मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग की भी इसमें भूमिका रही। यहां हमें स्वतन्त्र भारत में साम्प्रदायिकता के कारणों का जायजा लेना है। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति इतिहास की विरासत के रूप में होते हुए भी इसकी और अधिक व्याख्या की अब सार्थकता नहीं है। अब यह सिद्धान्त दफन हो गया है। विभाजन पूर्व के साम्प्रदायिक दंगों की व्याख्या करते हुए आंशिक रूप से इसका इस्तेमाल किया जा सकता है।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में साम्प्रदायिकता के सामान्य सिद्धान्त का निर्माण करते हुए अति आवश्यक है कि आर्थिक और राजनीतिक घटनाचक्र के साथ-साथ सामाजिक बदलाव को ध्यान में रखा जाए; जो सिद्धान्त इसे अनदेखा करने की कोशिश करेगा वह समसामयिक भारत में जातीय और साम्प्रदायिक हिंसा की सही व्याख्या नहीं कर सकता। साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त-निर्माण में धर्मनिरपेक्ष होने का दावा करने वाली राजनीतिक पार्टियों की भूमिका को जांचने की आवश्यकता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी की नींव धर्मनिरपेक्ष पार्टी के रूप में रखी गई थी और इसने धर्मनिरपेक्षता के झण्डे तले स्वतन्त्रता-संघर्ष का संचालन किया था। तथापि यह कहना गलत नहीं होगा कि कई मौकों पर कांग्रेस किसी संकट को टालने या किसी विशेष सम्प्रदाय के वोट हासिल करने के लिए अपनी धर्मनिरपेक्ष विचारधारा से पीछे हटी है। घटनाओं के दबाव में राजनीतिक पार्टियों ने अपनी

विचारधारा से समझौता किया है। इसलिए साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त-निर्माण को लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ (जिसने बाद में अपना नाम बदलकर भारतीय जनता पार्टी रखा) जैसे साम्प्रदायिक समूहों और पार्टियों पर आरोप लगाना ही पर्याप्त नहीं होगा, हालांकि इन्होंने तो साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा को बढ़ावा दिया ही है, लेकिन तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों का भी इसमें अपना योगदान है।

अस्सी के दशक के प्रारम्भ में कुछ नए साम्प्रदायिक संगठनों का उदय हुआ। विश्व हिन्दू परिषद ने उग्र साम्प्रदायिक भूमिका निभाना शुरू किया, विशेषकर तमिलनाडु जिले के मीनाक्षीपुरम में धर्मान्तरण की घटना के बाद। इसके साथ ही जब रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद प्रकट हुआ तो बजरंग दल भी राजनीतिक पटल पर उभरा। चूंकि विश्व हिन्दू परिषद और बजरंग दल भारतीय जनता पार्टी की तरह राजनीतिक मुख्यधारा में नहीं हैं इसलिए वे अपने दृष्टिकोण में अधिक उग्र हो सकते हैं। शिवसेना जैसी बम्बई तक सीमित आधार वाली पार्टी ने भी अपना जाल काफी विस्तृत कर लिया है। पहले इसने मराठवाड़ा में अपना राजनीतिक जाल फैलाया और इसके बाद महाराष्ट्र के दूसरे भागों में और अब हिन्दी भाषी क्षेत्रों समेत देश के अन्य भागों में अपनी शाखाएं बनाने की कोशिश कर रही है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि विश्व हिन्दू परिषद्, बजरंग दल और शिवसेना आदि साम्प्रदायिक संगठनों ने मुख्य रूप से बेरोजगार युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया है। इस तरह बेरोजगारी की बढ़ोत्तरी ने भी साम्प्रदायिकता के विस्तार में बहुत योगदान दिया। ये संगठन बेरोजगार युवाओं को केवल काम ही नहीं देते बल्कि नेता बनने के अवसर भी प्रदान करते हैं। मराठवाड़ा और रायपुर (मध्यप्रदेश) जिले के अध्ययन से यह स्पष्ट है। इस तरह साम्प्रदायिकता की समस्या को व्यवस्थागत समस्या के रूप में भी देखने की जरूरत है, इसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसके अतिरिक्त कई दंगों के अध्ययन से पुष्टि हुई है कि आगजनी और लूटपाट में बेरोजगार युवक मुख्य रूप से भाग लेते हैं। इससे उनको कुछ समय के लिए आर्थिक समस्याओं से राहत मिलती है और उनकी टेलीविजन, वीडियो, फ्रिज आदि उपभोक्ता वस्तुएं रखने की इच्छा पूरी होती है। दिसम्बर, 1992 व जनवरी 1993 के दंगों के दौरान दंगाइयों ने आमतौर पर ऐसी वस्तुएं लूटीं।

जमात-ए-इस्लामी भी मुख्यतः ऐसे मुस्लिम युवाओं को आकर्षित करने में सफल हुई। इस्लामिक स्टूडेण्ट मूवमेण्ट ऑफ इण्डिया (सिम्मी) ने भी बेरोजगार मुस्लिम युवाओं को अपनी ओर आकर्षित किया। 'सिम्मी' नेताओं ने इस्लाम के सन्दर्भ देकर अत्यधिक भावुकतापूर्ण भाषण दिए। इस तरह हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिकतावादियों ने फ्रायड की मनोवैज्ञानिक शब्दावली प्रयोग करके युवाओं

की आर्थिक व सामाजिक हताशा को अपने स्वार्थों के लिए दोहन करने की कोशिश की।

साम्प्रदायिक दंगों का समग्र सिद्धान्त निर्माण करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि हर दंगे के कुछ सामान्य और कुछ विशिष्ट कारण होते हैं। सामान्य कारण विचारधारात्मक होते हैं और ये राष्ट्रीय स्तर पर होते हैं। विशिष्ट कारण गैर-विचारधारात्मक होते हैं और स्थानीय होते हैं। परन्तु सामान्य और विशिष्ट कारण देश के सामाजार्थिक विकास की प्रक्रियाओं से एकात्मक रूप से गुंथे होते हैं। दूसरे शब्दों में, समस्त समस्या सामाजिक परिवर्तन और विकास के परिप्रेक्ष्य में देखनी चाहिए। समाज-वैज्ञानिक को संरचना और ऊपरी-संरचना में परिवर्तनों में द्वन्द्व को गम्भीरता से देखना चाहिए। यह प्रक्रिया द्वन्द्वात्मक है। आधारभूत संरचना में परिवर्तन ऊपरी-संरचना को तथा ऊपरी-संरचना में परिवर्तन आधारभूत संरचना को प्रभावित करते हैं लेकिन आधारभूत संरचना और ऊपरी-संरचना में यान्त्रिक ढंग से सम्बन्ध स्थापित करना गलत होगा। समस्या को समग्रता में देखने के लिए सम्बन्धों की जटिलता को हमेशा ध्यान में रखना जरूरी है।

आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक हिंसा के स्वरूप को समझने के लिए विभिन्न वर्गों, सामाजिक संगठनों, साम्प्रदायिक और धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक पार्टियों और इसमें शामिल सम्प्रदाय के अभिजात वर्गों की आकांक्षाओं को समझना जरूरी है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि साम्प्रदायिक तनाव का मुख्य कारण धर्म नहीं है, जैसा कि आमतौर पर लोग सोचते हैं। धर्म सिर्फ निहित स्वार्थों का शक्तिशाली हथियार है जिसके माध्यम से वे अपना खेल खेलते हैं। यह कहना गलत होगा कि साम्प्रदायिकता का मूल कारण धर्म है, जैसा कि निहित राजनीतिक व आर्थिक स्वार्थ दर्शाने की कोशिश करते हैं, असल में वे धर्म का नाम लेकर अपनी वास्तविक मंशा को जनता से छुपाना चाहते हैं। धर्म को साम्प्रदायिकता का मूल कारण मानना समस्या के प्रति असामाजिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। समाज में और विशेषतः बहुधर्मी समाज में दो या अधिक धार्मिक संसाधनों पर नियन्त्रण के लिए उपजी साम्प्रदायिक हिंसा और धार्मिक हिंसा में अन्तर करना जरूरी है।

इस तरह साम्प्रदायिकता का जन्म मुख्यतः अपने सम्प्रदाय के लोगों की धार्मिक भावनाओं के दोहन के माध्यम से राजनीतिक या आर्थिक शक्ति को नियन्त्रित करने जैसे धर्मनिरपेक्ष मुद्दों से हुआ। साम्प्रदायिकता को आमतौर पर धार्मिक संगठनों और मान्यताओं ने प्रोत्साहित नहीं किया, बल्कि राजनीतिक पार्टियों के धर्मनिरपेक्ष नेताओं ने किया। इस तरह विभाजन-पूर्व भारत में एक ओर मुस्लिम साम्प्रदायिकता को पूर्णतः पाश्चात्य संस्कृति के भक्त व आधुनिक विचारों वाले नेता मुहम्मद अली जिन्ना ने प्रोत्साहित किया तो दूसरी ओर हिन्दू महासभा के विचारक-चिन्तक सावरकर भी आधुनिक दृष्टिकोण के थे और हिन्दू समाज में

आधुनिक सुधारों के पक्षधर थे। मुस्लिम लीग या हिन्दू महासभा का नेतृत्व मुल्लाओं या शंकराचार्यों ने नहीं किया। किसी धार्मिक या धार्मिक पन्थ के सिद्धान्तों को शामिल किए बिना साम्प्रदायिकता पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष मुद्दों के बारे में थी। इसलिए हम कह सकते हैं कि साम्प्रदायिकता का आधारभूत कारण राजनीति है न कि धर्म, धर्म तो केवल इसका उपकरण या हथियार है। जहां साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध राजनीति से है वहीं धर्म का आस्था से है। महात्मा गांधी और मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे सच्चे धार्मिक व्यक्ति कभी साम्प्रदायिक नहीं हुए। इसी तरह मुहम्मद अली जिन्ना और वीर सावरकर जैसे साम्प्रदायिक व्यक्ति की कभी धर्म में सच्ची आस्था नहीं बनी। इन्होंने धर्म को सिर्फ एक राजनीतिक औजार माना। धर्म में गहरी आस्था रखने वाला व्यक्ति किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इसका इस्तेमाल नहीं करने देगा।

साम्प्रदायिक दंगों के सामान्य कारण

आइये पहले हम साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देने वाले सामान्य कारणों पर विचार करें। साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त निर्माण में सामान्य कारणों का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष समाज की वर्गीय संरचना को समझना है और विशेषकर अल्पविकसित अर्थव्यवस्था और सीमित संसाधनों वाले देश में। अल्पविकसित अर्थव्यवस्था का परिणाम सम्प्रदाय और क्षेत्र दोनों दृष्टि से असमान विकास होता है और यह असमान विकास अनिवार्य रूप से साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय पहचान को बढ़ावा देता है। साम्प्रदायिक या क्षेत्रीय पहचान लोगों को एकत्रित करने का शक्तिशाली कारक बन जाती है और लोकतान्त्रिक व्यवस्था में लोगों का एकत्रीकरण महत्वपूर्ण है। पुनः लोकतान्त्रिक व्यवस्था में बहुसंख्यक सम्प्रदाय का अभिजात वर्ग असमान आर्थिक विकास के फायदों पर एकाधिकार करना चाहता है। इसी तरह अभिजात वर्ग राजनीतिक शक्ति के व्यापक हिस्से पर एकाधिकार चाहता है। स्वतन्त्र भारत में उच्च जाति हिन्दू अभिजात वर्ग का राजनीतिक और आर्थिक शक्ति पर एकाधिकार था।

विभिन्न सम्प्रदायों में असमान विकास से एक समान अन्तर्समुदायिक वर्ग संरचना का विकास नहीं होता, चाहे पूंजीवादी वर्ग का विकास हो या सर्वहारा वर्ग की संरचना हो। कम-विकसित समुदाय के अभिजात वर्ग में दूसरे अपेक्षाकृत अधिक विकसित सम्प्रदाय के प्रति प्रतिद्वन्द्विता की तीव्र भावना पैदा होती है। इस स्थिति में अपने सम्प्रदाय की जनता का समर्थन हासिल करने के लिए वर्गों के आर्थिक आधार को छोड़कर सम्प्रदाय के आधार पर शिकायतें गढ़ी जाती हैं। और इसमें एक तरफ कुछ धार्मिक-सांस्कृतिक मांग जोड़कर तो दूसरी तरफ अपने सम्प्रदाय के अतीत का मिथकीकरण करके लोगों की आर्थिक मांगों को

पीछे फेंक दिया जाता है। हम देखते हैं कि दोनों सम्प्रदायों के साम्प्रदायिक तत्वों ने अपने अतीत को वर्गों और धार्मिक पन्थों व मतों के द्वन्द्वों से रहित स्वर्ण युग की तरह प्रस्तुत करके महिमामण्डित किया। इस तरह किसी सम्प्रदाय के अतीत के मिथकीकरण और रोमांचीकरण ने जनता को एकत्रित करने व सम्प्रदाय की आकांक्षाओं को महसूस करने में शक्तिशाली उपकरण के रूप में कार्य किया। भारत में सामाजिक दृष्टि से पिछड़े समाज में यह उपकरण बेहद शक्तिशाली सिद्ध हुआ।

पिछड़ी और साम्प्रदायिक दृष्टि से विभाजित समाज में साम्प्रदायिकता की सीमाएं लांघकर वर्ग एकता विकसित होनी बहुत मुश्किल सिद्ध हुई, विशेषकर मेहनतकश जनता में जो साम्प्रदायिक हिंसा का मुख्य शिकार होती है। शोषक वर्ग ने उनमें बड़ी चतुराई से मिथकीय इतिहास और अन्य शक्तिशाली मिथकों को डाल दिया। क्योंकि ये तत्व वर्ग हितों की तुलना में अधिक लोगों को एकत्रित करने में सक्षम थे। यह विशेषरूप से शहरी वर्गों के छोटे दुकानदारों के बारे में सच है।

इससे साम्प्रदायिकता का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू हमारे सामने उद्‌घाटित होता है। सभी समाज वैज्ञानिक इससे सहमत हैं कि साम्प्रदायिकता एक शहरी परिघटना है जिसकी जड़ें छोटे व्यापारियों में हैं। इस वर्ग के पिछड़े समाज में परम्परागत रूढ़िवादी धर्म का काफी प्रभाव है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमात-ए-इस्लामी दोनों सम्प्रदायों का वास्तविक आधार शहरी छोटा व्यापारी वर्ग है। दोनों सम्प्रदायों के अभिजात वर्ग ने अपने गैर-धार्मिक उद्देश्यों के लिए धार्मिक भावनाओं का सफलतापूर्वक दोहन किया। इस तरह भारत के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य पर साम्प्रदायिकता का खतरा मंडराने लगा। छोटे व्यापारी वर्ग की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह सत्ता के सामने समर्पण करता है, उनकी इस प्रवृत्ति का साम्प्रदायिक पार्टियां पूरा फायदा उठाती हैं और लोकतन्त्र-विरोधी निरंकुश सत्ता के ढांचे का निर्माण करती हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जमात-ए-इस्लामी दोनों का जोर सत्ता के आगे समर्पण की ओर है, स्वतन्त्र विचार और लोकतान्त्रिक कार्य पद्धति की ओर नहीं। ईश्वरीय सत्ता, पुजारियों द्वारा व्याख्यायित पवित्र पुस्तकों के आगे अन्धश्रद्धा या समर्पण इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है और इस तरह समाज में रूढ़िवाद का प्रसार होता है।

साम्प्रदायिकता के समग्र सिद्धान्त निर्माण के सामान्य कारणों में एक और समस्या है, जो देश के सामाजिक परिवर्तनों से गहरे में जुड़ी है। समाजार्थिक परिवर्तनों का समाज के जिन वर्गों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, उनमें असुरक्षा की भावना पैदा होती है, विशेषकर परम्पराबद्ध समाज में। छोटा व्यापारी और मजदूर वर्ग बुरी तरह प्रभावित होते हैं। वे परम्परावादी होते हैं और समाजार्थिक

परिवर्तनों से उनमें यह प्रवृत्ति गहरे में बैठ जाती है। इसलिए समाज के ये वर्ग धार्मिक, पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों के लिए सबसे अनुकूल होते हैं। समाजार्थिक विकास को सतही या यान्त्रिक ढंग से लेने वाले समाजशास्त्रियों को यह सबसे अधिक परेशान करती है, वे महसूस करते हैं कि विकास से समाज में विवेकशीलता व वैज्ञानिक सोच विकसित होनी चाहिए थी, जबकि यह सत्य नहीं है। इसके विपरीत, ऐसे समाजार्थिक परिवर्तनों से असुरक्षा की भावना पैदा होती है और समाज का बड़ा हिस्सा मानसिक सांत्वना पाने और मनोवैज्ञानिक दबाव कम करने के कारण धर्म की ओर आकर्षित होता है। हाल के धार्मिक तत्ववादी उभार को इस परिप्रेक्ष्य में देखना जरूरी है। भारत के सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र पटल पर धार्मिक पुनरुत्थानवाद और तत्ववाद की दो श्रेणियां हैं। पहली श्रेणी के धार्मिक पुनरुत्थानवाद में आधुनिक समाज की जीवनशैली से उपजे शहरी तनावों और अन्य दवाबों से बढ़ती असुरक्षा को भुनाने वाले योगियों, बाबाओं व अन्य धार्मिक गुरुओं, शिक्षकों के अलावा चालबाज ठग हैं। ये एक ओर नव-धनाढ्य वर्ग की सामाजिक पहचान बनाने की आकांक्षा को सन्तुष्ट करते हैं और साथ ही तस्करों, काला बाजारियों, मुनाफाखोरों और इसी तरह के अन्य स्रोतों से सत्ताधारी राजनीतिज्ञों तक काले धन का महत्वपूर्ण माध्यम भी हैं। धर्म के नाम पर धोखा देने वाले ऐसे ढोंगी हमारी शहरी समाज में बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं, जो विवेकहीनता व अतार्किकता को बढ़ावा दे रहे हैं। शासक वर्ग इन प्रवृत्तियों को इसलिए प्रोत्साहित करता है, क्योंकि अविवेक की संस्कृति जनता में भ्रम और मिथ्या चेतना पैदा करके संकटग्रस्त आर्थिक व्यवस्था को कुछ समय के लिए स्थिरता प्रदान करती हैं। चूंकि ये स्वयं को राजनीतिक क्षेत्र से बाहर रखते हैं, इसलिए समाज में साम्प्रदायिक तनाव को सीधे तौर पर तो बढ़ावा नहीं देते। ये उभरते व्यापारी वर्ग की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित नहीं करते बल्कि इनकी शरणस्थली के रूप में काम करते हैं।

दूसरी श्रेणी के तत्ववाद में विश्व हिन्दू परिषद का आन्दोलन और इस्लामिक तत्ववाद आता है। ये आन्दोलन राजनीतिक आकांक्षा लिए हैं और छोटे व्यापारी वर्गों की उभरती आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। ऐसा धार्मिक पुनरुत्थानवाद राजनीतिक उद्देश्यों से परिचालित है। चन्द हरिजनों के इस्लाम में धर्मान्तरण को मुद्दा बनाकर देश में साम्प्रदायिक तनाव को सघन बनाने के लिए आक्रामक प्रचार की सोची-समझी योजना के तहत विश्व हिन्दू परिषद की शुरुआत हुई। इस पुस्तक के लेखक को दिसम्बर '93 में अहमदाबाद, पूना, शोलापुर और पण्डरपुर आदि के साम्प्रदायिक दंगों की जांच-पड़ताल से पता चला कि ये दंगे विश्व हिन्दू परिषद् के व्यापक प्रचार अभियान का परिणाम थे। सितम्बर से अक्तूबर 1982 के मेरठ दंगों में विश्व हिन्दू परिषद की भागीदारी

किसी से छिपी हुई नहीं थी। उग्र हिन्दूवाद को बढ़ावा देने के लिए विश्व हिन्दू परिषद भारत की विभिन्न भाषाओं में लाखों की संख्या में पर्चे प्रकाशित करती है और अधिकांश शहरों में दीवारों पर भड़काऊ नारे लिखवाती है। यह कहना गलत नहीं होगा कि विश्व हिन्दू परिषद ने साम्प्रदायिकता के विषाणु को नई खुराक दी है, शासक वर्गों के कुछ हिस्सों को व्यवस्था के संकटों से निपटने के लिए ऐसी खुराक की जरूरत थी।

क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक पहचान की उग्र घोषणा का सवाल भी साम्प्रदायिकता के सामान्य कारणों में महत्वपूर्ण है। असल में साम्प्रदायिक या क्षेत्रीय पहचान की घोषणा सीमित आर्थिक संसाधनों में हिस्सेदारी के द्वन्द्व का सीधा परिणाम है। जब आकांक्षाएं बहुत तेजी से बढ़ रही हों और आर्थिक विकास की गति अत्यधिक धीमी हो, तो समाज के विभिन्न वर्गों के द्वन्द्व या तो क्षेत्रीय पहचान के रूप में या धार्मिक-सांस्कृतिक पहचान के रूप में प्रकट होते हैं। अभी हाल ही में इसकी स्पष्ट झलक असम और पंजाब में देखने को मिली और अब काश्मीर में देख रहे हैं।

असम की स्थिति

असम राज्य लम्बे समय तक उपेक्षित रहा, आर्थिक विकास में इसे इसका उचित हिस्सा नहीं मिला और सरकारी नौकरियों और सांस्कृतिक पदों पर बंगालियों ने एकाधिकार कर लिया। यह बांग्लादेश के गरीब किसानों के निर्वासन से जुड़ गया और राज्य में तीव्र तनाव पैदा हुआ जिसकी अभिव्यक्ति क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान के रूप में हुई। असमिया जातीयता अपने आपको असम के लोगों की सांस्कृतिक पहचान के सवाल के रूप में घोषित कर रही थी। असम के मध्यवर्ग और छोटे व्यापारियों ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। ये वर्ग बंगाली पहचान के मुकाबले में अपनी क्षेत्रीय पहचान की अभिव्यक्ति के दौरान आर्थिक विकास में अपने हिस्से का दावा कर रहे थे। आजकल असम की शहरी अर्थव्यवस्था मारवाड़ियों के नियन्त्रण में है। स्थानीय असमी व्यापारी और मारवाड़ियों के बीच तनाव अवश्यम्भावी था, इसलिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने वहां की क्षेत्रीय समस्या को साम्प्रदायिक मोड़ दे दिया। इस तरह असमियों का सवाल और अधिक जटिल हो गया। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने चालाकीपूर्ण ढंग से क्षेत्रीय पहचान को कमजोर किया जिससे साम्प्रदायिक पहचान ने अधिक घातक उग्र रूप धारण किया। नेली क्षेत्र में बंगाली मुसलमानों का नरसंहार क्षेत्रीय पहचान से साम्प्रदायिक पहचान पर जोर का प्रमाण है।

जहां क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान शक्तिशाली है वहां साम्प्रदायिक प्रवृत्ति कमजोर रहेगी, साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण पक्ष है। अभी तक काश्मीर,

असम, पंजाब, केरल, तामिलनाडु आदि राज्यों में यह धारणा सत्य सिद्ध हुई है, हालांकि बदलती परिस्थितियों में यह कमजोर हो रही है। अब हम इन राज्यों में भी साम्प्रदायिक तनाव को देख रहे हैं। असम, पंजाब, केरल, तामिलनाडु साम्प्रदायिक तनाव की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र बन रहे हैं। इनके कुछ कारणों को जांचना रोचक होगा।

पंजाब

सांस्कृतिक दृष्टि से पंजाबी सबसे अधिक घुले-मिले हैं। सिखों और हिन्दुओं में अन्तर्विवाह होते हैं, पंजाबी हिन्दू परिवार के बेटे का सिख बन जाना आम घटनाएं हैं। इतिहास में भी सिखों और हिन्दुओं के बीच कभी शत्रुता नहीं रही। विभाजन के समय भी सिख और हिन्दू इकट्ठे रहे। परस्पर घनिष्ठ भाई-चारे और सह-अस्तित्व के इतिहास के बावजूद हिन्दुओं और सिखों में तीखे साम्प्रदायिक मतभेद उभरे। ऐसा क्या हुआ? क्यों एकदम साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुआ?

सिख अपने को कई कारणों से पीड़ित महसूस करते थे, वे अपनी अलग पहचान बना रहे थे। अकाली और सिख उग्रपन्थी केवल धार्मिक मांगों के लिए नहीं लड़ रहे थे। असली सवाल आर्थिक मांगों को लेकर था। अकालियों ने नदी के पानी में बराबर हिस्सा, हाइड्रो-बिजली घर, चण्डीगढ़ पर कब्जा और अबोहर-फाजिल्का जिलों की कुछ मुख्य मांगों को आगे किया। दूसरे शब्दों में अकाली पंजाब के सिख व्यापारी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, जिस कारण पंजाबी हिन्दू व्यापारी वर्ग से सीधी टक्कर हुई। असल में अकाली उग्रपन्थी धार्मिक मांगें आगे करके सिखों को लामबन्द करने की कोशिश कर रहे थे। सिख तत्ववाद, सिखों में प्रभुत्वशाली वर्गों की धर्मनिरपेक्ष आकांक्षाओं को जाहिर कर रहा था। धार्मिक और साम्प्रदायिक पहचान की घोषणा अधिकतर ग्रामीण समृद्ध सिखों ने की थी। नई समृद्धि ने जाट सिखों की परम्परागत नैतिक बन्धनों को तोड़ने और आर्थिक विकास में अपनी हिस्सेदारी को बढ़ाने की धर्मनिरपेक्ष आकांक्षाओं को बढ़ाया। परम्परागत धर्म से जाट सिखों के बढ़ते अलगाव ने अकालियों को चेताया कि उन पर उनका प्रभुत्व कम हो रहा है, इसलिए उग्र घोषणा द्वारा एक ओर वे उनकी साम्प्रदायिक पहचान को बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे तो दूसरी ओर आर्थिक मांगों को आगे करके सिख अभिजात घरानों और व्यापारी वर्ग की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इस सन्दर्भ में पंजाब राज्य की पूर्ण स्वायत्तता की मांग करने वाले आनन्दपुर साहब प्रस्ताव पर भी विचार करना चाहिए।

धार्मिक पहचान की उग्र अभिव्यक्ति से जाट सिख किसान पर अकालियों का वर्चस्व हुआ, सिखों और पंजाबी हिन्दुओं में तीखे तनाव को जन्म दिया और

पंजाब में साम्प्रदायिक घटाटोप छा गया। यह रेखांकित करने की बात है कि लगभग सभी उग्रपन्थी नवयुवा थे, उनमें कुछ अभी विद्यार्थी थे और कुछ ने अभी अपनी शिक्षा पूरी की ही थी और रोजगार की तलाश में थे। ये उग्रपन्थी आन्दोलन में इसलिए शामिल हुए क्योंकि अनुकूल रोजगार न मिलने पर वे हताश निराश थे। बेरोजगारी भी एक मुख्य कारण था जिसने युवाओं को अतिवादी आन्दोलन से जोड़ दिया। वे महसूस करते थे कि यदि खालिस्तान बन गया तो वे बेरोजगार नहीं रहेंगे। उग्रपन्थी आन्दोलन ने उनको एक स्पष्ट साम्प्रदायिक पहचान दी, जीवन का एक लक्ष्य दिया और जीवन को सार्थक करने का अवसर दिया और काफी हद तक शक्ति की भावना दी।

पाकिस्तान की खुफिया एजेन्सी आई.एस.आई. की भूमिका को भी अनदेखा नहीं करना चाहिए। इसने भी युवाओं को 'हिन्दुस्तान' से अलग होने और खालिस्तान बनाने के लिए प्रेरित किया। आई. एस. आई. ने उनको हथियार और प्रशिक्षण उपलब्ध कराया। हालांकि कई कारणों से खालिस्तान आन्दोलन अधिक नहीं चल पाया। पहला, तमाम ज्यादतियों की वजह से इसने लोगों का समर्थन खो दिया। दूसरे, खालिस्तान आन्दोलन का कोई वास्तविक आधार नहीं था, यह आनन्दपुर साहब प्रस्ताव पर आधारित था, और यह प्रस्ताव विवादास्पद सिद्ध हुआ और इसकी विभिन्न व्याख्याएं थीं। मुख्य अकाली दल भी खालिस्तान निर्माण के बारे में कोई पक्ष लेने में हिचकिचाया। बाद में इसे अमेरिका और कनाडा के सिखों का समर्थन मिला, शायद उन्होंने सोचा होगा कि एक बार खालिस्तान बन गया तो वे वहां निवेश करने के लिए स्वतन्त्र होंगे और अपना पूंजीवादी दुर्ग बना सकेंगे, जिसकी भारत में वे कठिनाई महसूस कर रहे थे (अब भारत ने अपनी आर्थिक नीतियां बदलकर उदारवाद को अपनाया और अब यहां अप्रवासी भारतीयों के निवेश के लिए बहुत सम्भावना है) और साथ ही, आई. एस. आई ने राजनीतिक कारणों से समर्थन वापस ले लिया और खालिस्तान आन्दोलन पूरी तरह खत्म हो गया।

केरल की स्थिति

केरल भी साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए प्रसिद्ध है, और यहां हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई तीन मुख्य सम्प्रदाय कई शताब्दियों से रह रहे हैं। यह राज्य सांस्कृतिक और भाषायी दृष्टि से एक है। अतः हमारी पूर्व-कल्पना के अनुसार यहां सम्प्रदायों के बीच तनाव यदि बिल्कुल गायब नहीं तो बहुत कम था। हालांकि समाजार्थिक स्थिति तेजी से बदल रही है और नए राजनीतिक विकास और बदलते राजनीतिक गठबन्धनों से केरल की राजनीति में साम्प्रदायिकता का तत्व शक्तिशाली ढंग से उभरा है। मुस्लिम लीग कुछ शर्तों पर गठबन्धन (जो 1956 में साम्यवादियों

को खत्म करने के लिए कांग्रेस ने बनाया) में शामिल हुई। ऐसे कई गठबन्धन अस्तित्व में आए और गठबन्धन के सहयोगियों में विभिन्न साम्प्रदायिक समूहों की मांग मानने की होड़ शुरू हुई। नायरों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को केरल में अपना आधार मजबूत करने के लिए प्रोत्साहित किया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ-साथ साम्प्रदायिकता के विषाणु ने भी राज्य में तेजी से फ़ैलना शुरू किया। 1970 के तेलीचेरी के दंगों से पहले केरल में कभी साम्प्रदायिक दंगे नहीं हुए थे (जांच आयोग ने अपनी जांच में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का हाथ माना) लेकिन भारत में मानचित्र पर साम्प्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों में केरल भी निस्सन्देह रूप से है। हिन्दू-मुस्लिम दंगों के बाद निलिक्कम में क्रास मिलने के सवाल को लेकर हिन्दू ईसाई दंगा हुआ। वास्तव में केरल कांग्रेस पर ईसाइयों का वर्चस्व है और मुस्लिम लीग जैसी पार्टी ने किसी एक या दूसरी सत्ताधारी पार्टी से गठबन्धन किया जिससे साम्प्रदायिक समस्या बढ़ी। हालांकि, तुलनादृष्टि से कहा जा सकता है कि हिन्दू-ईसाई समस्या इतनी गम्भीर नहीं है जितनी कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या। इस सबके बावजूद केरल में साम्प्रदायिक समस्या हाशिये पर ही रही और दूसरे राज्यों की अपेक्षा केरल में साम्प्रदायिक सन्तुलन बना रहा।

जम्मू-काश्मीर परिदृश्य

यह देखने में आया है कि राजनीतिक पार्टियों ने अधिक से अधिक वोट बटोरने के लिए जातिवादी और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया। 1983 के जम्मू-काश्मीर के चुनावों का उदाहरण लिया जा सकता है। अपनी पार्टी को अधिक सीटें जिताने के लिए श्रीमती इन्दिरा गांधी ने ऐसे भाषण दिए जिनमें साम्प्रदायिकता की बू आती थी। इससे भी अधिक उन्होंने घाटी में जो कुछ कहा तथा जम्मू में उससे अलग कहा। उन्होंने जम्मू में हिन्दू भावनाओं को सहलाया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं ने उन सीटों पर उनकी जीत के लिए काम किया, जिन पर परम्परागत रूप से भारतीय जनता पार्टी का दावा था। फारुख अब्दुल्ला ने बदले में मीर वाइज़ से गठबन्धन किया, जबकि मीर नेशनल कांफ्रेंस और इसके नेता शेख अब्दुल्ला का परम्परागत विरोधी था। इस तरह तथाकथित धर्म-निरपेक्ष पार्टियों ने चुनावों में चन्द सीटें अधिक जीतने के लिए खुलेआम और बेशर्मी से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया।

काश्मीर में, इन अवसरवादी नीतियों ने अन्ततः सशस्त्र-विद्रोह को जन्म दिया। काश्मीर परम्परागत रूप से हिन्दू पण्डितों और मुसलमानों के बीच सामुदायिक असहजता के लिए प्रसिद्ध है। आर्थिक और राजनीतिक शिकायतें जल्दी ही धार्मिक अनुगूंजें धारण कर लेती हैं। यह सच है कि यहां पाकिस्तान की आई.एस.आई.

की हथियारों की आपूर्ति और प्रशिक्षण में भूमिका रही है, लेकिन कोई इससे भी इन्कार नहीं कर सकता कि काश्मीरी मुसलमानों की समस्याओं को कभी नहीं सुलझाया गया। यहां तक कि इस दिशा में गम्भीर प्रयास भी नहीं हुए। ऐसी समस्याओं को जल्दी ही धार्मिक और जातीय भेदभाव के रूप में देखा जाने लगा और इससे धार्मिक और जातीय पहचान की भावना तीव्र हुई। उग्रवादियों ने काश्मीरी हिन्दुओं को घाटी से बाहर निकाल दिया, जो वहां अब तक शान्ति और सद्भाव से रहते आए हैं। उग्रवादी अब 'शुद्ध इस्लामिक' समाज बनाना चाहते हैं।

यहां तक कि वे बन्दूक की नोक पर ड्रेस कोड और इस्लामिक नियमों को जबरदस्ती लागू कर रहे हैं। सुरक्षाबलों ने भी मानवाधिकारों का हनन किया जिससे जम्मू-काश्मीर के लोगों में अलगाव की भावना और गहरी हुई। अभी तक इस समस्या का कोई आसान हल नजर नहीं आता। इसके साथ ही पण्डितों को घाटी में वापस लाना भी मुश्किल है। काश्मीर से बाहर गए पण्डितों का संगठन 'पनून काश्मीर' भी अलग मातृभूमि की मांग कर रहा है। हालांकि यह बुद्धिमत्तापूर्ण कदम नहीं है। पण्डितों को घाटी में वापस लाने और दोनों सम्प्रदायों में सद्भावना कायम करने के लिए हर तरह के प्रयास चाहिए। हालांकि वर्तमान स्थिति में यह कहना आसान है, लेकिन करना बहुत मुश्किल है। राजनीतिक हल से ही स्थिति सुधर सकती है।

अब से पहले कभी देश में आर्थिक संकट इतना नहीं गहराया था। यह पूरी तीसरी दुनिया के देशों में अल्पविकसित पूंजीवाद का आर्थिक संकट है जो पूंजीवादी विकास के रास्ते तलाश रहा है। विकसित देशों के हित इसमें निहित हैं कि ये देश पिछड़े बने रहें, उनके लिए ये कच्चे माल और सस्ते श्रम के भण्डार हैं और ये उनकी उत्पादित वस्तुओं के लिए लाभकारी बाजार भी उपलब्ध करते हैं। इसके साथ इन देशों का अभिजात वर्ग पूरी तरह पश्चिमी रंग में रंगा है और भ्रष्ट है। विश्व बैंक के दबाव में उदारीकरण का नया अध्याय शुरू करके इन देशों का शासक-अभिजात वर्ग पश्चिमी विकसित देशों के लिए अपनी अर्थव्यवस्थाएं खोल रहा है। बदले में, उदारीकरण से समाज के आर्थिक अभिजात वर्ग को लाभ पहुंचेगा। इन नीतियों से जनता बुरी तरह पिसेगी। उदारीकरण से अन्तर्विरोधी स्थिति पैदा हो रही है। एक ओर यह अत्यधिक पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित, उपभोक्तावादी और धार्मिक विश्वासों व आस्थाओं से दूर लोग पैदा कर रहा है तो दूसरी ओर वह अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म का कुटिलतापूर्ण ढंग से इस्तेमाल कर रहा है। यह धार्मिक रूढ़िवाद और धार्मिक तत्ववाद को बढ़ावा दे रहा है। उग्रपन्थी युवा धार्मिक तत्ववाद को राजनीतिक शक्ति हासिल करने के लिए और समाज से नैतिक भ्रष्टाचार मिटाने के लिए प्रयोग करता है। ऐसी परिस्थितियों में कुछ राजनीतिक दल

भी अपने राजनीतिक अवसर बढ़ाने के लिए धार्मिक तत्ववाद का प्रयोग करते हैं। इस तरह, आधुनिक उदारीकृत और पाश्चात्य अर्थव्यवस्था विकासशील देशों में धार्मिक रूढ़िवाद, तत्ववाद और साम्प्रदायिकता के बीज बो रही है। शासक अभिजात वर्ग इस वातावरण को अपने राजनीतिक मन्तव्यों के लिए प्रयोग करते हैं और तत्ववाद और साम्प्रदायिकता का आधार मजबूत करते हैं। विश्व हिन्दू परिषद हिन्दू तत्ववाद का प्रसार करके भारतीय जनता पार्टी का आधार मजबूत कर रही है। केवल भारतीय जनता पार्टी ही नहीं बल्कि कांग्रेस जैसी अन्य शासक पार्टियां भी अपने राजनीतिक हितों के लिए रूढ़िवाद और साम्प्रदायिकता का सहारा ले रही हैं। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने हिन्दू वोटों को पाने के लिए मीनाक्षीपुरम में दलितों के इस्लाम धर्म में धर्मान्तरण का खुले तौर पर प्रयोग किया। बाबरी-मस्जिद गिराए जाने के समय जान-बूझकर निष्क्रिय रहकर और उसी स्थान पर पुनः बाबरी मस्जिद के निर्माण के अपने वादे से पीछे हटकर नरसिम्हा राव ने साम्प्रदायिकता के प्रति नरम रुख अपनाया। इस तरह सरकार तत्ववाद की चुनौती से मुकाबला करते हुए अपने किस्म के तत्ववाद को प्रायोजित करती है। समसामयिक भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता के एक समग्र सिद्धान्त निर्माण के लिए इन सभी कारकों को ध्यान में रखना जरूरी है।

विशिष्ट कारण

जैसा कि इस अध्याय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि साम्प्रदायिकता की वास्तविक प्रकृति को समझने के लिए सामान्य और विशिष्ट दोनों तरह के कारणों को लेना जरूरी है। साम्प्रदायिक दंगों के सूक्ष्म अध्ययन से ही इसके विशिष्ट कारणों पर प्रकाश डाला जा सकता है। अब हम विभिन्न दंगों के अध्ययनों के आधार पर विशिष्ट कारणों पर प्रकाश डालना चाहेंगे।

किसी कस्बे विशेष में साम्प्रदायिक तनाव कुछ स्थानीय मुद्दों को लेकर होता है। साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त पर विचार करने वाले अक्सर इन स्थानीय मुद्दों के महत्व को अनदेखा करते हैं, इन स्थानीय कारणों को हम विशिष्ट कारण कहते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा के कुछ मामलों में स्थानीय कारणों ने मुख्य भूमिका निभाई। स्वतन्त्रता-पूर्व समय में स्थानीय मुद्दे मस्जिद के सामने संगीत बजाने और गौ-हत्या तक सीमित थे, यद्यपि इन्होंने अभी भी अपनी वैधता नहीं खोई, लेकिन बदली सामाजिक-आर्थिक स्थिति में साम्प्रदायिक दृश्य पर नए कारण भी उभरे हैं। इनमें दो सम्प्रदायों के व्यापारी या छोटे निर्माताओं के बीच प्रतिद्वन्द्विता, तस्करी, अवैध हथियार, शराब या इसी तरह की अन्य समाज-विरोधी गतिविधियों में शामिल दो गिरोहों के बीच प्रतिस्पर्धा, स्थानीय औद्योगिक रईसों द्वारा कुछ साम्प्रदायिक मुद्दे उभारकर ट्रेड यूनियनों को कमजोर करने की योजना, स्थानिक संस्थाओं या

विधानसभाओं या संसदीय सीटों के चुनाव आदि मुख्य हैं।

साम्प्रदायिकता के सिद्धान्त को विकसित करने के लिए साम्प्रदायिक स्थिति की कुछ स्थानीय विशेषताओं को समझना जरूरी है। अधिकांश दंगे मध्यम आकार के कस्बों में (क्योंकि ऐसे शहरों में छोटे दुकानदार अक्सर रूढ़िवादी होते हैं और साम्प्रदायिक प्रभाव की ओर उनका झुकाव होता है) होते हैं। जिन कस्बों में मुस्लिम आबादी 20 से 50 प्रतिशत होती है वे अत्यधिक दंगा-संवेदन क्षेत्र हैं। जिन कस्बों में मुसलमान व्यापारी वर्ग के रूप में होता है और वह हिन्दू व्यापारी वर्ग के एकाधिकार को चुनौती देता है वे कस्बे साम्प्रदायिक दंगों की दृष्टि से अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। इसके साथ ही जिन कस्बों का साम्प्रदायिक तनाव का इतिहास है और भी अधिक संवेदनशील होते हैं।

इन बातों को ध्यान में रखकर आसानी से समझा जा सकता है कि मुरादाबाद, अलीगढ़, मेरठ, जमशेदपुर, बनारस, भिवंडी, मालेगांव, पुराना हैदराबाद शहर आदि में साम्प्रदायिक दंगों की घटनाएं बार-बार क्यों घटती हैं। हालांकि इसका यह अर्थ नहीं है कि बड़े नगरों या बम्बई जैसे महानगर दंगों के लिए संवेदनशील नहीं हैं। बाबरी-मस्जिद गिरने के बाद बम्बई और कलकत्ता में जो घटित हुआ, उसे हम सब जानते हैं। बम्बई में साम्प्रदायिक दंगे प्रचण्डता से फैले। वास्तव में बम्बई में 1984 में भी दंगे हुए थे। शिवसेना के उभार से बम्बई बेहद दंगा-संवेदन क्षेत्र बन गई है। हालांकि यहां हम मध्यम आकार के शहरों में साम्प्रदायिकता को हवा देने वाले कुछ कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

वोट आधारित लोकतन्त्र में काफी अनुपात में अल्पसंख्यक आबादी वाले शहरों में अभिजात वर्ग के बीच राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि दोनों सम्प्रदायों का अभिजात वर्ग साम्प्रदायिक पहचान के आधार पर मतदाताओं को रिझाते हैं और उनको अपने पीछे एकत्रित करने की कोशिश करते हैं। मेरठ में लगभग 40 प्रतिशत मुसलमान हैं। विधानसभा या संसदीय चुनाव में मुस्लिम उम्मीदवार के जीतने की सम्भावना अधिक होने से कांग्रेस भी साम्प्रदायिक आधार पर बंट गई। कांग्रेस के हिन्दू नेतृत्व में निराशा थी और उस पर भारतीय जनता पार्टी से मुक्त समझौता करने का कथित आरोप है। 1982 के मेरठ दंगों में मन्दिर-मजार विवाद केवल दो अभिजात वर्गों की राजनीतिक आकांक्षाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति थी। अपने चुनावी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए योजनाबद्ध प्रचार के जरिये हिन्दुओं की मानसिकता पर प्रभाव डालने की कोशिश रही।

बिहार शरीफ दंगा

बिहार शरीफ में 1981 के नरसंहार का मुख्य कारण राजनीतिक नहीं, बल्कि आर्थिक

था। बिहार के नालन्दा जिले में स्थित इस कस्बे में लगभग 35 प्रतिशत मुस्लिम आबादी है। यहां मुस्लिम कब्रिस्तान की कुछ जमीनें थी, इनमें से कुछ प्रयोग में नहीं आ रही थीं। इस जिले में आलू की खेती जोरों पर होती थी और काफी फायदेमन्द थी। कोल्ड स्टोरेज बनने में एकदम उछाल आया और परिणामस्वरूप जमीन की कीमतें आसमान छूने लगीं। कृषक जाति के यादवों की आंखें कब्रिस्तान की जमीन पर थीं, इस तरह यादवों और मुसलमानों में उत्पन्न विवाद साम्प्रदायिक हिंसा में बदल गया। इसके अलावा यहां कुछ नहीं था, इन दंगों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शह पर यादव मुख्य रूप से शामिल थे। कारण स्पष्ट है कि यादवों और मुसलमानों के बीच आर्थिक हितों की टकराहट थी, बाद में राजनीतिक कारण भी था। बिहार शरीफ बीड़ी-उत्पादन का मुख्य केन्द्र भी है और अधिकांश मुसलमान और निम्न जाति के हिन्दू बीड़ियां बनाने में शामिल हैं। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने बीड़ी बनाने वाले श्रमिकों को ट्रेड यूनियनों में संगठित कर लिया था। साम्प्रदायिक दंगों के विस्फोट के समय यहां भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का मजबूत आधार था, उस समय यहां के एम.एल.ए. और एम.पी. दोनों भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लिए ये दंगे वर्ग चेतना बदलने का अवसर भी थे। यहां तक कि दंगों के बाद गरीब हिन्दुओं और मुसलमानों ने वर्गीय हितों को भुलाकर अपने को साम्प्रदायिक आधार पर पहचानना शुरू कर दिया और अपने सम्प्रदाय के अभिजात वर्ग की चाल में फंसकर उनकी ओर उन्मुख हो गए।

1990 में मण्डल कमीशन लागू होने के बाद राजनीतिक स्थिति एकदम बदल गई। यादव पिछड़ी जाति है, मुसलमानों के साथ गठबन्धन में हैं और अब पूरे उत्साह से भारतीय जनता पार्टी की साम्प्रदायिक राजनीति का विरोध करते हैं।

गोधरा दंगा

गोधरा दंगों में विवाद मुख्य रूप से सिन्धियों और गांछी मुसलमानों के बीच था। गांछी मुसलमान परिश्रमी हैं और वे आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठ रहे थे, और पंचमहल जिले में परिवहन व्यापार में इन्होंने एकाधिकार प्राप्त कर लिया। सिन्धियों और गांछी मुसलमानों में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता थी। दोनों सम्प्रदायों के पास मकानों की बेहद कमी थी, गांछी मुसलमानों की तुलना में सिन्धी सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे और सिन्धियों की नजर उनकी सम्पत्ति पर थी। इसके साथ ही रेलवे-स्टेशन रोड के साथ-साथ खोखे (दुकान) बनाने को लेकर भी विवाद था। हिन्दुओं और मुसलमानों के दो विशिष्ट समुदायों से साम्प्रदायिक हिंसा की शुरुआत होती थी। लेकिन बाद के दंगों में गोधरा में हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदाय एक-दूसरे

पर टूट पड़े, उस समय दंगों का कारण रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद का राष्ट्रीय मुद्दा था।

उपरोक्त वर्णनों से देखा जा सकता है कि हिन्दू और मुसलमानों को एकरूप या अविभाजित समुदाय नहीं मानना चाहिए। हिन्दुओं और मुस्लिम सम्प्रदाय की विशिष्ट जातियां और बिरादरियां वास्तविक विवाद में शामिल होती हैं लेकिन अपने सहधर्मवादियों से काफी सहानुभूति प्राप्त कर लेती हैं। सांस्कृतिक और तकनीकी दृष्टि से किसी धार्मिक सम्प्रदाय को एकरूप समझना भी अत्यधिक भ्रामक धारणा है।

आर्थिक प्रतिस्पर्धा की परिणति साम्प्रदायिक तनाव में होती है और विशेषकर तब जबकि मुसलमान आर्थिक रूप में केन्द्रीय हैसियत ग्रहण करने लगें। यह बहुत से स्थानों पर अनुभवसिद्ध तथ्य है। बिहारशरीफ और गोधरा के दो उदाहरण पहले ही दिए जा चुके हैं। अलीगढ़ और मुरादाबाद के और अधिक उदाहरण दिए जा सकते हैं। अलीगढ़ में ताला-उद्योग और मुरादाबाद में तांबा-उद्योग की प्रतिस्पर्धा के कारण साम्प्रदायिक तनाव पैदा हुआ। इस आधार पर कई समाज-वैज्ञानिकों ने तर्क दिया कि आधुनिक भारत में साम्प्रदायिक दंगों ने संरचनात्मक हिंसा बनाई। यह सच है इसके बावजूद कि ऊपर दिए गए कारणों को बराबर या महत्वपूर्ण समझा जाए। इससे यह निश्चयवादी निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यदि मुसलमान आर्थिक दृष्टि से जरा-सा भी ऊपर उठे तो उन्हें इसकी कीमत अपने खून से देनी पड़ेगी। यह अपने आप में अतिवादी विचार होगा। यह इस ओर संकेत करता है कि पिछड़ी हुई पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में और भारत जैसे बहु-जाति, बहु-साम्प्रदायिक समाजार्थिक बनावट में सीधा वर्ग संघर्ष अन्तर्साम्प्रदायिक और अन्तर्जातीय संघर्ष में प्रत्यावर्तित होना संभव है, इसमें कभी वर्ग-संघर्ष हावी हो जाता है तो कभी जाति या साम्प्रदायिक कारक हावी होते हैं। असमान विकास और विभाजित समाज में, भारत जैसे देश की समाजार्थिक संरचना में वर्ग-संघर्ष के यूरोपीय मॉडल को विशुद्ध और सरलीकृत रूप में लागू नहीं किया जा सकता। वर्ग-संघर्ष के बारे में एक और बात कि भारतीय स्थिति की जटिलता और विशिष्टता जाति और साम्प्रदायिक विवाद में प्रतिबिम्बित होती है। इस सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता के खतरे को रोकने के लिए हमें दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों के बीच गठबन्धन के प्रयासों को देखना चाहिए। उत्तर प्रदेश में इस गठबन्धन ने भारतीय जनता पार्टी और इसकी साम्प्रदायिक राजनीति को हराया। हालांकि, इस गठबन्धन को साम्प्रदायिकता का स्थायी समाधान नहीं माना जा सकता क्योंकि इसके अपने गम्भीर अन्तर्विरोध हैं।

साम्प्रदायिकता के विशिष्ट कारणों में एक और महत्त्वपूर्ण कारण शक्तिशाली गिरोहों के रूप में संगठित असामाजिक तत्त्वों की इस सम्बन्ध में भूमिका को ध्यान

में रखना चाहिए। ये गिरोह अपराध जगत में अवैध शराब, विदेशी वस्तुओं की तस्करी, या अवैध हथियारों के गैर-कानूनी धन्धों में लिप्त हैं। एक ओर औद्योगीकरण व शहरीकरण के कारण तो दूसरी ओर हरित क्रान्ति के कारण अपराधी गिरोहों में वृद्धि हुई। शहरों में कम वेतन पर काम करने वाले श्रमिकों और गुण्डा तत्वों की बढ़ोत्तरी से सस्ती अवैध शराब की मांग में वृद्धि हुई, काले धन की बढ़ोत्तरी से तस्करी की वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई और गांव व शहरों में बेहतर मजदूरी के लिए बढ़ते आन्दोलनों को कुचलने के लिए अवैध हथियारों की मांग में वृद्धि हुई।

साम्प्रदायिक दंगों में इन अपराधिक गिरोहों की भूमिका में वृद्धि हुई है। बड़ौदा के दंगे इसका क्लासिक उदाहरण हैं। अवैध शराब के हिन्दू और मुसलमान दो गिरोहों के बीच प्रतिद्वन्द्विता सितम्बर-अक्तूबर 1982 में साम्प्रदायिक दंगों के रूप में फैली। शिव कहार के नेतृत्व वाले एक गिरोह पर सत्ताधारी कांग्रेस के एक वर्ग का वरद्हस्त था। कथित तौर पर सत्ताधारी पार्टी का यह वर्ग इन तत्त्वों को प्रोत्साहित कर रहा था। यह भी ध्यान देने की बात है कि आजकल चुनावों में जीत हासिल करने के लिए राजनीतिज्ञों को अपराधियों से धन और बाहुबल दोनों चाहिए। इसके बदले में वे इन गिरोहों को किसी भी कानूनी कार्रवाई से छूट दिलाते हैं। मुरादाबाद और जमशेदपुर के दंगों में भी समाज-विरोधी तत्वों का जुड़ाव जगजाहिर है। इन अनुभवसिद्ध आंकड़ों का यदि कोई संकेत है तो यही है कि भविष्य में यह खतरा और बढ़ेगा। सबसे खराब ये है कि अपराधी गिरोह बहुत तेजी से स्वतन्त्र सत्ता ग्रहण कर रहे हैं। राजनीतिज्ञों को उनकी उतनी ही जरूरत है जितनी कि उनको राजनीतिज्ञों की। इसे अपराध का राजनीतिकरण कहा जाए या राजनीति का अपराधीकरण। कई राज्यों के मुख्यमन्त्रियों के भी अपराधियों से सम्बन्ध होने के आरोप हैं। अपराध-जगत के कुछ शक्तिशाली तत्त्व राजनीति में भाग ले रहे हैं। कहने की जरूरत नहीं कि यह बहुत ही खतरनाक जुड़ाव है।

समसामयिक भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता के समग्र व प्रामाणिक सिद्धान्त निर्माण के लिए सामान्य और विशिष्ट कारकों को ध्यान में रखना जरूरी है। सामान्य कारक राष्ट्रीय स्तर पर हैं जैसे औद्योगीकरण और आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन और केन्द्र व राज्यों में शासक वर्गीय पार्टियों की नीतियों, तथाकथित धर्मनिरपेक्ष पार्टियों द्वारा गठबन्धन तोड़ने, चुनावों में जीत सुनिश्चित करने के लिए जाति और साम्प्रदायिक समूहों को साथ मिलाना, अपनी सत्ता के लिए शासक वर्गीय पार्टियों द्वारा धार्मिक तत्त्ववाद को जानबूझकर प्रोत्साहित करना आदि। इस सन्दर्भ में भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस द्वारा रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद का कुटिल शोषण सबसे बुरा

उदाहरण है। समसामयिक भारत में राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धर्म के प्रयोग का यह सबसे बुरा उदाहरण है। स्वतन्त्रता के बाद राजनीतिक शक्ति हथियाने के लिए इतने बड़े पैमाने पर पहले कभी धर्म का इस्तेमाल नहीं हुआ था। इस तरह अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाकर, जाति और साम्प्रदायिक पहचानों को प्रोत्साहन देने के लिए समस्त शासक वर्ग उत्तरदायी है। इसके लिए सिर्फ साम्प्रदायिक पार्टियों और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जमात-ए-इस्लामी आदि साम्प्रदायिक समूहों को ही जिम्मेवार नहीं माना जा सकता।

विशिष्ट कारकों या स्थानीय कारकों में मुस्लिम आबादी का अनुपात, दो सम्प्रदाय के व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा का स्तर, क्षेत्र में साम्प्रदायिक दंगों का इतिहास, स्थानीय संस्थाओं की चुनावी राजनीति, समाज-विरोधी तत्वों की भूमिका, स्थानीय राजनीतिक गठबन्धन आदि शामिल हैं। किसी भी साम्प्रदायिक दंगे में सामान्य और विशिष्ट दोनों कारक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, लेकिन इसमें विभिन्न स्थानों पर मात्रा की भिन्नता होती है। कुछ चरम स्थितियों में केवल विशिष्ट या स्थानीय तो कुछ में केवल सामान्य या राष्ट्रीय कारक मुख्य कारण बन जाते हैं। उदाहरण के लिए गोधरा और बड़ौदा के दंगों में सिर्फ स्थानीय या विशिष्ट कारक महत्त्वपूर्ण थे, राष्ट्रीय या सामान्य कारक गायब थे। दूसरी ओर 1969 के अहमदाबाद दंगों के काफी हद तक सामान्य कारक जिम्मेवार थे। सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी में विभाजन से, बैंकों के राष्ट्रीयकरण में निहित वामपन्थ की ओर विचारधारात्मक झुकाव से जनसंघ जैसी घोर दक्षिणपन्थी विपक्षी पार्टियों ने मुस्लिम उग्रता को जोरशोर से उठाया और मुसलमानों की 'राष्ट्रीय मुख्यधारा' में विलय से इन्कारी पर इस हद तक गई कि 'भारतीय मुसलमानों का भारतीयकरण' करने का प्रस्ताव पारित किया। उस समय कांग्रेस (o) ने जनसंघ से गठबन्धन किया। जगन्नाथ मन्दिर के पास कुछ अवांछनीय घटनाओं का लाभ उठाकर जनसंघ ने अहमदाबाद में बड़े पैमाने पर दंगे करवाए। एक ओर इसका मकसद श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार को अस्थिर करना था तो दूसरी ओर वाम-आधारित आर्थिक नीतियों की ओर से जनता का ध्यान हटाकर साम्प्रदायिकता की ओर खींचना था। अस्सी के दशक के अन्त व नब्बे के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद एक अन्य विशद कारक था जिससे साम्प्रदायिक आधार पर बड़े पैमाने पर खून-खराबा हुआ। इन दोनों अवसरों पर साम्प्रदायिकता देश में चर्चा का मुख्य विषय बनी, आम आदमी की दूसरी तमाम महत्त्वपूर्ण समस्याएं गौण हो गईं।

निष्कर्षतः जोर देकर कहना जरूरी है कि इस देश में वर्गीय-पहचान की अपेक्षा जातिगत और साम्प्रदायिक पहचान भावुकतापूर्ण ढंग से मजबूत है और शासक वर्ग व अन्य राजनीतिज्ञ इसका पूरी तरह दोहन करते हैं। आर्थिक विकास

की धीमी प्रक्रिया के कारण संघर्ष तीव्र होना अनिवार्य है लेकिन भारत का शासक वर्ग, गरीबी, बेरोजगारी, महंगाई आदि आर्थिक समस्याओं के संघर्ष को आसानी से जाति और साम्प्रदायिक समस्याओं में तब्दील कर सकते हैं। यदि हम साम्प्रदायिकता का वैज्ञानिक सिद्धान्त निर्माण करना चाहते हैं तो जल्दी से जल्दी इस सच्चाई को जानना अच्छा रहेगा। आगामी वर्षों में भी जाति और साम्प्रदायिक पहचानें हावी रहेंगी। साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा का समग्र सिद्धान्त निर्माण करते हुए इन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता।

अध्याय 6

साम्प्रदायिक हिंसा और पुलिस की भूमिका

साम्प्रदायिक दंगों में पुलिस की भूमिका हमेशा विवाद का विषय रही है। दंगा-पीड़ित शिकायत करते हैं कि : पुलिस 1. उन्हें बचाने नहीं आई, 2. स्वयं मारने में शामिल थी, 3. लूटपाट और आगजनी करने वाली भीड़ का नेतृत्व कर रही थी, 4. निर्दोष लोगों को गिरफ्तार किया और जेल में डाल दिया और उन पर झूठे मुकदमे बनाए, 5. एक समुदाय के लोगों को कर्फ्यू के दौरान छूट न देकर और दूसरे सम्प्रदाय को बाहर निकलने की छूट देकर अपराधियों को वह सब करने दिया जो वे करना चाहते थे।

हरेक साम्प्रदायिक दंगे के बाद पुलिस पर ये एवं कुछ अन्य गम्भीर आरोप लगते रहे हैं। दिसम्बर '92 व जनवरी '93 के बम्बई दंगों में छोटे व बड़े दोनों स्तरों के पुलिस अधिकारियों पर गम्भीर आरोप लगे। हम स्वतन्त्रता के बाद के कुछ बड़े साम्प्रदायिक दंगों के कुछ मामलों की जांच करेंगे और दंगों के दौरान पुलिस की भूमिका पर प्रकाश डालेंगे।

यह ध्यान रखना चाहिए कि कानून और व्यवस्था लागू करने वाला समूचा तन्त्र अस्वागत योग्य नहीं हो सकता और न ही होना चाहिए। समूचे कानून और व्यवस्था तन्त्र से हमारा अर्थ उन सब तत्वों से है जो शान्ति बहाल करने में शामिल हैं; राजनीतिक नेता, नौकरशाह, प्रशासन तन्त्र तथा वे विभिन्न अंग जैसे स्थानीय पुलिस, सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल और सेना आदि जो सीधे व्यवस्था बहाल करते हैं। राजनीतिज्ञ, प्रशासन तन्त्र, पुलिस, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सेना सभी एक समय में या अलग-अलग समय में विभिन्न भूमिका अदा करते हैं। साम्प्रदायिक दंगों में कानून और व्यवस्था के समूचे तन्त्र की भूमिका का मूल्यांकन करने के लिए अधिक तथ्यपूर्ण होना उपयोगी होगा। साम्प्रदायिक दंगों के दौरान कानून और व्यवस्था के विभिन्न अंगों पर हम विस्तार से प्रकाश डालने की कोशिश करेंगे। यह ध्यान में रखने की जरूरत है कि इन सब तत्वों में पुलिस की भूमिका सबसे अधिक घिनौनी लगती है क्योंकि दंगा-पीड़ितों के सीधे सम्पर्क में यही घटक आता है, चूंकि आम लोगों का वास्ता पुलिस से सबसे अधिक

पड़ता है इसलिए वे सबसे अधिक पुलिस की ही निन्दा करते हैं। दंगों का नियन्त्रण करने में कानून और व्यवस्था तन्त्र पर चर्चा करने से पहले दंगों के कुछ सामान्य पहलुओं पर चर्चा करना उपयोगी होगा।

आमतौर से दो सम्प्रदायों के बीच हिंसा के स्वतःस्फूर्त विस्फोट को दंगा माना जाता है। हालांकि ऐसा बहुत कम होता होगा। आजादी पूर्व के समय में कुछ प्रमुख दंगे स्वतःस्फूर्त थे। उस समय अधिकतर दंगे और अब लगभग सभी दंगे एक सुविचारित योजना के तहत करवाए जाते हैं। दंगों में यह अन्तर करना बेहद जरूरी है क्योंकि कानून और व्यवस्था तन्त्र की भूमिका इस पर निर्भर करती है कि दंगा योजनाबद्ध है या स्वतःस्फूर्त विस्फोट। यदि यह स्वतःस्फूर्त विस्फोट है तो इसे नियन्त्रित करना आसान है, लेकिन यदि यह सुविचारित योजना के तहत है तो इसे नियन्त्रित करने के लिए पुलिस को विशेष चरित्र और दृढ़ निश्चय की जरूरत है।

आजकल के अधिकांश दंगे पूर्व-योजना के तहत हैं। इनकी योजना अक्सर राजनीतिक पार्टियां या अन्य और यहां तक कि समाज-विरोधी तत्व भी खुद के या अपने राजनीतिक रहनुमाओं के स्वार्थों की पूर्ति के लिए बनाते हैं। जब कोई दंगा पूर्व-योजना के तहत होता है, तो इसके लिए एक 'उचित वातावरण' निर्माण करने की आवश्यकता होती है, साम्प्रदायिक तापमान को बढ़ाने के लिए अत्याचारों की कुछ अफवाहें फैलाई जाती हैं। ये साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने में और इसका औचित्य साबित करने में मददगार साबित होती हैं। दूसरे शब्दों में, हिंसा उस सम्प्रदाय के लोगों की नजरों में वैधता प्राप्त कर लेती है जो दूसरे के प्रति उग्रता प्रदर्शित करता है। ऐसी स्थिति में हिंसा को काबू करना बहुत कठिन हो जाता है जबकि यह लोगों से वैधता प्राप्त कर ले और लोगों को हिंसा के लिए प्रेरित करे। यह और भी कठिन तब होता है जब लोगों की भावनाओं में गहरे में दबा हुआ कोई धार्मिक या ऐतिहासिक मुद्दा हो। ऐसे मामलों में वे व्यक्ति भी हिंसा में शामिल हो जाते हैं जिनका अन्यथा कोई अपराधिक रिकार्ड नहीं होता क्योंकि उनको दूसरे सम्प्रदाय के प्रति हिंसा न्यायोचित लगती है। 1970 के भिवंडी दंगों पर पुलिस उच्चाधिकारी सुरेश खोपाड़े का अध्ययन स्पष्ट दर्शाता है कि हिंसा में शामिल लोगों में 75 प्रतिशत ऐसे थे जिनका पहले का कोई साम्प्रदायिक रिकार्ड नहीं था। इन दंगों का प्रत्यक्ष कारण शिवाजी का जन्मोत्सव था और जुलूस का रास्ता अत्यधिक सम्वेदनशील था। ऐसे में स्थिति को नियन्त्रित करना कठिन हो गया क्योंकि इससे कानून व व्यवस्था के अलावा राजनीतिक समस्याएं भी पैदा हो गईं।

राजनीतिक स्वार्थों के लिए दंगों की योजनाएं बनाई जाती हैं इसलिए कोई न कोई राजनीतिक पार्टी इनमें कमोबेश अवश्य शामिल होती है। अपने राजनीतिक

स्वार्थों के लिए दो राजनीतिक पार्टियां मिलकर, या सत्ताधारी पार्टी का एक गुट दूसरी पार्टी से मिलकर साम्प्रदायिक हिंसा करवाते हैं। ऐसे दंगों में प्रशासन और पुलिस की भूमिका जटिल हो जाती है। आमतौर पर पुलिस अधिकारी अपने राजनीतिक रहनुमाओं के निर्देशों को अनदेखा नहीं कर सकते। यह भी हमेशा सच नहीं होता कि पुलिस को स्थिति से निपटने के लिए पूरी छूट है। यदि राजनीतिज्ञ दंगा रोकना नहीं चाहते, तो इनको कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। यहां हम 1984 के बम्बई-भिवंडी दंगों का उदाहरण देना चाहेंगे। कहा जाता है कि ये दंगे शिवसेना प्रमुख बाल ठाकरे और तत्कालीन मुख्यमन्त्री वसन्त दादा पाटिल के बीच गुप्त समझौते से हुए। पाटिल कांग्रेस के असन्तुष्टों के कारण गहरी समस्या में थे और शिवसेना विधायकों की सहायता के बिना राज्यसभा के लिए उम्मीदवार नहीं जिता सकते थे, दूसरी ओर बाल ठाकरे अपने भविष्य को चमकाने के लिए हिन्दुत्व मंच बनाने में व्यस्त थे। इस तरह कथित रूप से शिवसेना गुट और पाटिल गुट अपने-अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए एक साथ आए। शिवसेना ने दंगों के लिए 'अनुकूल वातावरण' पैदा किया। मई, 1984 में दंगे भड़के और बम्बई के अन्य क्षेत्रों में फैल गए। पुलिस कमिश्नर रिबैरो अपनी ईमानदारी और कार्यकुशलता के लिए ख्यात थे, फिर भी दंगों को नियन्त्रित नहीं कर सके, क्योंकि उनको पूरी छूट नहीं थी। शिव सैनिक चारों तरफ तलवारें लेकर खुले घूम रहे थे और अल्पसंख्यकों की हत्याएं कर रहे थे और धमका रहे थे। लेकिन शिवसेना शाखा प्रमुखों को छुआ तक नहीं गया। पर जुम्मात-अल-वदा यानि रमजान के पवित्र महीने के अन्तिम शुक्रवार को जब दंगे दोबारा भड़कने लगे तो मुख्यमन्त्री के लिए समस्या खड़ी हो गई और रिबैरो को पूरी छूट दे दी गई। रिबैरो ने आदेश दिए कि जिन शाखा प्रमुखों के क्षेत्र में साम्प्रदायिक दंगे भड़कें उन्हें तुरन्त गिरफ्तार किया जाए और बम्बई के सभी पुलिस थानों में परिपत्र भेजा कि जिस इन्सपेक्टर के क्षेत्र में साम्प्रदायिक हिंसा फैलेगी उसे निलम्बित कर दिया जाएगा। ऐसे सख्त कदम उठाने से कुछ अनहोनी नहीं घटी और उन प्राणघातक दिनों में शहर बिल्कुल ठीक रहा। यदि राजनीतिक रहनुमाओं का सहयोग हो तो पुलिस बेहतर ढंग से काम कर सकती है।

इस तरह राजनीतिज्ञ, प्रशासक और पुलिस सभी साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने में अपनी भूमिका निभाते हैं, यदि सत्ताधारी राजनीतिज्ञ हिंसा रोकने को संकल्पबद्ध हैं तो प्रशासक और पुलिस-तन्त्र भी अधिक निष्ठा और कुशलता से काम कर सकता है। यहां पश्चिम बंगाल सरकार का उदाहरण देना चाहेंगे। वाममोर्चे की सरकार साम्प्रदायिक समस्या को समाप्त करना चाहती थी इसलिए उसने पुलिस प्रशासन को साम्प्रदायिक हिंसा न फैलने देने के सख्त निर्देश दिए और कहा कि यदि किन्हीं परिस्थितियों में ऐसी घटना घटती है तो उसे दृढ़ता से नियन्त्रित करें,

इसमें किसी तरह की ढील पर सजा मिलेगी। सिर्फ यही नहीं, पश्चिम बंगाल में वामपन्थी पार्टियाँ साम्प्रदायिक दुष्प्रचार का मुकाबला करने के लिए लगातार काम करती हैं, यदि कहीं साम्प्रदायिक हिंसा फैलने का खतरा होता है तो साम्प्रदायिक सद्‌भाव के लिए रैली करती हैं। कोई हैरानी की बात नहीं, जब दिसम्बर, 1992 में बम्बई साम्प्रदायिक दंगों की आग में जल रहा था तो कलकत्ता में हिंसा को बहुत तेजी से नियन्त्रण में कर लिया गया था। इसके लिए उठाए कदमों का मुख्यमन्त्री ज्योति बसु ने व्यक्तिगत रूप से निरीक्षण किया। इसी तरह 1992 के प्रारम्भ में जब सीतामढ़ी में हिंसा फूट पड़ी तो बिहार के मुख्यमन्त्री लालू प्रसाद यादव तुरन्त वहां पहुंचे और कमान अपने हाथ में ले ली और स्थिति को काबू में कर लिया, यद्यपि तब तक काफी लोग मारे जा चुके थे। यदि मुख्यमन्त्री स्थिति अपने नियन्त्रण में न लेते तो और अधिक नुकसान होता। परन्तु इसी तरह की स्थितियों में दूसरे स्थानों पर बिल्कुल इसके विपरीत हुआ। 1987 के मेरठ दंगों का उदाहरण लिया जा सकता है। पुलिस दंगों को नियन्त्रित करने में ही असफल नहीं हुई बल्कि पी.ए.सी. ने हाशिमपुरा में 34 मुस्लिम युवकों को उनके घर से पकड़ा, उनको ट्रक में डालकर नहर पर ले गए, उनको गोली मारकर उनके शवों को नहर में फेंक दिया। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री वीर बहादुर सिंह मेरठ दो दिनों तक रुके, लेकिन दंगे नियन्त्रित करने का निश्चय नहीं दिखाया, दूसरी ओर इन दो दिनों में दंगाइयों ने अपनी गतिविधियां तेज कर दीं और मुख्यमन्त्री के मेरठ छोड़ने के सिर्फ एक दिन बाद ही हाशिमपुरा की घटना घट गई।

बिहार के तत्कालीन मुख्यमन्त्री बिन्देश्वरी दुबे ने भागलपुर दंगों को नियन्त्रित करने में कोई राजनीतिक इच्छा नहीं दिखाई और इन दंगों ने विनाशकारी काम किया। पुलिस खुलेआम अपराधियों से मिली हुई थी। इसी तरह दिसम्बर '92 जनवरी '93 में जब बम्बई जल रही थी तो तत्कालीन मुख्यमन्त्री सुधाकर राव नाइक ने पूरी तरह असहाय भाव प्रदर्शित किया। स्वयं पुलिस ने लगभग 200 लोगों को मारा और जनवरी दौर के दंगों के दौरान शिवसेना के साथ मिल गई। और भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं जो स्पष्ट दर्शाते हैं कि साम्प्रदायिक हिंसा को नियन्त्रित करने की राजनीतिक इच्छाशक्ति की उतनी ही जरूरत है जितनी कि प्रशासनिक निपुणता और पुलिस का संकल्प जरूरी है। राजनीतिक सहायता बिना प्रशासन तन्त्र और पुलिस दोनों का मनोबल गिर जाता है और जान-माल के रूप में दंगों में अधिक नुकसान उठाना पड़ता है। यदि सुधाकर राव नाइक भी बम्बई दंगों में वैसा ही संकल्प दिखाते जैसा कि पश्चिम बंगाल में ज्योति बसु ने दिखाया तो शहर को ऐसी अभूतपूर्व यातना से न गुजरना पड़ता।

कानून-व्यवस्था तन्त्र की भूमिका

राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका पर, विशेषकर सत्ताधारी राजनीतिक नेतृत्व पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। हम नौकरशाही की भूमिका पर भी कुछ प्रकाश डालना जरूरी समझते हैं। जिलाधीश भी दंगों को काबू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसके लिए जिलाधीश और पुलिस अधीक्षक के बीच इकट्ठे मिलकर काम करने की भावना जरूरी है। लेकिन जिलाधीश निश्चित रूप से उच्च स्थिति में होता है। विभिन्न साम्प्रदायिक दंगों की जांच करते हुए यह महसूस किया गया कि जिलाधीश उल्लेखनीय भूमिका अदा कर सकता है, लेकिन कोई बिरला जिलाधीश ही अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करने की हिम्मत करता है और स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। आमतौर पर वह अपने राजनीतिक रहनुमाओं की ओर देखता है और उनकी इच्छानुसार व्यवहार करता है, ऐसी स्थिति से निपटने वाले कानूनों-नियमों या अपने संवैधानिक कर्तव्य के अनुसार नहीं और यदि वह ऐसा कर भी दे तो तुरन्त उसका तबादला कर दिया जाएगा। इसे व्याख्यायित करने की आवश्यकता नहीं कि अधिकांश नौकरशाह महत्वपूर्ण पद पाने के लिए मुख्यमन्त्री की ओर देखते हैं और आमतौर पर कोई जिलाधीश अपने राजनीतिक रहनुमाओं को नाराज नहीं करना चाहेगा। सीतामढ़ी के लोगों ने वहां के जिलाधीश पर ढील बरतने का आरोप लगाया। यदि वह साम्प्रदायिक दंगों के स्थान पर समय से पहुंच जाता तो काफी नुकसान को रोका जा सकता था, लेकिन उसने साम्प्रदायिक हिंसा भड़कने के बाद भी अपने को दूर रखा। सीतामढ़ी के पुलिस अधीक्षक पर भी साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने वाले एक अखाड़े का संरक्षक होने के आरोप लगे। 1987 के मेरठ दंगों में वहां के जिलाधीश की भूमिका भी सन्तोषजनक नहीं थी। अधिकांश दंगा पीड़ितों ने आरोप लगाया कि जिलाधीश ने दंगा रोकने के लिए प्रभावी कदम नहीं उठाए। दूसरी ओर 1989 के भागलपुर के जिलाधीश की ऐसी कोई शिकायत नहीं है। यह भी देखने में आया है कि यदि जिलाधीश ईमानदार और कार्य-कुशल है और दंगों को रोकने के प्रभावी कदम उठाता है तो वहां के साम्प्रदायिक तत्व गृहमन्त्री या मुख्यमन्त्री पर उसके तबादले को लेकर दबाव डालते हैं। यहां तक कि कई बार गैर-साम्प्रदायिक अधिकारी भी अपने को गहरे पानी में पाता है।

गुप्तचर एजेन्सियों की भूमिका पर भी विचार करने की जरूरत है। साम्प्रदायिक दंगों की जांच-पड़ताल के दौरान यह कहते सुना जाता है कि सूचना-तन्त्र ने उचित ढंग से सूचनाएं नहीं दीं और इस कारण सही समय पर सही कदम नहीं उठाए जा सके, लेकिन सूचना तन्त्र की शिकायत है कि उन्होंने सम्बन्धित अधिकारियों को सही सूचना सही समय पर दे दी थी, लेकिन तब भी समय पर कदम नहीं उठाए गए। उदाहरण के लिए भागलपुर दंगों में गुप्तचर एजेन्सियों ने अपनी

भूमिका सही ढंग से निभाई लेकिन प्रशासन ने सूचनाओं के आधार पर कदम नहीं उठाए। सीतामढ़ी के मामले में भी ऐसा ही था। प्रशासन ने लापरवाही बरती। 1970 के भिवंडी दंगों में भी प्रशासन शिथिल रहा। मदान आयोग ने भी इस बारे में टिप्पणी की है।

सूचनाएं एकत्रित करना कोई आसान काम नहीं है, सूचनाएं प्राप्त करना बहुत कठिन काम है। इस कठिन काम के लिए कुशल और प्रेरित स्टॉफ चाहिए और गुप्तचर-विभाग के पास ऐसा स्टॉफ नहीं है। सब जानते हैं कि जिसको अन्य कहीं पद नहीं मिलता तो उसे इस विभाग में भेजा जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इसे सजा के रूप में समझा जाता है। इसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सूचना तन्त्र से जुड़े लोगों की धारणाएं भी सूचना एकत्रित करने के कार्य को प्रभावित करती हैं, जिस तरह प्रशासकों, पुलिस के सिपाहियों और अन्यों को उनकी धारणाएं प्रभावित करती हैं। जैसे आमतौर पर मुसलमानों को उग्र समझा जाता है, सूचना तन्त्र से जुड़े लोग समझते हैं कि मुसलमान दंगों की तैयारियां कर रहे हैं। उनको अल्पसंख्यकों की रक्षात्मक तैयारियां आक्रामक नजर आती हैं और बहुसंख्यक सम्प्रदाय की आक्रामक तैयारियां रक्षात्मक। यहां मैं यह नहीं कह रहा कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय कभी आक्रामक मुद्रा अख्तियार नहीं करता। यहां हम सिर्फ सूचना-एकत्रित करने वालों की धारणाओं की बात कर रहे हैं। सूचनाओं को अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक कार्य बनाने के लिए सूचना एकत्रित करने वाले अधिकारियों को पुनः प्रशिक्षित करने की जरूरत है।

साम्प्रदायिक दंगों में पुलिस की भूमिका

हम प्रमुख साम्प्रदायिक दंगों में पुलिस की भूमिका पर कुछ प्रकाश डालेंगे। स्थानीय पुलिस के अलावा हमारे पास पी.ए.सी., एस.आर.पी., केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल, सीमा सुरक्षा बल और सेना है। उत्तरप्रदेश में स्थानीय पुलिस, स्पेशल रिजर्व पुलिस और प्रोविन्सियल आर्म्ड कांन्सटेब्लरी तथा बिहार में बिहार मिलिटरी पुलिस अल्पसंख्यकों में बदनाम हैं। इन बलों ने हिंसक व्यवहार किया है और यहां तक कि दंगा रोकने के नाम पर काफी निर्दोष लोगों को मारा है। 1987 के मेरठ दंगे बहुत बदनाम हैं। पी.ए.सी. के सिपाहियों ने हाशिमपुरा से 34 युवाओं को घरों से उठाकर नहर के किनारे ले जाकर मार दिया। इसके अतिरिक्त मेरठ शहर से छः किलोमीटर दूर मलयाना गांव में जुम्मे की नमाज के बाद बाहर आ रहे 67 मुसलमानों को मार दिया गया। इस जघन्य अपराध के लिए किसी को सजा नहीं दी गई। गोलीबारी के आदेश देने वाले त्रिपाठी को कुछ समय के लिए निलम्बित किया गया, लेकिन जल्दी ही बहाल कर दिया। अभी तक इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला कि उसने इतने निर्दोष लोगों को क्यों मारा था और फिर भी

वह छूट कैसे गया। लॉस एंजेल्स में एक श्वेत सिपाही ने किसी काले व्यक्ति को पीटा, इससे हाहाकार मच गया और लॉस एंजेल्स में हिंसा फैल गई। दोषी पुलिस अधिकारी को गिरफ्तार किया गया लेकिन न्यायधीशों ने उसे छोड़ दिया तो इसका जबरदस्त विरोध हुआ और उसे फिर पकड़ा गया और सजा दी गई। भारत में तो ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता। दंगों में सैकड़ों लोग मारे गए और अभी तक किसी दोषी अधिकारी के खिलाफ कार्रवाई नहीं हुई। यह भयानक त्रासदी है। इसी तरह 1980 के मुरादाबाद दंगों में पी. ए. सी. ने ईदगाह मैदान में निर्दयतापूर्वक गोलियां चलाईं, जिसमें सैंकड़ों लोग मारे गए। इन जघन्य अपराधों के लिए किसी पुलिस अधिकारी को सजा नहीं दी गई। ऐसे रवैये से पी. ए. सी. का भविष्य में दंगों में अधिक निर्दयतापूर्वक कार्य करने का साहस बढ़ना स्वाभाविक ही था।

बिहार मिलीटरी पुलिस भी अपने व्यवहार के लिए इतनी ही बदनाम है। 1989 के भागलपुर दंगों में इसका व्यवहार भी उत्तर प्रदेश की पी. ए. सी. से अधिक शर्मनाक था। यह लूटपाट फोर्स बन गई थी। भागलपुर के निकट चन्देरी गांव में लगभग 100 आदमियों ने एक घर में शरण ली हुई थी, सेना ने इनको सुरक्षा दी। मेजर विर्क के पास यहां की जिम्मेवारी थी उन्हें कहीं दूसरी जगह जाना पड़ा तो उन्होंने इनकी सुरक्षा का जिम्मा बिहार मिलटरी पुलिस के आदमियों को लेने को कहा। बिहार मिलिटरी पुलिस ने लोगों को अपने घर सुरक्षित पहुंचाने के बहाने बाहर निकाल लिया और उनको हत्यारों को सौंप दिया। सभी प्रमुख अखबारों ने इस घटना का ब्यौरा दिया। यदि मेजर विर्क चौकसी न दिखाते तो सारी घटना बिना किसी सूचना के ही दब जाती। उन्होंने झील के बाहर निकली हुई जूते समेत मनुष्य की टांग देखी। उन्होंने इसे बाहर खींचा तो यह एक औरत का शरीर था जिसे हमला करके व मरा समझकर झील में फेंक दिया गया था। सौभाग्य से वह जिन्दा थी और उसने आपबीती बताई। इसी तरह लोगांन गांव में मुस्लिम आबादी के लगभग 100 लोगों को मारकर गोभी के खेत में दफना दिया गया। इसका पता एक ग्रामीण को चला। भागलपुर के दंगों में एक हजार लोग मारे गए। वहां भी पुलिस ने खुलेआम दंगाइयों का साथ दिया।

1992 के बड़ौदा दंगों में भी पुलिस का व्यवहार अपेक्षा के विपरीत था। शिव कहार और मुसलमान अवैध शराब विक्रेता इस दंगे के मुख्य अपराधी थे, कथित तौर पर शिव कहार ने एक पुलिस अधिकारी को रिश्वत दी और पुलिस ने इन दंगों में सरेआम शिव कहार का पक्ष लिया और काफी निर्दोष मुसलमानों को जान से हाथ धोना पड़ा और सम्पत्ति का नुकसान उठाया। बाद में बड़ौदा के सभी दंगों में पुलिस की कोई बेहतर भूमिका नहीं रही। यहां तक कि अन्यथा शान्तिपूर्ण वोहरा, ख्वाजा और मेमन समुदायों को भी अत्यधिक नुकसान हुआ।

अहमदाबाद साम्प्रदायिक दंगों के मामले में अत्यधिक सम्वेदनशील बन गया

है। इसके कई कारण हैं, लेकिन हम यहां उन पर कोई टिप्पणी नहीं करेंगे। हमारा मुख्य उद्देश्य कानून लागू करने वाले तन्त्र की भूमिका का मूल्यांकन करना है। स्वतन्त्रता के बाद 1969 में अहमदाबाद का दंगा सबसे बड़ा और सबसे अधिक दुखदायी दंगा था। इस दंगे ने पूरे देश को झकझोर दिया। इस दंगे में एक हजार से भी अधिक लोग मारे गए थे। सम्पत्ति का नुकसान और भी विनाशकारी था। हमारी जानकारी में इस दंगे में मुसलमानों के घरों और मतदाताओं की पहचान के लिए योजनाबद्ध तरीके से मतदाता सूची का प्रयोग किया गया। पुलिस से मिलीभगत बिना जान और माल का इतना अधिक नुकसान सम्भव ही नहीं था। तत्कालीन गुजरात सरकार ने साम्प्रदायिक हिंसा के कारणों की पड़ताल के लिए जस्टिस जगमोहन रेड्डी आयोग गठित किया, पुलिस की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए रिपोर्ट कहती है : "हमने पहले ही किसी अध्याय में हिन्दू अधिकारियों के विरुद्ध जांच करते हुए संकेत किया है कि क्योंकि वे हिन्दू थे इसलिए उन्होंने मुस्लिम विरोधी रूख अपनाया, गैर-हिन्दू और गैर-मुस्लिम अधिकारियों ने संकेत किया कि क्योंकि वे सरकार को खुश करना चाहते थे इसलिए उन्होंने मुस्लिम विरोधी रूख अपनाया। हमारे विचार में मुसलमानों के लिए यह अस्वाभाविक नहीं था, जिन्होंने जान-माल का इतना नुकसान उठाया और अधिकतर राहत और समय पर सुरक्षा के मामले में असहाय पाया, जो कुछ किया गया या जो कुछ नहीं किया गया उसको इन्होंने सन्देह, शिकायत और निराशा से देखा क्योंकि इससे जुड़े अधिकतर अधिकारी और लोग बहुसंख्यक हिन्दू थे और पक्षपाती थे। इसी तरह मुस्लिम अधिकारियों को, विशेषकर इस्माइल-ए-शेख द्वारा 'हुलाद पीड़ित सहायता समिति' की ऐसे मामले में मदद करने की कोशिश कर रहा था जिसमें मुसलमान शामिल था इस तथ्य को छुपाकर या हिन्दू शामिल थे इसे उजागर करके वह मुसलमानों का पक्ष ले रहा था। इन आरोपों के औचित्य को जांचना जरूरी है क्योंकि यदि अल्पसंख्यकों की भावनाएं सही हैं तो सरकार हर समुदाय से सम्बन्धित सरकार लोगों की जान की रक्षा का मूलभूत कर्तव्य निभाने में असफल रही है जैसा कि अनुशासित बल और सरकार से अपेक्षित था। इससे आगे रिपोर्ट कहती है कि यदि इन आरोपों और वक्तव्यों में कोई औचित्य नहीं है तो यह भी उतना ही जरूरी है कि नागरिकों का पुलिस बल में विश्वास बने और विशेषकर अल्पसंख्यकों में (ऐसा विश्वास) पैदा हो। रिपोर्ट यह भी कहती है, "हमने मुस्लिम संगठनों द्वारा लगाए गए आरोपों की जांच करना जरूरी समझा कि पुलिस चौकी और पुलिस थानों के नजदीक स्थित काफी संख्या में मुस्लिम पूजा-स्थलों को पुलिस अधिकारियों और सिपाहियों ने नुकसान पहुंचाया। पुलिस अधिकारियों ने स्पष्टीकरण दिया कि उस समय पुलिस थानों और चौकी में पर्याप्त संख्या में पुलिस नहीं थी या वे कहीं दूसरी जगह व्यस्त थे, लेकिन न तो इसका सन्तोषजनक स्पष्टीकरण था और

न ही इसके विरुद्ध ऐसा कोई प्रमाण था कि इन्हें जानबूझकर गिराने की अनुमति नहीं दी गई थी। हालांकि हमें लगा कि समस्त पुलिस बल साम्प्रदायिकता में शामिल नहीं था, कुछ घटनाएं थीं जिनमें पुलिस जगन्नाथ मन्दिर की घटना से प्रभावित थी। हमने अन्य अध्याय 'साम्प्रदायिक माहौल' में कहा है कि साम्प्रदायिकता का विषाणु ऐसा घातक है कि समाज का हिस्सा होने के कारण पुलिस भी इससे नहीं बच सकती, जबकि हमारे विचार से उनका प्रशिक्षण, अनुशासन और परम्पराएं हैं कि वे शान्ति और सद्भाव के रक्षक हैं, वे ऐसी बुराई से दूर रहने चाहिए। इसलिए पुलिस के हित में और समाज के सभी वर्गों में पुलिस बल का विश्वास पैदा करने के लिए सरकार को एक जांच करवानी चाहिए जिसका जांचकर्ता सचिव के पद से नीचे न हो और विश्वास पैदा करने के लिए रिपोर्ट प्रकाशित करनी चाहिए।" (वही)

हैदराबाद के, बाद के दंगों में भी हमने सुना कि काफी मामलों में पुलिस के सिपाही या तो दंगों में उदासीन रहे या फिर उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। पुलिस की सीधी मिलीभगत के मामले भी हैं। 1985 के अहमदाबाद दंगों की जांच-पड़ताल के दौरान हमें बताया गया कि अहमदाबाद की एक मजदूर बस्ती में मुसलमानों के घरों को आग लगाने के लिए एक पुलिस इन्सपेक्टर ने अपनी मोटरसाइकिल से पेट्रोल निकाल कर दिया। सम्बन्धित अधिकारी ने इस आरोप से इन्कार किया। लेकिन इस क्षेत्र में जिस तरह से मकान जले हैं इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि पुलिस साम्प्रदायिक नहीं भी थी तो अकुशल एवं अलग-थलग तो रही ही थी। इन दंगों की जांच के दौरान दंगा-पीड़ितों ने हमें नगर-पुलिस के 'साम्प्रदायिक रवैये' की अनेकों घटनाएं सुनाईं। हालांकि सेना के खिलाफ ऐसी शिकायतें नहीं थीं।

1970 के भिवंडी दंगों के दौरान भी पुलिस के खिलाफ कटु शिकायतें थीं। मदान आयोग की रिपोर्ट में भी भिवंडी दंगों में पुलिस के व्यवहार की निन्दा की गई है। निर्दोष लोगों की गिरफ्तारियों के बारे में रिपोर्ट कहती है, "अतिरिक्त आई. जी. पी. मोदक और एस. पी. भावे ने जो कारण बताए उनमें से किसी को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया जा सकता, जितनी संख्या में गिरफ्तारियां कीं उसके लिए कोई भी कारण वाजिब नहीं है। हिन्दुओं ने जिन स्थानों पर आगजनी और लूटपाट की, वहां अधिकतर स्थानों पर पुलिस-नाके या गश्त पार्टियों की उपस्थिति की सही व्याख्या है कि पुलिस ने गिरफ्तारियों में भेदभाव किया और हिन्दू दंगाइयों की ओर से आंखें मूंदकर मुसलमान दंगाइयों पर ध्यान केन्द्रित किया।" यह आगे कहती है, "यह कहा गया था कि निर्दोष मुसलमानों को, जिनका तनाव से कोई लेना-देना नहीं था, घरों से, मस्जिदों से और जहां उन्होंने शरण ली हुई थी व अन्य स्थानों से पकड़कर उन पर छोटे अपराधों या कर्फ्यू

तोड़ने का आरोप लगा दिया।'' (देखें डी. पी. मदान कमीशन ऑफ इन्क्वायरी रिपोर्ट, वॉल्यूम III, भाग III, पृ. 13)। हालांकि, आयोग ने इन आरोपों को रद्द किया कि सभी गिरफ्तार किए मुसलमान निर्दोष हैं क्योंकि हिन्दू भी मारे गए थे और उनकी सम्पत्तियां भी लूटी गई थीं। लेकिन, ''काफी मुसलमान गलती से गिरफ्तार किए गए थे, और अतिरिक्त आई. जी. पी. मोदक ने कर्फ्यू को सख्ती से लागू करने के आदेश दिए, दूसरे शब्दों में जैसा कि उसने खुद कहा कि बड़ी संख्या में गिरफ्तारियों के आदेशों को मुसलमानों की गिरफ्तारियों के रूप में व्याख्यायित किया गया था न कि हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की गिरफ्तारी।'' (वही, पृ. 14) आयोग ने यहां तक पाया कि सम्बन्धित पुलिस अधिकारियों ने इब्राहिम मद्दू और अन्यों को दंगा रचने के षड्यन्त्र में शामिल करने के लिए पुलिस रोजनामचे से भी छेड़छाड़ की। मद्दू और दूसरों को बाद में न्यायालय ने आरोप मुक्त कर दिया। बहुत से मुसलमानों ने यह भी कहा कि पुलिस थानों में उनको सिर्फ पीटा ही नहीं गया बल्कि जब उन्होंने पानी मांगा तो पुलिस सिपाहियों ने उनके मुंह में पेशाब भी कर दिया। 1970 में भिवंडी दंगे जलगांव में भी फैल गए थे। वहां मुस्लिम महिला हजरबी के मकान पर हिन्दू भीड़ ने आग लगाई। जस्टिस मदान ने अपनी रिपोर्ट में लिखा, ''खटीक अल्ली के दंगों के दौरान, अब्दुल समद की 32 वर्षीय विधवा हजरबी के घर को हिन्दू दंगाइयों ने आग लगाकर जला दिया। उसकी मां, उसके दो छोटे बेटे और दो छोटी बेटियां सभी आग में खत्म हो गए। इन तनावों की यह सबसे त्रासदीपूर्ण घटना थी।'' हजरबी ने सब-इन्स्पेक्टर भालेराव पर आरोप लगाया कि ''दंगाइयों की भीड़ में उसने उसे पहचान लिया। वह उसके पैरों में पड़ गई और अन्दर घर में जल रहे मां व बच्चों के बचाने की प्रार्थना की। उसने अपना रिवाल्वर उसकी छाती पर रख दिया और चुप रहने को कहा, नहीं तो वह उसको गोली मार देगा। वह उससे बार-बार प्रार्थना करती रही। अन्त में उसने उसे धक्का दिया और दंगाइयों के हवाले कर दिया और उसने उसे दूसरे घरों पर आग लगाने के लिए उन्हें उकसाते हुए सुना। दंगों से पहले उसने भालेराव को स्कूटर पर जाते हुए देखा था लेकिन वह उसका नाम नहीं जानती थी। उसने उसका नाम भीड़ के लोगों से सुना जो एक-दूसरे से बातें कर रहे थे कि डरने की कोई जरूरत नहीं, बल्कि घरों में आग लगाओ क्योंकि भालेराव उनके साथ है। वह श्रीमती इन्दिरा गांधी तक अपनी शिकायत लेकर गई हालांकि इससे कुछ होता नजर नहीं आता था। 1984 के भिवंडी दंगों में भी हमने पुलिस के अलग-थलग रहने या मिलीभगत करने, या पुलिस की ज्यादतियों की अनेकों शिकायतें सुनीं। एक सामान्य आरोप यह था कि जब कर्फ्यू की घोषणा होती थी तो यह एकतरफा ढंग से लगाया जाता था यानि मुस्लिम क्षेत्रों में सख्ती से लागू किया जाता और हिन्दू क्षेत्रों में काफी ढील

रहती थी और अपनी जांच-पड़ताल के दौरान हमने सुना कि कर्फ्यू के घंटों के दौरान हिन्दू भीड़ को लूटपाट और आगजनी की छूट दी जाती थी और जब मुस्लिम आग बुझाने के लिए बाहर निकलते तो उन पर गोलियां चलाई जातीं। 1987 के मेरठ दंगों के दौरान अनेक लोगों ने ऐसे आरोप लगाए। मेरठ में पुलिस हिरासत में दस आदमियों को पीट-पीटकर मार डालने का आरोप भी लगाया जाता है। अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लोगों को पुलिस के व्यवहार की आम शिकायतों के ऐसे अनेक उदाहरण हैं। यहां यह बताना भी उचित रहेगा कि दलितों ने भी पुलिस के खिलाफ ऐसे आरोप लगाए। हमने अहमदाबाद के 1981 के जातीय-दंगों की जांच-पड़ताल की। जाति दंगा पीड़ित दलितों ने अधिकतर स्पेशल रिजर्व पुलिस और गुजरात पुलिस पर उनके घर लूटने और औरतों को पीटने के आरोप लगाए। 1985 में भी लगभग एक सप्ताह तक जातीय दंगों में दलित प्रभावित हुए। काफी दलितों के घरों को भी जला दिया गया था।

दिसम्बर 1992 और 1993 के बम्बई दंगे

ये दंगे देश के लिए विनाशकारी थे। मुसलमानों ने पुलिस की भूमिका के बारे में कटुतापूर्ण शिकायतें की थीं। पहले दौर यानि दिसम्बर 1992 में पुलिस-गोलीबारी में अधिकांश मुसलमान मारे गए थे। वास्तव में पोस्टमार्टम की रिपोर्ट दर्शाती है कि 250 व्यक्तियों में से 192 व्यक्ति पुलिस गोलीबारी में मरे और उनमें से 95 प्रतिशत लोगों को पेट से ऊपर चोट लगी थी, जिससे लगता है कि पुलिस ने घायल करने या अंगहीन करने के लिए नहीं, बल्कि जान से मारने के लिए गोलियां चलाई थीं। गोबान्दी में अपनी जांच-पड़ताल के दौरान काफी औरतों ने हमें बताया कि पुलिस ने उनके बेटों और पतियों को घर से बाहर खींचा और गोली मारी। पुलिस उन्मादी हो गई थी। एक पुलिस इन्सपेक्टर के खिलाफ गम्भीर आरोप थे, पुलिस सूत्रों ने माना कि उसे नौकरी से हटा देना चाहिए। बार-बार उसकी शिकायतें आने के कारण सम्बन्धित पुलिस उपाधीक्षक ने उस क्षेत्र से उसका तबादला कर दिया। हालांकि, यह बहुत देरी से हुआ क्योंकि तब तक पचास से अधिक लोगों की जान जा चुकी थी। ऐसे आरोप भी हैं कि कुछ लोगों को उनके घरों के प्रथम तल और दूसरे तल पर भी मारा गया। उदाहरण के लिए, मौलाना शौकत अली रोड पर उन्देरिया गली के पास अपने घर के दूसरे तल पर मुस्लिम नवयुवती की गर्दन पर वार हुआ। वह मौके पर ही मर गई। इस तरह जस्टिस एच. सुरेश और एस. एम. दाऊद ने अपनी 'द पीपुल्स वरडिक्ट' रिपोर्ट में लिखा, "....इन दंगों में पुलिस भी शामिल होने की दोषी है। बहुत से साक्षियों ने हमारे सामने कहा कि उन पर पुलिस की उपस्थिति में हमला हुआ और पुलिस ने कुछ नहीं किया। कई मामलों में पुलिस

ने दंगाइयों को खुली छूट दी और हमलों में उनका साथ दिया। जब दंगा-पीड़ित पुलिस थाने पहुंचे तो उनको वहां से बिना शिकायत दर्ज किए भगा दिया। कई मामलों में एफ.आई.आर. तो दर्ज की लेकिन आगे कोई जांच-पड़ताल नहीं की। काफी घरों और दुकानों को लूटा गया। पुलिस इसको रोक सकती थी या लूटे हुए सामान को बरामद करने के प्रयास कर सकती थी।'' बम्बई उच्च न्यायालय के इन दो सेवानिवृत्त न्यायधीशों ने आगे लिखा, ''सबसे दुखदायी बात यह है कि एक विशेष सम्प्रदाय के विरुद्ध उनका उन्माद एवं मानव-त्रासदी के समय पुलिस का अलग-थलग होना। औरतों से छेड़छाड़ और बलात्कार और सामूहिक बलात्कार को विशेष रूप से रेखांकित करना चाहेंगे....सेवरी की श्रीमती एफ. एस. के मामले में सर्वाधिक घृणित....जहां पुलिस स्वयं सामूहिक बलात्कार में शामिल थी। बलात्कार की शिकार का अब पुलिस और न्याय व्यवस्था में कोई विश्वास नहीं है।'' (देखें 'द पीपुल्स वरडिक्ट', पृ. 103-105)

दोनों न्यायाधीशों ने महसूस किया कि पुलिस दिसम्बर दौर के बाद दंगों की पुनरावृत्ति को नहीं रोक पाई। उन्हें कहना पड़ा, ''दिसम्बर में दंगों के बाद, पुलिस को देखना चाहिए था कि दंगे दोबारा न हों। पुलिस और सरकार को ध्यान रखना चाहिए था किसी तरह का तनाव न बने। इसके बजाय, पुलिस और सरकार ने शिवसेना और भारतीय जनता पार्टी को महाआरती करने की इजाजत दी। साक्ष्य स्पष्ट संकेत करते हैं कि महाआरती तनाव का मुख्य कारण थी जिससे जनवरी, 1993 के दंगे हुए। हमारे विचार में शहर के विभिन्न भागों में ऐसी महाआरतियों की इजाजत देना पुलिस का अपने कर्तव्य से पीछे हटना था। जिसने ऐसी इजाजत देने का फैसला किया वह बम्बई की जनता के प्रति जवाबदेह है।'' (देखें पृ. 105) यहां तक 'एमनेस्टी इण्टरनेशनल' ने भी भारत सरकार को दिए अपने ज्ञापन में बम्बई दंगों में पुलिस की भूमिका के सम्बन्ध में गम्भीर आरोप लगाए। इसमें कहा है कि जस्टिस श्रीकृष्ण बम्बई के 68 पुलिस थानों में से गम्भीर रूप से प्रभावित 50 थानों की जांच कर रहे हैं। आयोग ने गवाहियों को सुना कि पुलिस ने अपने आदमियों के खिलाफ दंगों के दौरान ज्यादतियों की शिकायतों की जांच नहीं की। 5 जनवरी, 1994 को एक मामले में आलोचनात्मक टिप्पणी थी, ''हम प्रत्येक सुसभ्य राष्ट्र में हंसी के पात्र होंगे यदि जनवरी, 1993 को डी. वी. मार्ग पर स्थित दुकान को लूटने में शामिल पुलिस के सिपाहियों के विरुद्ध कार्यवाही नहीं की गई तो।'' ....आयोग ने शिकायतें सुनीं कि पुलिस ने उन घटनाओं की रिपोर्ट दर्ज नहीं की जो कि वह करने को बाध्य थी, जिनमें पुलिस ने भीड़ पर गोलीबारी की और लोग मारे गए। उन्होंने अगरीपाड़ा पुलिस थाना के छः पुलिस अधिकारियों की गवाहियां सुनीं जिन्होंने विश्वास न करने योग्य साक्षियां दीं, जिसने जस्टिस को 9 जनवरी, 1994

की टिप्पणी के लिए उकसाया, "जब तक हम एक-दो पुलिस अधिकारी को जेल नहीं भेजते तब तक कोई सुधार नहीं होगा।" उन्होंने कार्यालय के रिकार्ड में पुलिस के हस्तक्षेप की गवाहियां भी सुनीं (नागपाड़ा पुलिस थाने में एक अपराधिक रजिस्टर में एक नया पृष्ठ जोड़ा गया)। (देखें 'एमनेस्टी इण्टरनेशनल इण्डिया का भारत सरकार को सौंपा ज्ञापनपत्र, जनवरी 5-15 1994', पृ. 16)

अर्धसैनिक बल और सेना की भूमिका

दिसम्बर-जनवरी के दंगों के दौरान पुलिस की भूमिका निश्चित रूप से वैसी नहीं थी जैसी कि महिमामण्डित करके बताई जाती है। उसने जो भूमिका निभाई उसकी पुलिस से अपेक्षा नहीं की जा सकती। दंगों की जांच-पड़ताल के दौरान पाया गया कि अर्धसैनिक बलों जैसे सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व बल आदि और सेना की भूमिका काफी अच्छी थी और अल्पसंख्यकों ने अपनी बेहतर सुरक्षा के लिए इन बलों को जारी रखने की वकालत की। भिवंडी के दंगों के पीड़ितों ने हमें बताया कि सेना मौजूद न होती तो उनको जान और माल के रूप में बहुत अधिक नुकसान उठाना पड़ता। सिर्फ यही नहीं, 1985 के अहमदाबाद दंगों में भी काफी लोगों ने हमें बताया कि सेना की भूमिका प्रशंसनीय थी। यह घटनाएं स्पष्ट संकेत करती हैं कि दंगा-पीड़ित और उनके रिश्तेदार/दोस्त स्थानीय पुलिस और एस.आर.पी., पी.ए.सी. और बी.एम.पी. जैसे हथियारबन्द सिपाहियों की भूमिका की सराहना नहीं करते। इसका समग्र मूल्यांकन करना महत्वपूर्ण है कि ऐसा क्यों है?

पुलिस सूत्र स्वीकार करते हैं कि पुलिस अक्सर स्थानीय कारकों से प्रभावित होती है जबकि अर्धसैनिक बल नागरिक समाज के दैनिक मामलों में शामिल नहीं होते। इसके अलावा स्थानीय पुलिस लगातार स्थानीय लोगों के सम्पर्क में होती है। इसलिए स्थानीय पुलिस पर विभिन्न स्थानीय दबाव होते हैं। यहां तक कि वे समाज के किसी एक या दूसरे वर्ग (तबके) से गहरे सम्बन्ध बना लेती है। पुलिस अक्सर अपराधी तत्वों विशेषकर उनसे जिनका राजनीतिकरण हो चुका है, से मिली होती है। उदाहरण के लिए, भागलपुर दंगों में अपराधिक गिरोहों ने खुलेआम भाग लिया और ये गिरोह साम्प्रदायिक आधार पर बंट गए। कुछ मुसलमान अपराधिक तत्वों ने स्थिति का फायदा उठाकर पुलिस अधिकारियों से भी बदला लेने की कोशिश की। स्वाभाविक ही है कि अर्धसैनिक बलों के सामने स्थानीय शक्ति समीकरण इतने स्पष्ट नहीं होते। इसलिए वे पक्षपातविहीन व्यवहार करने के योग्य होते हैं। वे वास्तविक अपराधी के विरुद्ध ही कार्यवाही करते हैं। जहां तक पी.ए.सी. और एस.आर.पी. के क्रूर व्यवहार की बात है हमारी जांच दर्शाती है कि वे अत्यधिक अलगाव (उस तरह जैसे अर्धसैनिक का स्थानीय प्रभावों से)

में रहते हैं। उनको प्रशिक्षण यही है कि कानून और व्यवस्था की रक्षा के लिए क्रूरतापूर्वक हमला करो। दूसरे, पुलिस के अन्य लोगों की तरह उनके पास पैसा बनाने वाली पद-नियुक्ति के लिए कोई अवसर नहीं होता, इसलिए लूट में शामिल होकर वे इन मौकों को धन प्राप्त करने के अवसरों के रूप में देखते हैं। अहमदाबाद जातीय-दंगों के दौरान काफी दलित महिलाओं ने हमें बताया कि एस.आर.पी. के सिपाहियों ने नकदी समेत उनके मंगलसूत्र और सोने के गहने भी लूट लिए। ये उनकी क्रूरता और लालच को व्याख्यायित करते हैं, उनके साम्प्रदायिक रवैये को नहीं। इसकी क्या व्याख्या हो सकती है? एक कारण यह हो सकता है कि दंगों के दौरान वह स्थानीय पुलिस के गहरे समन्वय के साथ काम करती है। लेकिन यह इसकी आंशिक व्याख्या दिखाई देती है। प्रशिक्षण में धर्मनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्धता की कमी अन्य कारण हो सकता है। हथियारबन्द पुलिस दस्ते भी प्रशिक्षण की इस कमी का शिकार हैं।

पुलिस और इसका साम्प्रदायिक व्यवहार

सारी पुलिस को साम्प्रदायिक कहकर उसकी निन्दा करना उचित नहीं होगा। पुलिस में साम्प्रदायिक तत्व हैं, परन्तु इसमें धर्मनिरपेक्ष तत्व भी हैं यद्यपि वे बलों के ऊंचे ओहदों पर हैं। नीचे के सिपाहियों की अपेक्षा उच्चाधिकारी अधिक धर्मनिरपेक्ष हैं। बेशक, उच्चाधिकारियों में भी साम्प्रदायिक तत्व हैं, लेकिन उतने नहीं जितने निचले स्तरों पर, यद्यपि सिपाहियों में भी धर्मनिरपेक्ष तत्व हो सकते हैं। असल में हमें साम्प्रदायिक स्थिति से ईमानदारी से निपटने के लिए प्रतिबद्ध अधिकारी मिले हैं। यह दीगर बात है कि वे कुछ कारणों की वजह से निपटने में सफल नहीं हो सके, उनमें एक राजनीतिक हो सकता है, यहां तक कि धर्मनिरपेक्ष सोच और कर्तव्यपरायणता के कारण इन अधिकारियों के बार-बार तबादले होते हैं। इनमें भी (अधिकारी) दो तरह के हैं : एक, वे जो अपनी मान्यताओं के लिए लड़ते हैं और कष्ट उठाते हैं; दूसरे, वे जो राजनीतिक रहनुमाओं की मर्जी के आगे समर्पण कर देते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे लोग हमेशा कम होते हैं जो अपनी मान्यताओं के लिए हर कीमत चुकाने को तैयार होते हैं।

निचले स्तरों के अधिकारियों और सिपाहियों के बारे में तस्वीर एकदम बदल जाती है। उनका बेहद साम्प्रदायीकरण हो चुका है। यह भी कहना चाहिए कि समाज के कमजोर वर्गों, उच्च जाति के गरीबों व दलितों से सहयोग करने की अपेक्षा उनके आधारभूत प्रशिक्षण में कुछ कमी दिखाई देती है। यह स्थिति आंशिक रूप से देश के राजनीतिक भ्रष्टाचार के माहौल को प्रतिबिम्बित करती है। मनुष्य के जीवन की कोई कीमत नहीं है। और विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों की। और असल में कार्यक्षेत्र में सिपाहियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इस तरह दिसम्बर

1992 के दंगों के दौरान गोवान्दी में जिन्होंने निर्दोष लोगों पर गोलियां चलाईं, वे इन्सपेक्टर और उससे नीचे के स्तर के थे। लेकिन पुलिस उप-अधीक्षक वाई. सी. पवार ने स्थिति सम्भाल ली। हमें मानना चाहिए कि भिवंडी में कुछ उच्च अधिकारियों ने प्रतिबद्धता दिखाई और अवांछित तत्वों पर रोक लगाने के लिए और शान्ति के लिए मौहल्ला समितियां गठित करवाईं। असल में अन्य पुलिस अधिकारियों को इनसे काफी कुछ सीखना चाहिए। नीचे स्तर के अधिकारियों को अनुशासन और पुनर्प्रशिक्षण की आवश्यकता है। लेकिन यह दुखदायी है कि विभिन्न पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र नीचे स्तर के अधिकारियों की अपेक्षा उच्च स्तर के अधिकारियों को ही ऐसे प्रशिक्षण प्रदान करते हैं।

नीचे के अधिकारियों और सिपाहियों की समस्याओं को भी समझना महत्वपूर्ण है। साम्प्रदायिक तनाव के दौरान वे अत्यधिक काम करते हैं। ऐसे मौकों पर उनको चौबीस घण्टे ड्यूटी देनी पड़ती है। उनको घर जाने का समय नहीं मिलता। इसके साथ उनको अपनी जान का खतरा भी होता है। ऐसी स्थितियों में काम करना आसान नहीं है। ऐसा तनाव उनको बेहद उत्तेजित कर देता है। और वे ऐसी स्थिति में कोई भी प्रतिक्रिया कर सकते हैं। वे निर्दोष लोगों से बदला लेते हैं। इसके अलावा, अन्य लोगों की तरह वे भी राजनीतिक प्रचार से गहरे में प्रभावित होते हैं। मुसलमानों के बारे में उनकी धारणा ऐसे राजनीतिक प्रचार से निर्मित होती है। वे भी सोचते हैं कि सभी मुसलमान उग्र, हिंसक और धार्मिक कट्टर होते हैं और वे ही दंगा शुरू करने के मुख्य जिम्मेवार हैं। एक-दो चुनिन्दा घटनाएं जो उनकी जानकारी में आती हैं उनसे उनकी यह धारणा और पक्की हो जाती है। उदाहरण के लिए दिसम्बर, 1992 के बम्बई दंगों में कुछ मुसलमानों (अधिकांश समाज-विरोधी तत्व) ने पुलिस पर हमला किया और उनमें से कुछ को मार भी दिया। 7 दिसम्बर की सुबह कुछ मुस्लिम युवाओं ने सरकारी सम्पत्ति, हिन्दुओं की दुकानें और मन्दिरों आदि पर हमला किया। गोवान्दी क्षेत्र में भी पुलिस के दो सिपाही मारे गए, दो मन्दिरों को नुकसान हुआ। इसने पुलिस के विशेषकर नीचे स्तरों के पुलिस-जनों को गुस्सा दिलाया। यहां तक कि पुलिस उच्चाधिकारियों ने महसूस किया कि पुलिस पर आक्रमण की खबर ने सारी पुलिस को गुस्सा दिलाया था। इसके बावजूद कुछ उच्चाधिकारियों ने अपना सन्तुलन बनाए रखा। यद्यपि 7 दिसम्बर को भिण्डी बाजार क्षेत्र में एक सिपाही को मार दिया, और दो मन्दिरों पर हमला हुआ था, लेकिन पुलिस उप-अधीक्षक जेन्दे ने डोंगरी क्षेत्र में व्यवस्था बनाए रखने और कई मुस्लिमों की जान बचाने के लिए बहुत अच्छा काम किया। लेकिन काफी मुसलमान मारे गए थे। इस तरह की कुछ घटनाएं मुसलमानों के बारे में पुलिस की पूर्व धारणा को पक्का करती हैं। असल में दिसम्बर दंगों के दौरान इतनी अधिक गोलीबारी के पीछे पुलिस

की यह धारणा काम कर रही थी कि मुसलमान उग्र और धार्मिक रूप से कट्टर होते हैं जब तक इनसे सख्ती से नहीं निपटा जाएगा तब तक इनको नियन्त्रित नहीं किया जा सकता। ऐसी धारणाओं को केवल सघन प्रशिक्षण और अल्पसंख्यकों के प्रति उनके रवैये को पुनर्संस्कारित करके ही दूर किया जा सकता है।

पुलिस को अफवाहों की भूमिका को भी ध्यान में रखना चाहिए। दंगा करवाने के लिए शरारती तत्व कुछ अफवाहें जानबूझ कर फैलाते हैं जो पुलिस को भी प्रभावित करती हैं। कई बार उच्चाधिकारी भी इन अफवाहों से प्रभावित होते हैं। असम में नेली दंगों के दौरान जिलाधीश से दंगों का मुख्य कारण जानना चाहा तो उसका जवाब सुनकर कंपकंपी छूट गई। जिलाधीश भी इस अफवाह का शिकार था कि बंगाली मुसलमानों ने हिन्दू औरतों की छाती काट दी थी और अपनी बहादुरी प्रदर्शित करने के लिए हिन्दू क्षेत्रों में रख दी थी। यह अविश्वसनीय है लेकिन सच है। अन्दाजा लगाया जा सकता है। दंगों में अफवाहें कितनी विनाशकारी भूमिका अदा कर सकती हैं। अफवाहों पर पुलिस के लोग भी विश्वास करते हैं कि दंगों में प्रयोग के लिए पाकिस्तानी हथियार आ रहे हैं और इस तनाव के पीछे आई.एस.आई का हाथ है। बम्बई के दिसम्बर दंगों में एक पुलिस सूत्र ने दावा किया कि मिनारा मस्जिद के नजदीक ए.के.-47 से गोलियां चल रही थीं, जो कि बिल्कुल झूठ था। अफवाह इतने भयंकर ढंग से फैलाई गई थी कि महाराष्ट्र के तत्कालीन राज्यपाल सी. सुब्रमण्ह्यम भी इससे प्रभावित थे और उन्होंने प्रेस में बयान दिया कि इन दंगों में 'विदेशी हाथ' था और वे इसके प्रमाण दे सकते हैं लेकिन उन्होंने कभी ऐसे प्रमाण नहीं दिए।

हमें दंगों के दौरान आम राजनीतिक माहौल का भी ध्यान रखना चाहिए। पिछले कुछ सालों में साम्प्रदायिक शक्तियों ने समस्त वातावरण को बहुत अधिक खराब कर दिया है। रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद ने देश में साम्प्रदायिक शान्ति को बरबाद करने के लिए भूमिका निभाई है। यहां तक कि उच्च शिक्षित मध्यवर्ग और उच्चवर्ग के लोग भी साम्प्रदायिक लहर से प्रभावित हुए जिससे पिछले पांच साल से देश में साम्प्रदायिक प्रचार जोर-शोर से चल रहा है। पुलिस भी इससे अप्रभावित नहीं रह सकती। वे भी अन्य मनुष्यों की तरह साम्प्रदायिक प्रचार से ग्रस्त हैं। ऐसे माहौल में स्थिति को काबू में करने के लिए अत्यधिक संकल्पशील पुलिस अधिकारियों की आवश्यकता है। ऐसे प्रतिबद्ध अधिकारियों को पूरे राजनीतिक समर्थन की जरूरत है। सत्ताधारी राजनीतिज्ञों ने साम्प्रदायिक शक्तियों के आगे समर्पण कर दिया है, कुछ पत्रकारों ने उनको नरम 'साम्प्रदायिकतावादी' की संज्ञा दी है। जब बाबरी मस्जिद गिराई जा रही थी तो तत्कालीन प्रधानमंत्री चुपचाप देख रहे थे। राजनीतिज्ञों का ऐसा व्यवहार निश्चित तौर पर पुलिस और अन्य अधिकारियों को गलत संकेत देता है। 1969 के अहमदाबाद दंगों से पहले भी

साम्प्रदायिकता के विषाणु ने सारा राजनीतिक वातावरण खराब कर दिया था। ऐसे साम्प्रदायिकतापूर्ण माहौल में बहुत कम पुलिस अधिकारी ही अपना सन्तुलन बनाए रख सकते हैं।

साम्प्रदायिक विषाणु से लड़ने के लिए राजनीतिक इच्छा की जरूरत है। हमारे देश की एकता और अखण्डता धर्म-निरपेक्षता और बहुधर्मिता की मजबूती पर निर्भर करती है। यह सन्देश पुलिस के पास भी बार-बार जाना चाहिए। प्रत्येक साम्प्रदायिक दंगा हमारी एकता के लिए गम्भीर चुनौती है।

अध्याय 7

साम्प्रदायिक दंगों का महिलाओं पर प्रभाव

बाबरी-मस्जिद गिराने की घटना से साम्प्रदायिक दंगों की ऐसी शृंखला शुरू हुई जिसने हमारे देश के धर्मनिरपेक्ष आदर्शों को ध्वस्त कर दिया। इस साम्प्रदायिक उन्माद का शिकार सबसे अधिक बम्बई महानगर हुआ। जिस प्रजातन्त्र पर हमें नाज है, भीडतन्त्र के आतंक ने इसकी खिल्ली उड़ाई। लोकतान्त्रिक ढंग से चुने गए प्रतिनिधि शहर से तनाव खत्म करने में अक्षम रहे और इस तरह वे यह सिद्ध करने में बुरी तरह असफल हुए कि वे शहर की सेवा करने के लिए चुने गए हैं।

निर्दोष लोगों को उनके घर से भगाने की बहुत ही सुविचारित योजना के तहत यह हमला था। बहुत से स्थानों पर जहां मुसलमान बस्तियों में विशेष रूप से झोंपड़-पट्टी कॉलोनियों में आग लगा दी गई, दंगों ने बहुत से मनुष्यों की जान ली, बहुतों को अपंग बना दिया और बहुत से मानसिक सन्तुलन खो बैठे। मरने वालों की संख्या बढ़ने से शहर का क्रिया-व्यापार स्थगित था और श्मशान घाट लाशों से भरा पड़ा था, कोई इनको ले नहीं रहा था। लोग रह-रहकर याद आने वाली स्मृतियों के साथ शहर छोड़ने को विवश थे।

''सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया में दंगे विस्फोटक क्षण होते हैं'' ये विस्फोटक क्षण समाज में अपूरणीय नुकसान करते हैं। ये समाज में सामाजिक सम्बन्धों और परिवारों में अत्यधिक विघ्न पैदा करते हैं। भारत में स्थिर पारिवारिक जीवन और पारिवारिक संरचना की समृद्ध विरासत है। बड़े-बड़े सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों में भी पारिवारिक जीवन और संरचना स्थिर रही है।

परिवार और समाज में स्थायित्व बनाए रखने में महिलाएं भूमिका निभाती हैं, विशेषतौर पर संकट के समय में। हाल के दंगों ने शान्ति और सद्भाव में खलल डाला है, बहुत से घर बेसहारा हो गए हैं और परिवारों की जीवन भर की कमाई नष्ट हो गई। अपने परिवार के सदस्यों के टूटे दिलों को जोड़ने व असन्तुलित दिमागों को ठीक करने और सामाजिक ताना-बाना बुनने का महिलाओं पर बहुत जिम्मेवारी का काम है। परिवार की भावनाओं और सामाजिक सम्बन्धों की रक्षक होने के नाते महिलाओं को गहरे घावों को भरना है।

इतिहास गवाह है कि चाहे समाज ने उस पर कितनी ही पाबन्दियां लगाई हों लेकिन महिलाएं सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख कारक रही हैं। महिलाओं ने सामाजिक परिवर्तन में अहं भूमिका निभाई है। जरूरत पड़ने पर महिलाएं बेहतर भूमिका निभाती हैं। कुछ स्थानों पर दंगों के बाद दो विरोधी समुदायों में सद्भाव स्थापित करने में महिलाएं आगे आईं। समाज में मौजूद विभिन्न सामाजिक समस्याओं के बारे में जागरूक होकर वे समस्याओं को सुलझाने में प्रभावी योगदान दे सकती हैं।

दंगों के महिलाओं पर हुए तुरन्त प्रभाव और उन पर रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मुद्दे के साम्प्रदायिक प्रचार-प्रभाव को जानने के लिए हमने बम्बई में एक सर्वेक्षण किया। इस अध्ययन का आधार बम्बई के विभिन्न क्षेत्रों की 250 महिलाओं को बनाया गया। इसमें बम्बई में रहने वाली केवल हिन्दू औरतों को शामिल किया है। यह रिपोर्ट जाति, शिक्षा, आय के विभिन्न विचारों पर आधारित है। आंकड़े एक प्रश्न-पत्र के माध्यम से एकत्रित किए गए हैं। प्रश्न-पत्र की प्रति इस रिपोर्ट के पीछे संलग्न है।

महिलाओं के साम्प्रदायिक दंगों सम्बन्धी विचारों पर उनकी जाति, जन्मस्थान, शिक्षा और आय का प्रभाव चार अलग-अलग अनुभागों में दिया गया है।

अनुभाग 1

जाति का प्रभाव

तालिका 1.1 से 1.12 तक महिलाओं के बम्बई में दंगे के कारणों सम्बन्धी विचारों पर उनकी जाति के प्रभाव को प्रस्तुत करती हैं।

जैसा कि तालिका 1.1 दर्शाती है कि विभिन्न जातियों की कुल महिलाओं का 58 प्रतिशत महसूस करता है कि बाबरी मस्जिद का गिराना दंगों का प्रमुख कारण था। 61 प्रतिशत उच्च जातियों की तथा 61.2 प्रतिशत पिछड़ी जातियों की महिलाएं मानती हैं कि बाबरी मस्जिद का गिराया जाना दंगों का प्रमुख कारण था। 55.2 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 53.2 प्रतिशत मध्यम जाति की महिलाएं इस विचार से सहमत हैं। केवल 2 प्रतिशत उच्चजाति की महिलाएं मानती हैं कि दंगे भवन निर्माताओं ने करवाए थे। यह दर्शाता है कि विभिन्न जातियों की ज्यादातर महिलाएं देश के मुद्दों के प्रति जागरूक हैं।

विभिन्न जातियों की 80 प्रतिशत महिलाएं बाबरी मस्जिद के गिराने को ठीक नहीं मानतीं। यह उल्लेखनीय है कि अनुसूचित जाति की 82.8 प्रतिशत और मध्यम जाति की 84.4 प्रतिशत महिलाएं बाबरी मस्जिद गिराने के खिलाफ थीं। उच्चजाति की 22.1 प्रतिशत महिलाओं ने बाबरी मस्जिद के गिराने का समर्थन

किया। तालिका 1.2 के आंकड़ों से स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति और मध्यम जाति की महिलाएं तुलनात्मक दृष्टि से कम साम्प्रदायिक हैं।

उच्चजाति की 37.7 प्रतिशत और पिछड़ी जाति की 38.8 प्रतिशत महिलाओं को विश्वास है कि बाबरी मस्जिद रामजन्मभूमि के स्थान पर स्थित है। मध्यम जाति की 39 प्रतिशत और अनुसूचित जाति की 24.1 प्रतिशत महिलाओं का भी यही विश्वास है। सभी जातियों की 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं या तो जानती नहीं हैं या फिर उन्हें पक्का नहीं पता कि राम का जन्मस्थान कहां है। यद्यपि बहुत-सी औरतें विश्वास करती थीं कि मस्जिद राम के जन्मस्थान पर स्थित थी लेकिन वे उसे गिराने के विरुद्ध थीं।

जैसा कि तालिका 1.4 दर्शाती है कि सभी जातियों के 19.2 प्रतिशत लोग सीधे तौर पर दंगों से प्रभावित हुए। 26.8 प्रतिशत अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए और 54 प्रतिशत दंगों से किसी तरह भी प्रभावित नहीं हुए। 37.7 प्रतिशत उच्च जाति और 51.7 प्रतिशत अनुसूचित जाति के अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए।

'दंगों के लिए धर्म जिम्मेवार है' इस सवाल पर महिलाएं बराबर विभाजित थीं। उच्च जाति की 49.4 प्रतिशत महिलाओं ने धर्म को दंगों के लिए जिम्मेवार माना लेकिन 48.1 प्रतिशत ऐसा नहीं सोचतीं। केवल 2.4 प्रतिशत महिलाएं अपने विचारों के सम्बन्ध में पक्की नहीं थीं। यह दर्शाता है कि महिलाएं विभिन्न मुद्दों पर सम्वेदनशील हैं।

उच्च जातियों की 61 प्रतिशत, पिछड़ी जातियों की 52.2 प्रतिशत और अनुसूचित जाति की 51.7 प्रतिशत महिलाएं सरकार, पुलिस और चुने गए जन-प्रतिनिधियों के द्वारा उठाए गए कदमों से सन्तुष्ट नहीं थीं। मध्यम जाति की 59.7 प्रतिशत महिलाएं पुलिस, सरकार, जनप्रतिनिधियों के कदमों से सन्तुष्ट थीं।

निम्न जातियों की 60 प्रतिशत से अधिक महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजे जाने के खिलाफ थीं। मध्यम और उच्च जातियों की भी 50 प्रतिशत से अधिक महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजे जाने के खिलाफ थीं। विभिन्न जातियों की 42 प्रतिशत महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजे जाने के पक्ष में थीं। हो सकता है कि वे सोचती हों कि साम्प्रदायिक दंगे धर्म की वजह से हुए हैं और मुसलमानों के पाकिस्तान चले जाने से समस्या सुलझ सकती है। इससे यह विचार बनाने की जरूरत नहीं है कि यह मुसलमानों के प्रति घृणा है।

यह उल्लेखनीय है कि सभी जातियों की 88 प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि मन्दिर-मस्जिद विवाद की अपेक्षा दैनिक जीवन की समस्याएं ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। महिलाएं अपने दृष्टिकोण में अधिक व्यावहारिक हैं और संकीर्ण साम्प्रदायिक प्रचार की शिकार नहीं हुईं।

सभी जातियों के 68 प्रतिशत से अधिक बच्चे दंगों से अप्रभावित थे। 32

प्रतिशत से अधिक बच्चे प्रभावित हुए क्योंकि वे स्कूल नहीं जा सके, उनका बाहर निकलना बन्द हो गया और उन्हें घर में ही बन्द रहना पड़ा। कुछ बम्बई के साम्प्रदायिक उन्माद को देखकर या सुनकर भावनात्मक रूप से समस्याग्रस्त थे।

सभी जातियों की 79.2 प्रतिशत महिलाएं साम्प्रदायिकता के खिलाफ महिलाओं के मैदान में आने के विरुद्ध हैं। शायद वे अभी भी मानती हैं कि लड़ना पुरुषों का विशेषाधिकार है। महिलाओं को अभी समाज के बदलाव में अपनी शक्ति को पहचानना है।

सभी जातियों की 72.4 प्रतिशत महिलाएं महसूस करती हैं कि यदि साम्प्रदायिक शक्तियां मजबूत होती हैं तो महिलाओं की हालत कमजोर होगी। 79.2 प्रतिशत मध्यम जाति की व 77.6 प्रतिशत पिछड़ी जाति की महिलाओं का विचार है कि साम्प्रदायिक मुद्दे महिलाओं के उद्देश्यों को पीछे धकेलते हैं, जबकि 13.2 प्रतिशत का इस बारे में कोई विचार नहीं था।

तालिका 1.12 विभिन्न जातियों की महिलाएं साम्प्रदायिकता के लिए किसे जिम्मेदार मानती हैं, इसे दर्शाती है। 41.6 प्रतिशत महिलाएं दोनों हिन्दू और मुसलमान समुदायों को साम्प्रदायिकता के लिए जिम्मेवार मानती हैं। 30 प्रतिशत मुसलमानों को और केवल 7.2 प्रतिशत महिलाएं हिन्दुओं को साम्प्रदायीकीकरण का जिम्मेवार मानती हैं। 13.2 प्रतिशत राजनीति पर आरोप लगाती हैं और केवल 2 प्रतिशत महिलाएं गुण्डों को साम्प्रदायिकता के लिए जिम्मेवार मानती हैं।

अनुभाग 2

जन्म स्थान से प्रभावित

दंगे के कारणों सम्बन्धी महिलाओं के विचारों पर उनके जन्म स्थान के प्रभाव को 2.1 से 2.12 तक तालिका प्रस्तुत करती है।

प्रतिवादी महिलाओं में बम्बई में रह रही महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर भारत और दक्षिण भारत की महिलाएं शामिल हैं। उनके जन्म स्थान ने उनके साम्प्रदायिक दंगों के कारणों सम्बन्धी विचारों को निश्चित रूप से प्रभावित किया है। यह उल्लेखनीय है कि 61.5 प्रतिशत दक्षिण भारतीय महिलाओं और 65.5 प्रतिशत उत्तर भारतीय महिलाओं ने दंगों का कारण बाबरी मस्जिद का गिराया जाना माना। महाराष्ट्र की 59.5 प्रतिशत महिलाओं ने बाबरी मस्जिद के गिराने को कारण माना लेकिन 25.5 प्रतिशत ने इसे राजनीतिक योजना के तहत माना। इसी तरह 48.3 प्रतिशत गुजराती महिलाओं ने बाबरी-मस्जिद गिराने को कारण माना लेकिन 37.9 प्रतिशत ने इसे राजनीतिक योजना के तहत माना। केवल 0.8 प्रतिशत प्रतिवादी महिलाओं ने भवन-निर्माताओं को दंगों का कारण माना। विभिन्न क्षेत्रों की महिलाएं राजनीतिक

दृष्टि से जागरूक दिखाई देती हैं।

80.5 प्रतिशत प्रतिवादी महिलाएं बाबरी मस्जिद गिराने के विरुद्ध थीं। 24.1 प्रतिशत उत्तर भारतीय और 20.3 प्रतिशत महाराष्ट्र की महिलाओं ने बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थन किया, जबकि सिर्फ 15.9 प्रतिशत दक्षिण भारतीय और 6.9 प्रतिशत गुजराती महिलाओं ने इसका समर्थन किया।

37.9 प्रतिशत महाराष्ट्र की और 41.4 प्रतिशत उत्तर भारतीय महिलाएं मानती हैं कि बाबरी मस्जिद रामजन्मभूमि के स्थान पर स्थित है। 35.95 दक्षिण भारतीय और 27.6 प्रतिशत गुजराती महिलाएं विश्वास करती हैं कि राम जन्म स्थान वही है जहां बाबरी मस्जिद स्थित है। यद्यपि काफी संख्या में महिलाएं प्रचार से प्रभावित हैं, वे बाबरी मस्जिद गिराने से सहमत नहीं थीं।

महाराष्ट्र में 22.2 प्रतिशत प्रत्यक्ष रूप से और 29.4 प्रतिशत अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुईं। दूसरे क्षेत्रों के प्रतिवादियों में केवल 13.8 प्रतिशत से 15.4 प्रतिशत प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुईं। जबकि 26.6 प्रतिशत दक्षिण-भारतीय अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुईं।

51.6 प्रतिशत प्रतिवादियों का मानना है कि धर्म दंगों के लिए जिम्मेवार है और 46 प्रतिशत ऐसा महसूस नहीं करतीं।

51 प्रतिशत गुजराती, उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय महिलाएं सरकार, पुलिस या चुने हुए प्रतिनिधियों की कार्रवाई से सन्तुष्ट नहीं थीं। 49.7 प्रतिशत महाराष्ट्र की महिलाएं सन्तुष्ट नहीं थी। 48.8 प्रतिशत प्रतिवादी इनकी कार्रवाई से सन्तुष्ट थीं।

जहां 66.7 प्रतिशत दक्षिण भारतीय महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजे जाने के खिलाफ थीं, महाराष्ट्र की केवल 51.6 प्रतिशत महिलाएं इसके खिलाफ थीं। यह उल्लेखनीय है कि 46.4 प्रतिशत महाराष्ट्र की महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजना चाहती हैं और अन्य क्षेत्रों से 30 से 39 प्रतिशत तक प्रतिवादी महिलाएं इससे सहमत हैं।

88 प्रतिशत से भी अधिक प्रतिवादी धार्मिक मुद्दों की अपेक्षा दैनिक जीवन की समस्याओं को ज्यादा महत्वपूर्ण मानती हैं। केवल 7.6 प्रतिशत प्रतिवादी धार्मिक मुद्दों को अधिक महत्वपूर्ण मानती हैं। महिलाएं अधिक व्यावहारिक दिखाई देती हैं।

44.8 प्रतिशत गुजराती बच्चे दंगों से प्रभावित थे। दूसरे क्षेत्रों के अधिकतर बच्चे दंगों से प्रभावित नहीं हुए।

79.2 प्रतिशत महिला-प्रतिवादी इस पक्ष में नहीं थीं कि महिलाओं को साम्प्रदायिकता से लड़ना चाहिए। इसी तरह के विचार विभिन्न जातियों की महिलाओं ने व्यक्त किए। यह दर्शाता है कि सभी क्षेत्रों और सभी जातियों की महिलाएं

सामाजिक समस्याओं से लड़ने की अपनी क्षमता के प्रति जागरूक नहीं हैं।

72.4 प्रतिशत प्रतिवादियों ने महसूस किया कि यदि साम्प्रदायिक शक्तियां मजबूत होती हैं तो महिलाओं के मकसद कमजोर पड़ते हैं। यद्यपि महिलाएं जानती थीं कि साम्प्रदायिक शक्तियां उनके हितों को कमजोर करती हैं, लेकिन फिर भी वे साम्प्रदायिकता से लड़ना नहीं चाहतीं। साम्प्रदायिकता के खिलाफ लड़ाई में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका पहचानने के लिए उनमें और अधिक जागरूकता उत्पन्न करने की जरूरत है।

41.6 प्रतिशत प्रतिवादियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों सम्प्रदायों को साम्प्रदायीकरण का दोषी माना। 30 प्रतिशत ने मुसलमानों को दोषी माना और 13.2 प्रतिशत ने साम्प्रदायिकता के लिए राजनीति को दोषी ठहराया। अधिकतर महिला-प्रतिवादियों ने अपने आसपास की समस्याओं के प्रति सन्तुलित विचार प्रकट किए।

अनुभाग 3

शिक्षा का प्रभाव

तालिका 3.1 से 3.12 तक बम्बई दंगों के कारणों के बारे में महिलाओं के विचारों पर शिक्षा के प्रभाव को दर्शाती हैं।

66.7 प्रतिशत अनपढ़ महिलाओं ने बाबरी मस्जिद के गिरने को दंगों का मुख्य कारण स्वीकार किया। उच्च स्कूल शिक्षा व उच्चतर शिक्षित महिला वर्ग ने स्वीकार किया कि राजनीतिक पूर्व-योजना भी दंगों का कारण है। ज्यों-ज्यों महिलाओं की शिक्षा का स्तर बढ़ा तो राजनीतिक पूर्व-योजना मानने वाली महिलाओं का प्रतिशत भी बढ़ा। स्कूल शिक्षा स्तर की शिक्षित 20.6 प्रतिशत महिलाओं ने दंगों का कारण राजनीति पूर्व-योजना माना। उच्चतर स्कूल स्तर शिक्षित 37.5 प्रतिशत और व्यावसायिक स्तर की 43.7 प्रतिशत महिलाओं ने भी यह माना। निश्चित रूप से शिक्षा ने महिलाओं के विचारों को प्रभावित किया।

56.4 प्रतिशत निरक्षर महिलाओं ने बाबरी मस्जिद के गिरने को समर्थन नहीं दिया। विभिन्न स्तर की शिक्षित 84 प्रतिशत के लगभग महिलाएं मस्जिद गिराने के विरुद्ध हैं।

कुल प्रतिवादियों में से 36.4 प्रतिशत का मानना था कि बाबरी मस्जिद राम जन्मभूमि के स्थान पर खड़ी है। 34.4 प्रतिशत को राम के जन्मस्थान का कोई पता नहीं था।

अधिकतर अनपढ़ महिलाएं (33%) दंगों में प्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित हुईं। 47.9 प्रतिशत स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक श्रेणी दंगों में अप्रत्यक्ष तौर पर

प्रभावित हुईं। यह इसलिए क्योंकि ये श्रेणी साम्प्रदायिक दंगों के तत्काल प्रभाव और पश्चात प्रभावों को अनपढ़ व कम शिक्षित महिलाओं से बेहतर ढंग से समझती हैं।

51.6 प्रतिशत कुल प्रतिवादियों ने महसूस किया कि धर्म, साम्प्रदायिक दंगों का कारण है। 46 प्रतिशत ने धर्म को साम्प्रदायिक दंगों का कारण स्वीकार नहीं किया।

48.7 प्रतिशत अनपढ़ महिलाएं सरकार, पुलिस या चुने हुए प्रतिनिधियों की कार्रवाई से सन्तुष्ट थीं। केवल 26.8 प्रतिशत अत्यधिक शिक्षित महिलाएं उपरोक्त एजेन्सियों की कार्रवाई से सन्तुष्ट थीं। ज्यों-ज्यों शिक्षा का स्तर ऊपर उठता गया त्यों-त्यों इनकी कार्रवाई से असन्तुष्ट महिलाओं का प्रतिशत भी बढ़ता गया। यह स्पष्ट संकेत करता है कि शिक्षित महिलाएं अधिक सन्तुलित विचार रखती हैं।

55 प्रतिशत से अधिक अनपढ़ और प्राइमरी शिक्षित महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजना चाहती हैं। 53.3 प्रतिशत स्कूल शिक्षा और 63.4 प्रतिशत से अधिक उच्च शिक्षित महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने के विरुद्ध हैं। अनपढ़ों और प्राइमरी शिक्षितों को प्रचार द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता है।

कुल प्रतिवादियों में से 88 प्रतिशत ने धार्मिक मुद्दों से अधिक दैनिक समस्याओं को अधिक महत्वपूर्ण माना है। अनपढ़ता, या शिक्षा के विभिन्न स्तरों से अलग महिलाएं इस सन्दर्भ में या पहलू पर अधिक सम्वेदनशील हैं। उनके लिए उनकी दैनिक जीवन की समस्याएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं।

प्रतिवादियों के 32 प्रतिशत बच्चे दंगों से प्रभावित हुए। लेकिन अधिकतर बच्चे प्रभावित नहीं हुए। शिक्षा स्तर से स्वतंत्र सभी माताओं ने अपने बच्चों की रक्षा करने की कोशिश की। वे विश्वस्त हो जाना चाहती हैं कि उनके बच्चों पर किसी स्थिति में बुरा असर न पड़े।

79.2 प्रतिशत प्रतिवादी इसके विरुद्ध हैं कि महिलाओं को साम्प्रदायिकता के खिलाफ लड़ना चाहिए। यह दर्शाता है कि भारत की महिलाओं के रवैये में परिवर्तन के लिए वर्तमान शिक्षा से अधिक कुछ करने की जरूरत है। यहां तक उच्चतम शिक्षित महिला भी नहीं मानतीं कि साम्प्रदायिकता से लड़ना महिलाओं के लिए जरूरी है। साम्प्रदायिकता से मुकाबला करने के लिए महिलाओं के रूख में आमूल-चूल परिवर्तन जरूरी है।

72.4 प्रतिशत महिलाएं विश्वास करती हैं कि साम्प्रदायिक शक्तियां उनके मन्तव्यों को कमजोर करती हैं। इसके बावजूद भी वे साम्प्रदायिकता से लड़ने को तैयार नहीं हैं।

41.6 प्रतिशत महिलाएं साम्प्रदायीकरण के लिए दोनों सम्प्रदायों हिन्दुओं और मुसलमानों को दोषी मानती हैं। 38.5 प्रतिशत निरक्षर महिलाएं मुसलमानों को और केवल 13.2 प्रतिशत महिलाएं साम्प्रदायीकरण के लिए राजनीति को दोषी ठहराती हैं।

अनुभाग 4

आय का प्रभाव

4.1 से 4.12 तक तालिका बम्बई दंगों के कारणों पर महिलाओं के उनकी आय के अनुसार विचारों को प्रस्तुत करती हैं।

63.7 प्रतिशत बेरोजगार महिलाएं मानती हैं कि बाबरी मस्जिद का गिरना दंगों का मुख्य कारण है। उच्च आय समूह में बाबरी मस्जिद गिराने और राजनीतिक पूर्व योजना के बीच विभाजन है। नगण्य प्रतिशत (0.8%) ने माना कि दंगों का कारण भवन निर्माता हैं।

विभिन्न आय समूहों की 80 प्रतिशत महिलाओं ने बाबरी मस्जिद के ढहाने का समर्थन नहीं किया। बेरोजगार या कम आय वाले समूहों को साम्प्रदायिक पार्टियों के प्रचार ने प्रभावित नहीं किया।

विभिन्न आय समूहों की 36.8 प्रतिशत महिलाएं मानती हैं कि बाबरी मस्जिद श्रीराम के जन्म स्थान पर स्थित है। विभिन्न समूहों से काफी संख्या में महिलाओं को श्रीराम के जन्म स्थान के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

1000 रुपये तक की आय वाली 33.3 प्रतिशत से अधिक महिलाएं दंगों से सीधे तौर पर प्रभावित हुईं, जबकि सभी आय समूहों की 67 प्रतिशत से अधिक महिलाएं अप्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित हुईं।

आमदनी के स्तरों से अलग हटकर 51.6 प्रतिशत ने धर्म को दंगों के लिए जिम्मेवार स्वीकार किया।

52 प्रतिशत बेरोजगार और 66.7 प्रतिशत बहुत कम आय वाला समूह सरकार, पुलिस और चुने गए प्रतिनिधियों की कार्रवाई से सन्तुष्ट था। उच्च स्तर की महिलाएं इन एजेन्सियों की कार्रवाई से सन्तुष्ट नहीं थीं।

आय के विभिन्न स्तरों की सभी महिलाओं का 56.8 प्रतिशत मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने के विरुद्ध है। बेरोजगार और कम आय स्तर की महिलाएं प्रचार से प्रभावित हैं।

88 प्रतिशत महिलाओं ने दैनिक जीवन की समस्याओं को धार्मिक मुद्दों से अधिक जरूरी माना। केवल 7.6 प्रतिशत ने धार्मिक-मुद्दों को अधिक महत्वपूर्ण माना।

उच्च आय स्तर के 50 प्रतिशत से अधिक बच्चे दंगों से प्रभावित हुए। वे साम्प्रदायिक हिंसा देखकर या सुनकर प्रभावित हुए। दंगों के दौरान उनकी बाहर निकलने की आजादी छिन गई। उच्च आय समूह के पास अधिक सूचनाएं थीं इसलिए बच्चे मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित थे। बाहर न आने-जाने के बन्धन ने भी उनको बुरी तरह प्रभावित किया।

सभी आय स्तरों की 79.2 प्रतिशत महिलाएं साम्प्रदायिक दंगों के खिलाफ लड़ने को तैयार नहीं हैं।

72.4 प्रतिशत महिलाएं इससे सहमत हैं कि साम्प्रदायिक हिंसा के बढ़ने से महिलाओं के उद्देश्य कमजोर होंगे। फिर भी वे साम्प्रदायिकता से लड़ने को तैयार नहीं हैं।

अधिकतर (41.6 प्रतिशत) महिलाएं साम्प्रदायिकता के लिए दोनों सम्प्रदायों, हिन्दू और मुस्लिम को दोषी मानती हैं। केवल 13.2 प्रतिशत साम्प्रदायीकरण के लिए राजनीतिज्ञों को जिम्मेवार ठहराती हैं।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि महिलाओं को साम्प्रदायिक प्रचार द्वारा आसानी से प्रभावित नहीं किया जा सकता। यद्यपि बहुत-सी महिलाएं विश्वास करती हैं कि बाबरी मस्जिद राम जन्मभूमि के स्थान पर स्थित है, लेकिन उसे गिराने के पक्ष में नहीं हैं। सभी जातियों की अधिकांश महिलाएं मुसलमानों को पाकिस्तान भेजने के खिलाफ हैं। महिलाओं के जीवन में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका है। लेकिन वे धर्म को राजनीतिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल के खिलाफ हैं। धार्मिक मुद्दों की अपेक्षा अपनी दैनिक जीवन की समस्याओं को ज्यादा अहमियत देती हैं। महिलाएं जागरूक हैं कि यदि साम्प्रदायिक शक्तियां मजबूत होंगी तो महिलाओं की स्थिति कमजोर होगी। लेकिन इसके बावजूद भी महिलाएं साम्प्रदायिकता के खिलाफ लड़ने की इच्छुक नहीं हैं। यह उनके जन्म-स्थान, शिक्षा, आय और जाति से इतर सभी महिलाओं का सच है। वे मानती हैं कि लड़ना अभी भी पुरुषों का अधिकार है। महिलाओं को समाज परिवर्तन में अपनी क्षमता का अहसास नहीं है।

यह अध्ययन यह भी दर्शाता है ́ महाराष्ट्र व उत्तर भारत की महिलाएं साम्प्रदायिक प्रचार से अधिक प्रभावित थीं। यद्यपि 27 प्रतिशत के करीब गुजराती और दक्षिण भारतीय मानती हैं कि मस्जिद राम के जन्म स्थान पर स्थित है लेकिन वे इसके गिराने के खिलाफ हैं। यह दर्शाता है कि उनका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक नहीं है।

शिक्षा महिलाओं के विचारों को प्रभावित करती है। शिक्षित महिलाओं ने

राजनीतिक पूर्व-योजना को दंगों का कारण माना है, और सरकार, पुलिस या चुने हुए प्रतिनिधियों की कार्रवाइयों से सन्तुष्ट नहीं हैं। शिक्षितों के पास अधिक सूचनाएं होती हैं इसलिए ऐसी महिलाएं स्थिति के प्रति सन्तुलित विचार रखती हैं।

अधिकांश महिलाएं समाज की शान्ति और सद्भाव को समाप्त करने वाली किसी कार्रवाई का समर्थन नहीं करतीं। महिलाएं भवन-निर्माताओं को दंगों का मुख्य जिम्मेवार नहीं मानतीं।

समाज विरोधी तत्वों के साथ मिलकर कुछ निहित स्वार्थों ने बम्बई शहर की शान्ति और भाईचारे को खतरा उत्पन्न किया है। लेकिन दिसम्बर 1992, और जनवरी 1993 के दंगों में घटित घटनाओं के प्रति सन्तुलित रवैया रखकर महिलाओं ने शहर में सन्देह के माहौल को समाप्त किया है।

महिलाओं को अपनी क्षमता के अहसास के लिए और अधिक जागरूकता की आवश्यकता है। यह एक बड़ी शक्ति है जो साम्प्रदायिकता से मुकाबला कर सकती है।

प्रश्नावली

1. नाम
2. उम्र
3. धर्म व जाति
4. विवाहित/ अविवाहित
5. शिक्षा का स्तर
6. मासिक आय
7. मराठी/गुजराती/उत्तर भारतीय/दक्षिण भारतीय
8. बम्बई में कब से रह रहे हैं : 1-5/5-10/10-15/15 वर्ष या इससे अधिक
9. साम्प्रदायिक दंगे क्यों हुए? क्योंकि :
   (1) बाबरी मस्जिद गिरने से
   (2) राजनीतिक उद्देश्यों से
   (3) भवन निर्माताओं ने
   (4) कोई पता नहीं
10. क्या आप बाबरी-मस्जिद गिराने के समर्थक हैं? हां/नहीं
11. क्या आप सोचते हैं कि श्रीराम का जन्म स्थान वही है जहां बाबरी मस्जिद खड़ी है? हां/नहीं/नहीं जानते/कह नहीं सकते।
12. क्या आप दंगों से प्रभावित हुए थे?

(1) प्रत्यक्ष
(2) अप्रत्यक्ष
(3) बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए

13. क्या आप सोचते हैं कि मुसलमानों को पाकिस्तान भेज देना चाहिए? हां/नहीं।
14. क्या आप सोचते हैं कि रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद जैसे धार्मिक मुद्दे दैनिक जीवन की समस्याओं से अधिक महत्वपूर्ण हैं? हां/नहीं।
15. क्या आप सोचते हैं कि इस दंगे ने आपके बच्चों को किसी तरह प्रभावित किया है? हां/नहीं।
16. महिलाएं साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार होती हैं तो क्या महिलाओं को साम्प्रदायिकता के खिलाफ नहीं लड़ना चाहिए?
17. दंगों के लिए आप किसे अधिक जिम्मेवार मानती हैं? हिन्दुओं को/ मुसलमानों को/ दोनों को/ राजनीति को/ गुण्डों को/ कोई पता नहीं।

बंबई दंगों (1992-93) को लेकर सर्वेक्षण

तालिका 1.1

बम्बई में दंगों का कारण (सामाजिक श्रेणी)

श्रेणी		बाबरी मस्जिद का गिराना	राजनीतिक पूर्व योजना	भवन निर्माता	कोई पता नहीं	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	47	23	2	5	77
	कॉलम प्रतिशत	61	29.9	2.6	6.5	30.8
मध्यम	संख्या	41	21	-	15	77
	कॉलम प्रतिशत	53.2	27.3	-	19.6	30.8
निम्न						
पिछड़ी	संख्या	41	18	-	5	29
	कॉलम प्रतिशत	61.2	26.9	-	11.9	26.8
अनुसूचित जातियां	संख्या	16	8	-	5	29
	कॉलम प्रतिशत	55.2	27.6	-	17.2	11.6
कॉलम कुल	संख्या	145	70	2	33	250
	प्रतिशत	58	28	8	13.2	100

तालिका 1.2

बाबरी मस्जिद ढहाने को समर्थन

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*कोई परवाह नहीं*	*पंक्ति कुल*
उच्च	संख्या	17	58	1	1	77
	पंक्ति प्रतिशत	22.1	75.3	1.3	1.3	30.8
	कॉलम प्रतिशत	37.0	29.0	33.3	100.0	-
मध्यम	संख्या	12	65	-	-	67
	पंक्ति प्रतिशत	15.6	84.4	-	-	30.8
	कॉलम प्रतिशत	26.1	32.5	-	-	-
निम्न						
पिछड़ी	संख्या	13	53	1	-	77
	पंक्ति प्रतिशत	19.4	79.1	1.5	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.7	12.0	33.3	-	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	4	24	1	-	67
	पंक्ति प्रतिशत	19.4	79.1	1.5	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	28.7	26.5	33.3	-	26.8
कॉलम कुल	संख्या	46	200	3	1	250
	प्रतिशत	18.4	80.0	1.2	4	100.0

तालिका 1.3

श्रीराम का जन्म स्थान

श्रेणी		हां	नहीं	नहीं जानते	कह नहीं सकते	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	29	9	21	18	77
	पंक्ति प्रतिशत	37.3	11.7	27.4	23.4	30.8
	कॉलम प्रतिशत	31.5	33.3	24.4	40.0	-
मध्यम	संख्या	30	10	31	6	77
	पंक्ति प्रतिशत	39.0	13.0	40.3	7.8	30.8
	कॉलम प्रतिशत	32.6	37.0	36.0	13.3	-
निम्न						
पिछड़ी	संख्या	26	3	27	11	77
	पंक्ति प्रतिशत	38.80	4.5	40.3	17.5	26.8
	कॉलम प्रतिशत	28.3	11.1	31.4	24.4	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	7	5	7	10	29
	पंक्ति प्रतिशत	24.1	17.2	24.1	34.5	11.6
	कॉलम प्रतिशत	7.6	18.5	8.1	22.2	-
कॉलम कुल	संख्या	92	27	86	45	250
	प्रतिशत	36.8	10.8	34.4	18.0	100.0

तालिका 1.4

दंगों से प्रभावित

श्रेणी		प्रत्यक्षतः प्रभावित	अप्रत्यक्ष प्रभावित	कोई प्रभावित नहीं	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	16	29	32	77
	पंक्ति प्रतिशत	20.8	37.7	41.6	30.8
	कॉलम प्रतिशत	33.3	43.3	23.7	-
मध्यम	संख्या	10	11	56	77
	पंक्ति प्रतिशत	13.0	14.3	72.7	30.8
	कॉलम प्रतिशत	20.8	16.4	41.5	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	19	12	36	67
	पंक्ति प्रतिशत	28.4	17.9	53.7	26.8
	कॉलम प्रतिशत	39.6	17.9	26.6	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	3	15	11	29
	पंक्ति प्रतिशत	10.3	51.7	37.9	11.6
	कॉलम प्रतिशत	6.3	22.4	8.1	-
कॉलम कुल	संख्या	48	67	135	250
	प्रतिशत	19.2	26.8	54.0	100.0

तालिका 1.5

धर्म दंगों का जिम्मेवार है

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
उच्च	संख्या	38	37	2	77
	पंक्ति प्रतिशत	49.4	48.1	2.6	30.8
	कॉलम प्रतिशत	29.5	32.2	33.3	-
मध्यम	संख्या	46	28	3	77
	पंक्ति प्रतिशत	59.7	36.4	3.9	30.8
	कॉलम प्रतिशत	35.7	24.3	50.0	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	33	33	1	67
	पंक्ति प्रतिशत	49.3	49.3	1.5	26.8
	कॉलम प्रतिशत	25.6	28.7	16.7	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	12	17	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	41.4	58.6	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	9.3	14.8	-	-
कॉलम कुल	संख्या	129	115	6	250
	प्रतिशत	51.6	46.0	2.4	100.0

तालिका 1.6

सरकार/पुलिस/चुने गए प्रतिनिधियों की कार्रवाई से सन्तुष्ट

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	26	47	4	77
	पंक्ति प्रतिशत	33.8	61.0	5.2	30.8
	कॉलम प्रतिशत	23.2	37.3	33.3	-
मध्यम	संख्या	46	29	2	77
	पंक्ति प्रतिशत	59.7	37.7	2.6	30.8
	कॉलम प्रतिशत	41.1	23.0	16.7	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	32	35	-	67
	पंक्ति प्रतिशत	27.6	51.7	20.7	11.6
	कॉलम प्रतिशत	7.1	11.9	50.0	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	8	15	6	29
	पंक्ति प्रतिशत	27.6	51.7	20.7	11.6
	कॉलम प्रतिशत	7.1	11.9	50.0	-
कॉलम कुल	संख्या	112	126	12	250
	प्रतिशत	44.8	50.4	4.8	100.0

तालिका 1.7

मुसलमानों को पाकिस्तान भेजना चाहिए

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	32	41	4	77
	पंक्ति प्रतिशत	41.6	53.2	5.2	30.8
	कॉलम प्रतिशत	30.5	29.5	80.0	-
मध्यम	संख्या	37	39	1	77
	पंक्ति प्रतिशत	48.1	50.6	1.3	30.8
	कॉलम प्रतिशत	35.2	27.9	20.0	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	26	41	-	67
	पंक्ति प्रतिशत	38.3	61.2	-	26.8
	कॉलम प्रतिशत	24.8	29.2	-	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	10	19	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	34.5	65.6	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	9.5	13.6	-	-
कॉलम कुल	संख्या	105	140	5	250
	प्रतिशत	42.0	56.0	2.0	100.0

तालिका 1.8

धार्मिक मुद्दे दिन-प्रतिदिन की समस्याओं से अधिक महत्वपूर्ण हैं

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	दोनों बराबर	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	3	70	-	4	77
	पंक्ति प्रतिशत	3.9	90.9	-	5.2	30.8
	कॉलम प्रतिशत	15.8	31.8	-	40.0	-
मध्यम	संख्या	5	68	1	3	77
	पंक्ति प्रतिशत	6.5	88.3	1.3	3.9	30.8
	कॉलम प्रतिशत	26.5	30.9	-	30.0	-
निम्न						
पिछड़ी	संख्या	11	53	-	3	67
	पंक्ति प्रतिशत	16.4	79.1	-	4.5	26.8
	कॉलम प्रतिशत	26.3	30.9	100.0	30.0	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	-	29	-	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	-	100.0	-	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	-	13.2	-	-	-
कॉलम कुल	संख्या	19	220	1	10	250
	प्रतिशत	7.6	88.0	4	4.0	100.0

तालिका 1.9

बच्चे दंगों से कैसे प्रभावित हुए

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*बिल्कुल नहीं*	*पंक्ति कुल*
उच्च	संख्या	23	26	28	77
	पंक्ति प्रतिशत	29.9	33.8	36.4	30.8
	कॉलम प्रतिशत	28.8	30.2	33.2	-
मध्यम	संख्या	18	33	26	77
	पंक्ति प्रतिशत	23.4	42.9	33.8	30.8
	कॉलम प्रतिशत	32.5	29.1	19.0	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	26	25	16	67
	पंक्ति प्रतिशत	38.8	37.3	23.9	26.8
	कॉलम प्रतिशत	32.5	29.1	19.0	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	13	2	14	29
	पंक्ति प्रतिशत	44.8	6.9	48.3	11.6
	कॉलम प्रतिशत	16.3	2.3	16.7	-
कॉलम कुल	संख्या	80	86	84	250
	प्रतिशत	32.0	34.4	33.6	100.0

तालिका 1.10

महिलाओं को साम्प्रदायिकता से लड़ना चाहिए

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
उच्च	संख्या	13	61	3	77
	पंक्ति प्रतिशत	16.9	79.2	3.9	30.8
	कॉलम प्रतिशत	35.1	30.8	20.0	-
मध्यम	संख्या	12	63	2	77
	पंक्ति प्रतिशत	15.6	81.8	2.6	30.8
	कॉलम प्रतिशत	32.4	31.8	13.3	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	8	57	2	67
	पंक्ति प्रतिशत	11.9	8.5	3.0	26.8
	कॉलम प्रतिशत	21.6	28.8	13.3	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	4	17	8	29
	पंक्ति प्रतिशत	13.8	58.6	27.6	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.8	8.6	53.3	-
कॉलम कुल	संख्या	37	198	15	250
	प्रतिशत	14.8	79.2	6.0	100.0

तालिका 1.11

महिलाओं के उद्देश्य कमजोर होंगे यदि साम्प्रदायिकता मजबूत होगी

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
उच्च	संख्या	53	14	10	77
	पंक्ति प्रतिशत	68.8	18.2	13.0	30.8
	कॉलम प्रतिशत	29.3	38.9	30.3	-
मध्यम	संख्या	61	10	6	77
	पंक्ति प्रतिशत	79.2	13.0	7.8	30.8
	कॉलम प्रतिशत	33.7	27.8	18.2	-
निम्न					
पिछड़ी	संख्या	52	8	7	67
	पंक्ति प्रतिशत	77.6	11.9	10.4	26.8
	कॉलम प्रतिशत	28.7	22.2	21.2	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	15	4	10	29
	पंक्ति प्रतिशत	51.7	13.8	34.5	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.3	11.1	30.3	-
कॉलम कुल	संख्या	181	36	33	250
	प्रतिशत	72.4	14.4	13.2	100.0

तालिका 1.12

साम्प्रदायीकरण के लिए कौन अधिक जिम्मेवार

श्रेणी		हिन्दू	मुसलमान	दोनों	राजनीति	गुण्डे	पता नहीं	कुल पंक्ति
उच्च	संख्या	5	27	25	11	-	9	77
	पंक्ति प्रतिशत	6.5	35.1	32.5	14.3	-	11.7	30.8
	कॉलम प्रतिशत	27.8	36.0	24.0	36.7	-	60.0	-
मध्यम	संख्या	8	16	38	11	2	2	77
	पंक्ति प्रतिशत	10.4	20.8	49.4	14.3	2.6	2.6	30.8
	कॉलम प्रतिशत	44.4	21.3	36.5	36.7	40.0	13.3	-
निम्न								
पिछड़ी	संख्या	3	24	27	6	3	4	67
	पंक्ति प्रतिशत	4.8	35.8	40.6	9.0	4.5	6.0	26.8
	कॉलम प्रतिशत	16.7	32.0	26.0	18.2	60.0	26.7	-
अनुसूचित जातियां	संख्या	2	8	14	5	-	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	51.7	13.8	34.5	11.6	-	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	11.1	10.7	13.5	15.2	-	-	-
कॉलम कुल	संख्या	18	75	104	33	5	15	250
	प्रतिशत	7.2	30.0	41.6	13.2	2.0	6.0	100.0

तालिका 2.1

बम्बई में दंगों का कारण (क्षेत्र-वार)

श्रेणी		बाबरी मस्जिद का गिरना	राजनीतिक पूर्व-योजना	भवन निर्माता	कोई पता नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	91	39	1	22	153
	पंक्ति प्रतिशत	59.5	25.5	0.7	14.4	61.2
	कॉलम प्रतिशत	61.5	58.2	50.0	66.7	-
गुजराती	संख्या	14	11	1	3	29
	पंक्ति प्रतिशत	48.3	37.9	3.4	10.3	11.6
	कॉलम प्रतिशत	9.5	16.4	50.0	66.7	-
उत्तर भारतीय	संख्या	19	7	-	3	29
	पंक्ति प्रतिशत	65.5	24.1	-	10.3	11.6
	कॉलम प्रतिशत	12.8	10.4	-	9.1	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	24	10	-	5	39
	पंक्ति प्रतिशत	61.5	25.6	-	12.8	15.6
	कॉलम प्रतिशत	16.2	14.9	-	15.2	-
कॉलम कुल	संख्या	148	67	2	33	250
	प्रतिशत	59.2	26.8	0.8	13.2	100.0

तालिका 2.2

बाबरी मस्जिद गिरने का समर्थन

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	कोई परवाह नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	31	120	2	-	153
	पंक्ति प्रतिशत	20.3	78.4	1.3	-	61.2
	कॉलमं प्रतिशत	67.4	60.0	66.7	-	-
गुजराती	संख्या	7	21	-	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	24.1	72.4	-	3.4	11.6
	कॉलम प्रतिशत	15.2	10.5	-	100.0	-
उत्तर भारतीय	संख्या	7	21	-	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	24.1	72.4	-	3.4	11.6
	कॉलम प्रतिशत	15.2	10.5	-	100.0	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	6	32	1	-	39
	पंक्ति प्रतिशत	15.4	82.1	2.6	-	15.6
	कॉलम प्रतिशत	13.0	16.0	33.3	-	-
कॉलम कुल	संख्या	46	200	3	1	250
	प्रतिशत	18.4	80.0	1.2	0.4	100.0

तालिका 2.3

श्रीराम का जन्मस्थान

श्रेणी		हां	नहीं	पता नहीं	कह नहीं सकते	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	58	18	53	24	153
	पंक्ति प्रतिशत	37.9	11.8	34.6	15.7	61.2
	कॉलम प्रतिशत	63.0	66.7	61.6	53.3	-
गुजराती	संख्या	8	3	10	8	29
	पंक्ति प्रतिशत	27.6	10.3	34.5	27.6	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.7	11.1	11.6	17.8	-
उत्तर भारतीय	संख्या	12	4	8	5	29
	पंक्ति प्रतिशत	41.4	13.8	27.6	17.2	11.6
	कॉलम प्रतिशत	13.0	14.8	9.3	11.1	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	14	2	15	8	39
	पंक्ति प्रतिशत	35.9	5.1	38.5	20.5	15.6
	कॉलम प्रतिशत	15.2	7.4	17.4	17.8	-
कॉलम कुल	संख्या	92	27	86	45	250
	प्रतिशत	36.8	10.8	34.4	18.0	100.0

तालिका 2.4

दंगों से प्रभावित

श्रेणी		प्रत्यक्षतः प्रभावित	अप्रत्यक्ष प्रभावित	अप्रभावित	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	34	45	74	153
	पंक्ति प्रतिशत	22.2	29.4	48.4	61.2
	कॉलम प्रतिशत	70.8	67.2	54.8	-
गुजराती	संख्या	4	7	18	29
	पंक्ति प्रतिशत	13.8	24.1	62.1	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.3	10.4	13.3	-
उत्तर भारतीय	संख्या	4	5	20	29
	पंक्ति प्रतिशत	13.8	17.2	69.0	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.3	7.5	14.8	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	6	10	23	39
	पंक्ति प्रतिशत	15.4	25.6	59.0	15.6
	कॉलम प्रतिशत	12.5	14.9	17.0	-
कॉलम कुल	संख्या	48	67	135	250
	प्रतिशत	19.2	26.8	54.0	100.0

तालिका 2.5

धर्म साम्प्रदायिक दंगों के लिए जिम्मेवार है

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	80	69	4	153
	पंक्ति प्रतिशत	52.3	45.1	2.6	61.2
	कॉलम प्रतिशत	62.0	60.0	66.7	-
गुजराती	संख्या	14	15	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	48.3	51.7	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.9	13.0	-	-
उत्तर भारतीय	संख्या	16	12	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	55.2	41.4	3.4	11.6
	कॉलम प्रतिशत	12.4	10.4	16.7	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	19	19	1	39
	पंक्ति प्रतिशत	48.7	48.7	2.6	15.6
	कॉलम प्रतिशत	14.7	16.5	16.7	-
कॉलम कुल	संख्या	129	115	6	250
	प्रतिशत	51.6	46.0	2.4	100.0

तालिका 2.6

सरकार/पुलिस/चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा उठाए गए कदमों से खुश

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	69	76	8	153
	पंक्ति प्रतिशत	45.1	49.7	5.2	61.2
	कॉलम प्रतिशत	10.7	11.9	16.7	-
गुजराती	संख्या	12	15	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	41.4	51.7	6.9	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.7	11.9	16.7	-
उत्तर भारतीय	संख्या	12	15	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	41.4	51.7	6.9	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.7	11.9	16.7	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	19	20	-	39
	पंक्ति प्रतिशत	48.7	51.3	-	15.6
	कॉलम प्रतिशत	17.0	15.9	-	-
कॉलम कुल	संख्या	112	126	12	250
	प्रतिशत	44.8	50.4	4.8	100.0

तालिका 2.7

मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाना चाहिए

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	71	79	3	153
	पंक्ति प्रतिशत	46.4	51.6	2.0	61.2
	कॉलम प्रतिशत	67.6	56.4	60.0	-
गुजराती	संख्या	11	17	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	37.9	58.6	3.4	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.5	12.1	20.0	-
उत्तर भारतीय	संख्या	11	18	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	37.9	62.1	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.5	12.9	-	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	12	26	1	39
	पंक्ति प्रतिशत	30.8	66.7.	2.6	15.6
	कॉलम प्रतिशत	11.4	18.6	20.0	-
कॉलम कुल	संख्या	105	140	5	250
	प्रतिशत	42.0	56.0	2.0	100.0

तालिका 2.8

धार्मिक मुद्दे दैनिक जीवन की समस्याओं से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	कोई परवाह नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	13	133	1	6	153
	पंक्ति प्रतिशत	8.5	86.9	0.7	3.9	61.2
	कॉलम प्रतिशत	68.4	60.5	100.0	60.0	-
गुजराती	संख्या	1	28	-	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	3.4	96.6	-	-	11.6
	कॉलम प्रतिशत	5.3	12.7	-	-	-
उत्तर भारतीय	संख्या	3	24	-	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	10.3	82.8	-	6.9	11.6
	कॉलम प्रतिशत	15.8	10.9	-	20.0	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	2	35	-	2	39
	पंक्ति प्रतिशत	5.1	89.7	-	5.1	15.6
	कॉलम प्रतिशत	10.5	15.9	-	20.0	-
कॉलम कुल	संख्या	19	220	1	10	250
	प्रतिशत	7.6	88.0	0.4	4.0	100.0

तालिका 2.9

दंगों से बच्चे कैसे प्रभावित हुए

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*बिल्कुल नहीं*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	50	48	55	153
	पंक्ति प्रतिशत	32.7	31.4	35.9	61.2
	कॉलम प्रतिशत	62.5	55.8	65.5	-
गुजराती	संख्या	13	9	7	29
	पंक्ति प्रतिशत	44.8	31.0	24.1	11.6
	कॉलम प्रतिशत	16.3	10.5	8.3	-
उत्तर भारतीय	संख्या	7	15	7	29
	पंक्ति प्रतिशत	24.1	51.7	24.1	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.8	17.4	8.3	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	10	14	15	39
	पंक्ति प्रतिशत	25.6	35.9	38.5	15.6
	कॉलम प्रतिशत	12.5	16.3	17.9	-
कॉलम कुल	संख्या	80	86	84	250
	प्रतिशत	32.0	34.4	33.6	100.0

तालिका 2.10

महिलाओं को साम्प्रदायिकता के खिलाफ लड़ना चाहिए

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	25	117	11	153
	पंक्ति प्रतिशत	16.3	76.5	7.2	61.2
	कॉलम प्रतिशत	67.6	59.1	73.3	-
गुजराती	संख्या	3	25	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	10.3	86.2	3.4	11.6
	कॉलम प्रतिशत	8.1	12.6	6.7	-
उत्तर भारतीय	संख्या	1	25	3	29
	पंक्ति प्रतिशत	3.4	86.2	10.3	11.6
	कॉलम प्रतिशत	2.7	12.6	20.0	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	8	31	-	39
	पंक्ति प्रतिशत	20.5	79.5	-	15.6
	कॉलम प्रतिशत	21.6	15.7	-	-
कॉलम कुल	संख्या	37	198	15	250
	प्रतिशत	14.8	79.2	6.00	100.0

तालिका 2.11

यदि साम्प्रदायिक शक्तियां शक्तिशाली हुईं, महिलाओं के उद्देश्य कमजोर होंगे

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	108	28	17	153
	पंक्ति प्रतिशत	70.6	18.3	11.1	61.2
	कॉलम प्रतिशत	59.7	77.8	51.5	-
गुजराती	संख्या	19	3	7	29
	पंक्ति प्रतिशत	65.5	10.3	24.1	11.6
	कॉलम प्रतिशत	10.5	8.3	21.2	-
उत्तर भारतीय	संख्या	24	-	5	29
	पंक्ति प्रतिशत	82.8	-	17.2	11.6
	कॉलम प्रतिशत	13.3	-	15.2	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	30	5	4	39
	पंक्ति प्रतिशत	76.9	12.8	10.3	15.6
	कॉलम प्रतिशत	16.6	13.9	12.1	-
कॉलम कुल	संख्या	181	36	33	250
	प्रतिशत	72.4	14.4	13.2	100.0

तालिका 2.12

साम्प्रदायिकता के लिए कौन अधिक जिम्मेवार है

श्रेणी		हिन्दू	मुसलमान	दोनों	राजनीति	गुण्डे	पता नहीं	कुल पंक्ति
मराठी	संख्या	8	55	67	16	2	5	153
	पंक्ति प्रतिशत	5.2	35.9	43.7	10.5	1.3	3.3	61.2
	कॉलम प्रतिशत	44.4	73.3	64.42	48.48	40.0	33.3	-
गुजराती	संख्या	2	8	11	6	-	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	6.9	27.6	37.9	20.7	-	6.9	11.6
	कॉलम प्रतिशत	11.1	10.7	1.57	18.18	-	13.3	-
उत्तर भारतीय	संख्या	3	9	8	4	1	4	29
	पंक्ति प्रतिशत	10.3	31.0	27.5	13.8	3.5	13.8	11.6
	कॉलम प्रतिशत	16.7	12.0	7.69	12.12	20.0	26.7	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	5	3	18	7	2	4	39
	पंक्ति प्रतिशत	12.8	7.7	46.2	18.0	5.2	10.3	15.6
	कॉलम प्रतिशत	27.8	4.0	17.30	21.21	40.0	26.7	-
कॉलम कुल	संख्या	18	75	104	33	5	15	250
	प्रतिशत	7.2	30.0	41.6	13.2	2.0	6.0	100.0

तालिका 3.1

साम्प्रदायिक दंगों के कारण (शिक्षा पर आधारित)

श्रेणी		बाबरी मस्जिद का गिरना	राजनीतिक पूर्व-योजना	भवन निर्माता	कोई पता नहीं	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	26	3	2	8	39
	पंक्ति प्रतिशत	66.7	7.7	5.1	20.5	15.6
	कॉलम प्रतिशत	17.3	4.6	50	25.8	-
1–5 कक्षा	संख्या	8	-	-	1	9
	पंक्ति प्रतिशत	88.9	-	-	11.1	3.6
	कॉलम प्रतिशत	5.3	-	-	3.2	-
6–10 कक्षा	संख्या	67	22	1	17	107
	पंक्ति प्रतिशत	62.6	20.6	0.9	15.9	42.8
	कॉलम प्रतिशत	44.7	33.9	25	54.8	-
11–12	संख्या	12	9	1	2	24
	पंक्ति प्रतिशत	50	37.5	4.2	8.3	9.6
	कॉलम प्रतिशत	8	13.8	25	6.5	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/ व्यावसायिक	संख्या	37	31	-	3	71
	पंक्ति प्रतिशत	52.6	43.6	-	4.2	28.4
	कॉलम प्रतिशत	24.7	47.7	-	9.7	-
कॉलम कुल	संख्या	150	65	4	31	250
	प्रतिशत	60	26	1.6	12.4	100.0

तालिका 3.2

बाबरी मस्जिद को गिराने का निर्णय

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	कोई परवाह नहीं	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	16	22	1	-	39
	पंक्ति प्रतिशत	41.0	56.4	2.6	7	15.6
	कॉलम प्रतिशत	34.8	11.0	33.3	-	-
1–4 कक्षा	संख्या	-	9	-	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	-	100.0	-	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	-	4.5	-	-	-
5–10 कक्षा	संख्या	18	89	-	-	107
	पंक्ति प्रतिशत	16.8	83.2	-	-	42.8
	कॉलम प्रतिशत	39.1	44.5	-	-	-
11–12	संख्या	3	20	1	-	24
	पंक्ति प्रतिशत	12.5	83.3	4.2	-	9.6
	कॉलम प्रतिशत	39.1	44.5	-	-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/ व्यावसायिक	संख्या	9	60	1	1	71
	पंक्ति प्रतिशत	12.7	84.5	1.4	1.4	28.4
	कॉलम प्रतिशत	19.6	30.0	33.3	100.0	-
कॉलम कुल	संख्या	46	200	3	1	250
	प्रतिशत	18.4	80.0	1.2	0.4	100.0

तालिका 3.3

श्रीराम का जन्म स्थान

श्रेणी		हां	नहीं	जानकारी नहीं	कह नहीं सकते	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	15	3	16	5	39
	पंक्ति प्रतिशत	38.5	7.7	41.0	12.8	15.6
	कॉलम प्रतिशत	16.3	11.1	18.6	11.1	-
1–5 कक्षा	संख्या	2	-	7	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	22.2	-	77.8	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	2.2	-	8.1	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	44	11	38	14	107
	पंक्ति प्रतिशत	41.1	10.3	35.5	13.1	42.8
	कॉलम प्रतिशत	47.8	40.7	44.2	31.1	-
11–12	संख्या	11	1	10	2	24
	पंक्ति प्रतिशत	45.8	4.2	41.7	8.3	9.6
	कॉलम प्रतिशत	12.0	3.7	11.6	4.4-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/ व्यावसायिक	संख्या	20	12	15	24	71
	पंक्ति प्रतिशत	28.2	16.9	21.1	33.8	28.4
	कॉलम प्रतिशत	21.7	44.4	17.4	53.3	-
कॉलम कुल	संख्या	92	27	86	45	250
	प्रतिशत	36.8	10.8	34.4	18.0	100.0

तालिका 3.4

दंगों से प्रभावित

श्रेणी		प्रत्यक्षतः प्रभावित	अप्रत्यक्ष प्रभावित	अप्रभावित	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	13	11	15	39
	पंक्ति प्रतिशत	33.3	28.2	38.5	15.6
	कॉलम प्रतिशत	27.1	16.4	11.1	-
11–5 कक्षा	संख्या	1	-	8	9
	पंक्ति प्रतिशत	11.1	-	88.9	3.6
	कॉलम प्रतिशत	2.1	-	5.9	-
6–10 कक्षा	संख्या	19	16	72	107
	पंक्ति प्रतिशत	17.8	15.0	67.3	42.8
	कॉलम प्रतिशत	39.6	23.9	53.3	-
11–12	संख्या	7	6	11	24
	पंक्ति प्रतिशत	29.2	25.0	45.8	9.6
	कॉलम प्रतिशत	14.6	9.0	8.1	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	8	34	29	71
	पंक्ति प्रतिशत	11.3	47.9	40.8	28.4
	कॉलम प्रतिशत	16.7	50.7	21.5	-
कॉलम कुल	संख्या	48	67	135	250
	प्रतिशत	19.2	26.8	54.0	100.0

तालिका 3.5

धर्म साम्प्रदायिक दंगों का जिम्मेवार है

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	17	20	2	39
	पंक्ति प्रतिशत	43.6	51.3	5.1	15.6
	कॉलम प्रतिशत	13.2	17.4	33.3	-
1–5 कक्षा	संख्या	7	2	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	77.8	22.2	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	5.4	37.4	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	61	43	3	107
	पंक्ति प्रतिशत	57.0	40.2	2.8	42.8
	कॉलम प्रतिशत	47.3	37.4	50.0	-
11–12	संख्या	10	14	-	24
	पंक्ति प्रतिशत	41.7	58.3	-	9.6
	कॉलम प्रतिशत	7.8	12.2	-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	34	36	1	71
	पंक्ति प्रतिशत	47.9	50.7	1.4	28.4
	कॉलम प्रतिशत	26.4	31.3	16.7	-
कॉलम कुल	संख्या	129	115	6	250
	प्रतिशत	51.6	46.0	2.4	100.0

तालिका 3.6

सरकार/पुलिस/चुने हुए प्रतिनिधियों के कार्यों से खुश हैं

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
निरक्षर	संख्या	19	17	3	39
	पंक्ति प्रतिशत	48.7	43.6	7.7	15.6
	कॉलम प्रतिशत	17.0	13.5	25.0	-
1–5 कक्षा	संख्या	6	3	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	66.7	33.3	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	5.4	2.4	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	58	46	3	107
	पंक्ति प्रतिशत	54.2	43.0	2.8	42.8
	कॉलम प्रतिशत	51.8	36.5	25.0	-
11–12	संख्या	10	14	-	24
	पंक्ति प्रतिशत	41.7	58.3	-	9.6
	कॉलम प्रतिशत	8.9	11.1	-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	19	46	6	71
	पंक्ति प्रतिशत	26.8	64.8	8.5	28.4
	कॉलम प्रतिशत	17.0	36.5	50.0	-
कॉलम कुल	संख्या	112	126	12	250
	प्रतिशत	44.8	50.4	4.8	100.0

तालिका 3.7

मुसलमानों को पाकिस्तान जाना चाहिए

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	22	17	-	39
	पंक्ति प्रतिशत	56.4	43.6	-	15.6
	कॉलम प्रतिशत	21.0	12.1	-	-
1–5 कक्षा	संख्या	5	4	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	55.6	44.4	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	4.8	2.9	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	50	17	-	107
	पंक्ति प्रतिशत	46.7	53.3	-	42.8
	कॉलम प्रतिशत	47.6	40.7	-	-
11–12	संख्या	7	17	-	24
	पंक्ति प्रतिशत	29.6	63.4	-	28.4
	कॉलम प्रतिशत	6.7	12.1	-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	21	45	5	71
	पंक्ति प्रतिशत	29.5	63.5	7.0	28.4
	कॉलम प्रतिशत	20.0	32.1	100.0	-
कॉलम कुल	संख्या	105	140	5	250
	प्रतिशत	42.0	56.0	2.0	100.0

तालिका 3.8

धार्मिक मुद्दे दैनिक समस्याओं से अधिक महत्वपूर्ण है

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	दोनों बराबर	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	2	34	-	3	39
	पंक्ति प्रतिशत	5.1	87.2	-	7.7	15.6
	कॉलम प्रतिशत	10.5	15.5	-	30.0	-
1–5 कक्षा	संख्या	1	8	-	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	11.1	88.9	-	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	5.3	3.6	-	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	14	87	1	5	107
	पंक्ति प्रतिशत	13.1	81.3	0.9	4.7	42.8
	कॉलम प्रतिशत	73.7	39.5	100.0	50.0	-
11–12	संख्या	-	24	-	-	24
	पंक्ति प्रतिशत	-	100.0	-	-	9.6
	कॉलम प्रतिशत	-	10.9	-	-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	2	67	-	2	71
	पंक्ति प्रतिशत	2.8	94.4	-	2.8	28.4
	कॉलम प्रतिशत	10.5	30.5	-	20.0	-
कॉलम कुल	संख्या	19	220	1	10	250
	प्रतिशत	7.6	88.0	0.4	4.0	100.0

तालिका 3.9

दंगे से बच्चे प्रभावित हुए

श्रेणी		हां	नहीं	बिल्कुल नहीं	पंक्ति कुल
निरक्षर	संख्या	18	19	2	39
	पंक्ति प्रतिशत	46.2	48.7	5.1	15.6
	कॉलम प्रतिशत	22.5	22.1	2.4	-
1–5 कक्षा	संख्या	5	3	1	9
	पंक्ति प्रतिशत	55.6	33.3	11.1	3.6
	कॉलम प्रतिशत	6.3	3.5	1.2	-
6–10 कक्षा	संख्या	24	44	39	107
	पंक्ति प्रतिशत	22.4	4.1	36.4	42.8
	कॉलम प्रतिशत	30.0	51.2	46.4	-
11–12	संख्या	8	6	10	24
	पंक्ति प्रतिशत	33.3	25.0	41.7	9.6
	कॉलम प्रतिशत	10.0	7.0	11.9	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	25	14	32	71
	पंक्ति प्रतिशत	35.2	19.7	45.1	28.4
	कॉलम प्रतिशत	31.3	16.3	38.1	-
कॉलम कुल	संख्या	80	86	84	250
	प्रतिशत	32.0	34.4	33.6	100.0

तालिका 3.10

महिलाओं को साम्प्रदायिकता से लड़ना चाहिए

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
निरक्षर	संख्या	5	31	3	39
	पंक्ति प्रतिशत	12.8	79.5	7.7	15.6
	कॉलम प्रतिशत	13.5	15.7	20.0	-
1–5 कक्षा	संख्या	1	8	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	11.1	88.9	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	2.7	4.0	-	3.6
6–10 कक्षा	संख्या	15	86	6	107
	पंक्ति प्रतिशत	14.0	80.4	5.6	42.8
	कॉलम प्रतिशत	40.5	43.5	40.0	-
11–12	संख्या	8	6	10	24
	पंक्ति प्रतिशत	33.3	25.0	41.7	9.6
	कॉलम प्रतिशत	10.0	7.0	11.9	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	12	53	6	71
	पंक्ति प्रतिशत	16.9	74.6	8.5	28.4
	कॉलम प्रतिशत	32.4	26.8	40.0	-
कॉलम कुल	संख्या	37	198	15	250
	प्रतिशत	14.87	9.2	6.0	100.0

तालिका 3.11

साम्प्रदायिक शक्ति मजबूत हुई तो महिलाओं के उद्देश्य कमजोर होंगे

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
निरक्षर	संख्या	22	7	10	39
	पंक्ति प्रतिशत	56.4	17.9	25.6	15.6
	कॉलम प्रतिशत	12.2	19.4	30.3	-
1–5 कक्षा	संख्या	8	1	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	88.9	11.1	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	4.4	2.8	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	84	12	11	107
	पंक्ति प्रतिशत	78.5	11.2	10.3	42.8
	कॉलम प्रतिशत	46.4	33.3	33.3	-
11–12	संख्या	21	1	2	24
	पंक्ति प्रतिशत	87.5	4.2	8.3	9.6
	कॉलम प्रतिशत	11.6	2.8	6.1	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	46	15	10	71
	पंक्ति प्रतिशत	64.8	21.1	14.1	28.4
	कॉलम प्रतिशत	25.4	41.7	30.3	-
कॉलम कुल	संख्या	181	36	33	250
	प्रतिशत	72.4	14.4	13.2	100.0

तालिका 3.12

साम्प्रदायीकरण के लिए अधिक जिम्मेवार कौन है?

श्रेणी		हिन्दू	मुसलमान	दोनों	राजनीति	गुण्डे	कुछ नहीं पता	कुल पंक्ति
निरक्षर	संख्या	5	15	12	1	-	6	39
	पंक्ति प्रतिशत	2.8	38.5	30.7	2.6	-	15.4	15.6
	कॉलम प्रतिशत	27.8	20.0	11.5	3.0	-	40.0	-
1–5 कक्षा	संख्या	-	3	5	1	-	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	-	33.3	55.6	11.1	-	-	3.6
	कॉलम प्रतिशत	-	4.0	4.8	3.0	-	-	-
6–10 कक्षा	संख्या	8	34	46	13	3	3	107
	पंक्ति प्रतिशत	7.5	31.8	43	12.1	2.8	2.8	42.8
	कॉलम प्रतिशत	44.4	45.3	44.2	39.4	60.0	20.0	-
11–12	संख्या	1	7	10	4	2	-	24
	पंक्ति प्रतिशत	4.2	29.2	41.7	16.7	8.4	-	9.6
	कॉलम प्रतिशत	5.6	9.3	9.6	12.1	40.4	-	-
स्नातक/स्नातकोत्तर/व्यावसायिक	संख्या	4	16	31	14	-	6	71
	पंक्ति प्रतिशत	5.6	22.5	43.7	19.7	-	8.5	28.4
	कॉलम प्रतिशत	22.2	21.3	29.8	42.4	-	40.0	-
कॉलम कुल	संख्या	18	75	104	33	5	15	250
	प्रतिशत	7.2	30.0	41.6	13.2	2.0	6.0	100.0

तालिका 4.1

साम्प्रदायिक दंगों के कारण (रोजगार की श्रेणी)

श्रेणी		बाबरी मस्जिद का गिराना	राजनीतिक पूर्व योजना	भवन निर्माता	कोई विचार नहीं	पंक्ति कुल
बेरोजगार		65	19	-	18	102
	पंक्ति प्रतिशत	63.7	18.6	-	17.7	40.8
500 रु. से कम	संख्या	7	1	-	1	9
	पंक्ति प्रतिशत	77.8	11.1	-	11.1	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	49	19	2	12	62
	पंक्ति प्रतिशत	59.8	23.2	2.4	14.6	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	10	10	-	1	21
	पंक्ति प्रतिशत	47.6	47.6	-	4.8	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	3	4	-	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	42.9	57.1	-	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	14	14	-	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	48.30	38.3	-	3.4	11.6
कॉलम कुल	संख्या	148	67	2	33	250
	प्रतिशत	59.2	26.8	0.89	13.2	100.0

- तालिका 4.1 से 4.12 अध्याय 7 के अनुभाग-4 से सम्बन्धित हैं।

तालिका 4.2

बाबरी मस्जिद गिराने के समर्थक

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	कोई परवाह नहीं	पंक्ति कुल
बेरोजगार	15	87	-	-	102	
	पंक्ति प्रतिशत	14.7	85.3	-	-	40.8
500 रु. से कम	संख्या	3	6	-	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	33.3	66.7	-	-	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	21	59	2	-	82
	पंक्ति प्रतिशत	25.6	72.0	-	-	32
1000 से 2000 रु.	संख्या	1	20	-	-	21
	पंक्ति प्रतिशत	25.6	72.0	2.4	-	32.8
2001 से 2500 रु.	संख्या	2	5	-	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	28.6	71.4	-	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	4	23	1	1	29
	पंक्ति प्रतिशत	13.8	79.3	3.4	3.4	11.6
कॉलम कुल	संख्या	46	200	3	1	250
	प्रतिशत	18.4	80.0	1.2	0.4	100.0

तालिका-4.3

श्रीराम का जन्म-स्थान वहीं है

श्रेणी		हां	नहीं	नहीं जानते	कह नहीं सकते	पंक्ति कुल
बेरोजगार	39	6	42	15	102	
	पंक्ति प्रतिशत	38.2	5.9	41.2	14.7	40.8
500 रु. से कम	संख्या	3	-	4	2	9
	पंक्ति प्रतिशत	33.3	-	44.4	22.2	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	35	8	26	13	82
	पंक्ति प्रतिशत	42.7	9.8	31.7	15.9	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	4	4	7	1	21
	पंक्ति प्रतिशत	19.0	19.0	33.3	28.6	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	-	2	4	1	7
	पंक्ति प्रतिशत	-	28.6	57.1	14.3	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	11	7	3	8	29
	पंक्ति प्रतिशत	37.9	24.1	10.3	27.6	11.6
कॉलम कुल	संख्या	92	27	86	45	250
	प्रतिशत	36.8	10.8	34.4	18.0	100.0

तालिका 4.4

दंगों से प्रभावित

श्रेणी		प्रत्यक्षतः प्रभावित	अप्रत्यक्ष प्रभावित	अप्रभावित	पंक्ति कुल
बेरोजगार		7	14	81	102
	पंक्ति प्रतिशत	6.9	13.7	79.4	40.8
500 रु. से कम	संख्या	3	-	6	9
	पंक्ति प्रतिशत	33.3	-	66.7	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	29	21	32	82
	पंक्ति प्रतिशत	35.4	25.6	39.0	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	2	14	5	21
	पंक्ति प्रतिशत	9.5	66.7	23.8	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	1	5	1	7
	पंक्ति प्रतिशत	14.3	71.4	14.3	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	6	13	10	29
	पंक्ति प्रतिशत	20.7	44.8	34.5	11.6
कॉलम कुल	संख्या	48	67	135	250
	प्रतिशत	19.2	26.8	54.0	100.0

तालिका 4.5

धर्म दंगों का जिम्मेवार है

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
		44	3	102	
बेरोजगार	55				
	पंक्ति प्रतिशत	53.9	43.1	2.9	20.9
500 रु. से कम	संख्या	5	3	1	9
	पंक्ति प्रतिशत	55.6	33.3	11.1	3.9
500 से 1000 रु.	संख्या	46	35	1	82
	पंक्ति प्रतिशत	56.1	42.7	1.2	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	3	18	-	21
	पंक्ति प्रतिशत	14.3	85.7	-	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	5	2	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	71.4	28.6	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	15	13	1	21
	पंक्ति प्रतिशत	51.7	44.8	3.4	11.6
कॉलम कुल	संख्या	129	115	6	250
	प्रतिशत	51.6	46.8	2.4	100.0

तालिका 4.6

सरकार/पुलिस/चुने गए प्रतिनिधियों की कार्रवाई से खुश

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
बेरोजगार	53	45	4	102	
	पंक्ति प्रतिशत	52.0	44.1	3.9	20.9
500 रु. से कम	संख्या	6	3	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	66.7	33.3	-	3.9
500 से 1000 रु.	संख्या	39	40	3	82
	पंक्ति प्रतिशत	47.6	48.8	3.7	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	4	14	3	21
	पंक्ति प्रतिशत	19.0	66.7	14.3	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	3	4	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	42.9	57.1	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	7	20	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	24.1	60.0	6.9	11.6
कॉलम कुल	संख्या	112	126	12	250
	प्रतिशत	44.8	50.4	4.8	100.0

तालिका 4.7

मुसलमान पाकिस्तान भेजे जाएं

श्रेणी		*हां*	*नहीं*	*कोई टिप्पणी नहीं*	*पंक्ति कुल*
बेरोजगार		43	58	1	102
	पंक्ति प्रतिशत	42.2	56.9	1.0	40.8
500 रु. से कम	संख्या	4	5	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	44.4	55.6	-	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	39	42	1	82
	पंक्ति प्रतिशत	47.6	51.2	1.2	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	6	14	1	21
	पंक्ति प्रतिशत	28.6	66.7	4.8	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	3	4	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	42.9	57.1	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	10	17	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	34.5	58.6	6.9	11.6
कॉलम कुल	संख्या	105	140	5	250
	प्रतिशत	42.0	56.0	2.0	100.0

तालिका 4.8

धार्मिक मुद्दे दैनिक जीवन की समस्याओं से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	दोनों बराबर	पंक्ति कुल
बेरोजगार	10	90	-	2	102	
	पंक्ति प्रतिशत	9.8	88.2	-	2.0	40.8
500 रु. से कम	संख्या	1	8	-	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	11.1	88.9	-	-	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	6	68	1	7	82
	पंक्ति प्रतिशत	7.3	82.9	1.2	8.5	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	2	18	-	1	21
	पंक्ति प्रतिशत	9.5	85.7	-	4.8	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	-	7	-	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	-	100.0	-	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	-	29	-	-	29
	पंक्ति प्रतिशत	-	100.0	-	-	11.6
कॉलम कुल	संख्या	19	220	1	10	250
	प्रतिशत	7.6	88.0	0.4	4.0	100.0

तालिका 4.9

दंगों से बच्चे प्रभावित हुए

श्रेणी		हां	नहीं	बिल्कुल नहीं	पंक्ति कुल
बेरोजगार		20	54	28	102
	पंक्ति प्रतिशत	19.6	52.9	27.5	40.8
500 रु. से कम	संख्या	4	2	43	9
	पंक्ति प्रतिशत	44.4	22.2	33.3	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	34	17	31	82
	पंक्ति प्रतिशत	41.5	20.7	37.8	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	3	3	15	21
	पंक्ति प्रतिशत	14.3	14.3	71.4	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	4	1	2	7
	पंक्ति प्रतिशत	57.1	14.3	28.6	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	4	1	2	7
	पंक्ति प्रतिशत	57.1	14.3	28.6	8.4
कॉलम कुल	संख्या	80	86	84	250
	प्रतिशत	32.0	34.4	33.6	100.0

तालिका 4.10

महिलाओं को साम्प्रदायिकता से लड़ना चाहिए

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
बेरोजगार		21	75	6	102
	पंक्ति प्रतिशत	20.6	73.5	5.9	40.8
500 रु. से कम	संख्या	2	7	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	22.2	77.8	-	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	6	72	4	82
	पंक्ति प्रतिशत	7.3	87.8	4.9	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	2	16	3	21
	पंक्ति प्रतिशत	9.5	76.2	14.3	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	1	6	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	14.3	85.7	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	1	6	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	17.2	75.9	6.9	11.6
कॉलम कुल	संख्या	37	198	15	250
	प्रतिशत	14.8	79.2	6.0	100.0

तालिका 4.11

साम्प्रदायीक शक्तियां मजबूत हुई तो महिलाओं के उद्देश्य कमजोर होंगे

श्रेणी		हां	नहीं	कोई टिप्पणी नहीं	पंक्ति कुल
बेरोजगार		86	6	10	102
	पंक्ति प्रतिशत	84.3	5.9	9.8	40.8
500 रु. से कम	संख्या	9	-	-	9
	पंक्ति प्रतिशत	100.0	-	-	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	45	19	18	82
	पंक्ति प्रतिशत	54.9	23.2	22.0	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	13	5	3	21
	पंक्ति प्रतिशत	61.9	23.8	14.3	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	5	2	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	61.9	23.8	14.3	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	23	4	2	29
	पंक्ति प्रतिशत	79.3	13.8	6.9	11.6
कॉलम कुल	संख्या	181	36	33	250
	प्रतिशत	72.4	14.4	13.2	100.0

तालिका 4.12

साम्प्रदायीकरण के लिए कौन जिम्मेवार है?

श्रेणी		हिन्दू	मुसलमान	दोनों	राजनीति	गुण्डे	कुछ नहीं पता	कुल पंक्ति
बेरोजगार	10	23	48	12	4	5	102	
	पंक्ति प्रतिशत	9.8	22.5	47	11.8	3.9	4.9	40.8
500 रु. से कम	संख्या	1	2	2	3	-	1	9
	पंक्ति प्रतिशत	11.1	22.2	22.2	33.3	-	11.1	3.6
500 से 1000 रु.	संख्या	3	34	30	11	-	4	82
	पंक्ति प्रतिशत	3.7	41.5	36.6	13.2	-	4.9	32.8
1000 से 2000 रु.	संख्या	1	6	10	2	1	1	21
	पंक्ति प्रतिशत	4.8	28.6	47.7	9.5	4.8	4.8	8.4
2001 से 2500 रु.	संख्या	-	2	4	1	-	-	7
	पंक्ति प्रतिशत	-	28.6	57.1	14.3	-	-	2.8
2501 और इससे अधिक	संख्या	3	8	10	4	-	4	29
	पंक्ति प्रतिशत	10.3	27.6	34.5	13.8	-	13.8	11.6
कॉलम कुल	संख्या	18	75	104	33	5	15	250
	प्रतिशत	7.2	30.0	41.5	13.2	2.0	6.0	100.0

अध्याय 8

साम्प्रदायिकता और औद्योगिक श्रमिक

6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या में, धार्मिक कट्टर लोगों द्वारा पूर्व-योजना के तहत बाबरी मस्जिद को गिराना केवल राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत पर बदनुमा दाग ही नहीं है, बल्कि इससे देश की सदियों पुरानी धर्मनिरपेक्ष परम्पराओं-मान्यताओं को भी ठेस पहुंची है। यह घिनौनी घटना महीनों के साम्प्रदायिक प्रचार अभियान का परिणाम था। हिन्दुत्ववादी शक्तियों और संघ परिवार ने बाबरी मस्जिद ढांचा गिराकर देश की एकता को खण्डित किया है ठीक उसी तरह जिस तरह मुहम्मद अली जिन्ना ने साम्प्रदायिक उन्माद फैलाया और उसकी परिणति देश के विभाजन में हुई थी।

हालांकि साम्प्रदायिकता की समस्या हाल की समस्या नहीं है। यह अंग्रेजी शासन से ही है, अंग्रेजों ने भारतीय शासक वर्ग के सक्रिय सहयोग से इसे 'फूट डालो और राज करो' की उपनिवेशवादी नीति के रूप में अपनाया था। मुसलमान समुदाय को दबाने का यह योजनाबद्ध प्रचार-अभियान दो समुदायों के भाईचारे एवं सोहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों को समाप्त करता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से दो समुदायों के बीच एक निरन्तर द्वन्द्व है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत के पहले प्रमुख साम्प्रदायिक दंगे 1962 में, जबलपुर में यह द्वन्द्व घनीभूत रूप से अभिव्यक्त हुआ। बाद में अहमदाबाद (1969), जलगांव और कोसा (1970-71) के साम्प्रदायिक दंगों और हिंसा में प्रदर्शित हुआ। उसकी सबसे अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति बाबरी मस्जिद गिराने में हुई।

रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद वास्तव में धार्मिक मुद्दा नहीं है। हिन्दू पुनरुत्थानवादी कई वर्षों से हिन्दूवाद को राजनीतिक हथियार के तौर पर इस्तेमाल कर रहे हैं। इनका अन्तिम मन्तव्य वोट प्राप्त करके चुनाव जीतना है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भारतीय जनता पार्टी जैसी राजनीतिक पार्टियां व साम्प्रदायिक समूह हर हथकण्डा अपनाकर सत्ता प्राप्त करना चाहती हैं और वोट प्राप्त करने के लिए इन्होंने हिन्दुओं को रिझाना शुरू कर रखा है। 'हिन्दू-राष्ट्र' या 'अखण्ड भारत' निर्माण के नाम पर उनकी भावनाओं को उद्वेलित करके

'हिन्दू एकता' का नारा दिया गया है। उन्होंने रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद को हवा से 10वें लोकसभा चुनावों में जोर-शोर से प्रचार अभियान चलाया, जिस कारण काफी सीटें जीतीं और अपनी शक्ति बढ़ाई। आज भारतीय जनता पार्टी अपने एकमात्र लक्ष्य हिन्दूराष्ट्र की स्थापना के लिए हिन्दू के वोट बैंक का दोहन करना चाहती है और इसमें कोई कसर बाकी नहीं छोड़ना चाहती। समाजार्थिक, जातीय, धार्मिक और भाषायी मतभेदों को साम्प्रदायिक रंग देकर दोहन करना चाहती है।

बाबरी मस्जिद गिराने की घटना से समस्त मुस्लिम समुदाय स्तब्ध है। सरकार को बाबरी मस्जिद गिराने की तैयारियों की सूचना पहले से थी, लेकिन राज्य और केन्द्र सरकार दोनों ने बाबरी मस्जिद गिरने से रोकने के लिए कोई कदम नहीं उठाया। शर्मनाक बात है कि सरकार अपनी संवैधानिक जिम्मेवारी निभाने के लिए अपराधियों के विरुद्ध प्रभावी कदम उठाने में असफल रही। दृष्टि की भारी कमी और अनुत्तरदायित्व ने भारत देश की धर्मनिरपेक्षता और एकता के लिए खतरा पैदा किया है।

बाबरी मस्जिद गिराने का तुरन्त परिणाम यह हुआ कि पूरे देश में हिंसा और मारकाट मच गई। मुसलमानों ने बाबरी मस्जिद गिराने की प्रतिक्रिया में पथराव किया। शिवसेना के प्रचण्ड साम्प्रदायिक प्रचार ने उन आम हिन्दुओं की साम्प्रदायिक भावना को भी उकसाया जो पहले कभी साम्प्रदायिक प्रचार की गिरफ्त में नहीं आए थे।

इस हिंसा के फलस्वरूप असंख्य हिन्दू और मुस्लिम पुरुष, महिलाएं और बच्चे मारे गए। लगभग एक लाख पचास हजार लोग बम्बई छोड़कर दूसरे शहरों में चले गए। दंगों में मुख्यतः मुसलमान शिकार हुए। यहां तक कि फैक्टरियों और उद्योगों में, मुसलमान श्रमिकों व कर्मचारियों को ड्यूटी पर उपस्थित होने से रोकने की कोशिश हुयी और उनको तंग किया गया। शिवसेना ने मुस्लिम समुदाय के खिलाफ अन्तिम समाधान की भी बात की।

जब बम्बई शहर हिंसा की आग में जल रहा था तब तत्कालीन मुख्यमन्त्री सुधाकर राव नाइक अलग-थलग रहे, या तो उनकी इच्छा-शक्ति मर गई थी या फिर साम्प्रदायिक हिंसा रोकने के उनके उपाय बुरी तरह असफल हो गए थे। राज्य तन्त्र और पुलिस बल साम्प्रदायिक भीड़ के उन्माद को रोकने में अक्षम सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त काफी संख्या में घटनाएं संकेत करती हैं कि पुलिस असामाजिक तत्वों और दंगाइयों से मिल गई थी, यहां तक कि पुलिस मुस्लिम विरोधी हमलों में शामिल हुई। अल्पसंख्यक समुदायों ने, विशेषकर मुसलमानों ने स्वाभाविक तौर पर अत्यधिक असुरक्षित महसूस किया और जब तक सामान्य स्थिति बहाल नहीं हुई तब तक असुरक्षा रही।

अतीत व हाल में जो कुछ समुदायों के बीच घटित हुआ है उससे किसी भी अल्पसंख्यक समूह के लिए स्वाभाविक है कि वह अपने और अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के बारे में सतर्क हो जाए। हैरानी की बात नहीं है कि मुसलमानों ने मुस्लिम बहुत क्षेत्रों में स्थानान्तरण करना शुरू कर दिया है। हिन्दू साम्प्रदायिकतावादी अल्पसंख्यकों को एक बस्ती में धकेल कर बहुत खुश होंगे। साम्प्रदायिकतावादी अपनी योजना के अनुसार 'जातीय सफाया' के भारतीय संस्करण से मुस्लिम समुदाय को आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तबाह करने में सफल रहे हैं।

अध्ययन का तर्क

रामजन्मभूमि जैसे धार्मिक मुद्दों पर राजनीतिक प्रचार लोगों में केवल विभाजन ही पैदा नहीं करता, बल्कि लोगों की चेतना का साम्प्रदायीकरण भी करता है। साम्प्रदायिक दंगों और रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मुद्दे ने औद्योगिक श्रमिकों को कितना प्रभावित किया, यह जानना-मापना भी इस अध्ययन का एक लक्ष्य था।

अनुभाग 1

अध्ययन की विशेषताएं

हिन्दुओं में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति

- भारतीय जनता पार्टी और शिवसेना के साम्प्रदायिक प्रचार का ढंग और उसका प्रभाव जानने के लिए।
- औद्योगिक मजदूरों में दंगों के प्रभाव को देखने के लिए।
- मण्डल आयोग के प्रभाव को देखने के लिए।
- औद्योगिक मजदूरों का दंगे फैलाने वाली राजनीतिक पार्टियों के प्रति रुझान देखने के लिए।
- श्रमिक वर्ग में धार्मिक भावनाओं और धार्मिक सम्बद्धताओं का स्तर मापने के लिए।

पूर्व कल्पना

औद्योगिक श्रमिक साम्प्रदायिक हो चुके हैं और धार्मिक मुद्दों पर भारतीय जनता पार्टी के लगातार प्रचार अभियान की गिरफ्त में हैं।

पद्धति

अध्ययन के लिए 198 औद्योगिक मजदूरों के विचारों को आधार बनाया गया।

इनमें सभी प्रतिवादी हिन्दू समुदाय के हैं और बम्बई शहर के निवासी हैं।

198 प्रतिवादियों में से 149 (75.2 प्रतिशत) उच्च जाति से, 24 (12.1 प्रतिशत) अन्य पिछड़ी जातियों से और 25 (12.6 प्रतिशत) अनुसूचित जातियों से हैं।

आंकड़े प्रश्न-पत्र के माध्यम से एकत्रित किए हैं।

बम्बई में, सभी जातियों और क्षेत्रों के विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले औद्योगिक श्रमिकों के साक्षात्कार लिए गए।

रिपोर्ट की विषयवस्तु

आंकड़ों को जाति, क्षेत्रीय पृष्ठभूमि और ट्रेड यूनियन सम्बद्धता के आधार पर विश्लेषित किया।

अनुभाग 2 तालिका 1.1 से 1.9 में मजदूरों के जाति-आधारित विचारों को रखा है। इसी तरह तालिका 2.1 से 2.9 विभिन्न क्षेत्रों के लेकिन बम्बई में रहने वाले औद्योगिक मजदूरों का सांख्यिकीय विचार करती हैं।

अनुभाग 3 में तालिका 3.1 से 3.9 शामिल हैं। ये ट्रेड यूनियनों से जुड़े और गैर ट्रेड यूनियन श्रमिकों के विचारों पर प्रकाश डालती हैं। निष्कर्ष निकालने के लिए विभिन्न उपरोक्त चरों का योग किया है। इसके निष्कर्ष रिपोर्ट के पक्ष में हैं।

अनुभाग 2

औद्योगिक मजदूरों के विचार

बम्बई महानगर में औद्योगीकरण की तीव्र गति के कारण जीवनयापन के साधनों की खोज के लिए विभिन्न कस्बों से व्यापक स्तर पर लोगों का विस्थापन हुआ। अधिकांश विस्थापित मध्य या निम्न वर्ग से आए और कुछ उच्च वर्ग से आए।

प्रश्न पत्रक औद्योगिक श्रमिकों की जाति, क्षेत्र और ट्रेड यूनियन को ध्यान में रखकर तैयार किया गया था।

अयोध्या मुद्दे के निम्न पक्षों पर उनके विचार एकत्रित किए—

(क) बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थन।

(ख) बाबरी मस्जिद के सन्दर्भ में राम का जन्म।

(ग) बाबरी मस्जिद गिराने के बाद की साम्प्रदायिक हिंसा का समर्थन।

(घ) मन्दिर में पूजा के लिए जाना।

(ङ) मण्डल आयोग का समर्थन।

(च) साम्प्रदायिक या धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट।

(छ) दैनिक जीवन की समस्याएं जैसे मंहगाई, बेरोजगारी, गरीबी आदि के मुकाबले धार्मिक मुद्दों का महत्व।

(ज) यदि भारतीय जनता पार्टी चुनाव जीत जाए तो दैनिक जीवन की समस्याएं जैसे महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी आदि का समाधान।

(ध) मुस्लिम औद्योगिक मजदूरों को काम पर जाने से रोकने के बारे में विचार।

तालिका 1.1

बाबरी मस्जिद गिरने पर जाति आधारित विचार

श्रेणी		*समर्थन*	*विरोध*	*पंक्ति कुल*
हिन्दू सवर्ण जाति	संख्या	71	78	149
	पंक्ति प्रतिशत	47.7	52.3	75.3
	कॉलम प्रतिशत	78.0	72.9	-
हिन्दू अन्य पिछड़ी जातियां	संख्या	14	10	24
	पंक्ति प्रतिशत	58.3	41.7	12.1
	कॉलम प्रतिशत	15.4	9.3	-
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	6	19	25
	पंक्ति प्रतिशत	24.0	76.0	12.6
	कॉलम प्रतिशत	6.6	17.8	-
कॉलम कुल	संख्या	91	107	198
	प्रतिशत	46.0	54.0	100.0

मजदूरों का विशाल बहुमत बाबरी मस्जिद गिराने के विरुद्ध है। यद्यपि अन्य पिछड़ी जातियों के 58.3 प्रतिशत, उच्च जाति के 47.7 प्रतिशत और अनुसूचित जाति के 24 प्रतिशत मजदूरों ने मस्जिद गिराने का समर्थन किया। दूसरी ओर 41.7 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों ने बाबरी मस्जिद गिराने का विरोध किया।

उच्च जाति और अनुसूचित जाति के बहुमत द्वारा बाबरी मस्जिद ढहाने के विरोध का कारण उनकी राजनीतिक चेतना है।

उच्च जाति के औद्योगिक श्रमिकों ने भारतीय जनता पार्टी की सत्ता-प्राप्ति के लिए उनमें साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन करके हिन्दू मतों को पाने की कार्यनीतिक चालों का विरोध किया।

समाज के जाति सोपान में सबसे निचले स्तर पर होते हुए भी अनुसूचित जाति मजदूरों के काफी बड़े वर्ग की राजनीतिक चेतना हैरान करने वाली है। वे उच्च जातियों व राजनीतिज्ञों द्वारा अपने समस्त शोषण और अत्याचार के विरुद्ध हैं। इस कारण 76 प्रतिशत अनुसूचित जाति के मजदूरों ने बाबरी मस्जिद गिराने का विरोध किया। दूसरी ओर, अन्य पिछड़ी जाति के मजदूरों के बहुमत का बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थन करना इनकी राजनीतिक चेतना के निम्न स्तर की ओर संकेत करता है। दूसरे इनमें चल रही संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के कारण ये स्वयं को उच्च जातियों के साथ पहचानने लगे हैं। इसलिए बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थक रवैया हिन्दू मान्यताओं की स्वीकृति है।

तालिका 2.1

बाबरी मस्जिद गिराने पर क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*समर्थन*	*विरोध*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	80	69	149
	पंक्ति प्रतिशत	53.7	46.3	75.3
	कॉलम प्रतिशत	87.9	64.5	-
गुजराती	संख्या	4	12	16
	पंक्ति प्रतिशत	25.0	75.0	8.1
	कॉलम प्रतिशत	4.4	11.2	-
उत्तर भारतीय	संख्या	5	12	17
	पंक्ति प्रतिशत	29.4	70.6	8.6
	कॉलम प्रतिशत	5.5	11.2	-
दक्षिण भारतीय	संख्या	2	14	16
	पंक्ति प्रतिशत	12.5	87.5	8.1
	कॉलम प्रतिशत	2.2	13.1	-
कॉलम कुल	संख्या	91	107	198
	प्रतिशत	46.0	54.0	100.0

तालिका 2.1 के आंकड़े स्पष्ट दर्शाते हैं कि महाराष्ट्र के 53.7 प्रतिशत मजदूरों ने बाबरी मस्जिद के गिराने का समर्थन किया, जबकि गुजरात के 75 प्रतिशत, उत्तर भारत के 70.6 प्रतिशत, दक्षिण भारत के 87.5 प्रतिशत औद्योगिक मजदूरों ने विरोध किया। बम्बई में महाराष्ट्र के केवल 46.3 प्रतिशत मजदूरों ने

बाबरी-मस्जिद गिराने का विरोध किया। महाराष्ट्र के मजदूरों की अपेक्षा बाबरी मस्जिद गिराने के समर्थन में दूसरे राज्यों के मजदूरों का प्रतिशत कम है। यह शिवसेना के धुआंधार प्रचार अभियान का परिणाम है (रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद पर)। इसके हिन्दुत्व के समर्थन में धुंआधार प्रचार अभियान ने महाराष्ट्र मजदूरों के बहुमत को शिवसेना समर्थक बना दिया।

तालिका 1.2 दर्शाती है, मजदूरों का बहुमत, उच्च जाति के 62.4 प्रतिशत और अन्य पिछड़ी जातियों के 62.5 प्रतिशत मजदूर मानते हैं, कि जहां रामजन्म स्थान था वहीं बाबरी मस्जिद थी। उच्च जाति के 8.1 प्रतिशत और अन्य पिछड़ी जातियों के 16.7 प्रतिशत मजदूरों को पक्का नहीं था कि रामजन्म स्थान वहीं था जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी। अनुसूचित जाति के 48 प्रतिशत मजदूरों का विश्वास था कि यह राम का जन्म स्थान नहीं था।

8 प्रतिशत प्रतिवादियों को श्रीराम के जन्म स्थान का पक्का पता नहीं था। 44 प्रतिशत विश्वास करते थे कि श्रीराम उसी जगह पर जन्मे थे जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी।

उच्चजाति और अन्य पिछड़ी जाति के मजदूरों ने कहा कि जहां बाबरी मस्जिद थी वहीं राम का जन्म स्थान था क्योंकि उनका धार्मिक विश्वास था कि श्रीराम अयोध्या में जन्मे थे। तथ्य यह था, आम लोग सामान्य तौर पर उस विशेष स्थान का, जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी, जिक्र नहीं करते थे। पूछने पर वे पूर्वाग्रह के साथ प्रतिक्रिया करते थे कि श्रीराम अयोध्या में ही कहीं जन्मे हैं। यह प्रतिवाद उनके गहरे धार्मिक विश्वास के कारण भी हो सकता है। यद्यपि इतिहास से ऐसा कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता कि बाबरी मस्जिद की जगह पर ही श्रीराम का जन्म हुआ था। मुख्यतः भारतीय जनता पार्टी के घने प्रचार के कारण ही यह विश्वास बना था कि अयोध्या श्रीराम का जन्म स्थान है।

उच्च जातियों का विशाल बहुमत विश्वास करता था कि श्रीराम का जन्म स्थान वहीं था जहां मस्जिद खड़ी थी। तालिका 1.1 दर्शाती है कि 52.3 प्रतिशत उच्च जाति और 76 प्रतिशत अनुसूचित जाति के मजदूरों में भी बाबरी मस्जिद गिराने का विरोध था।

यह प्रमाणित करता है कि उच्च जाति और अनुसूचित जाति के औद्योगिक मजदूरों में धर्मनिरपेक्षता और दूसरे धर्मों के प्रति आदर का भाव था।

तालिका 1.2

श्रीराम के जन्म स्थल सम्बन्धी जाति आधारित विचार

श्रेणी		*जहां बाबरी मस्जिद है*	*वहां नहीं*	*पता नहीं*	*कहा नहीं जा सकता*	*पंक्ति कुल*
हिन्दु सवर्ण जाति	संख्या	93	33	11	12	149
	पंक्ति प्रतिशत	62.4	22.1	7.4	8.1	75.6
	कॉलम प्रतिशत	78.2	71.7	64.7	75.0	-
हिन्दु अन्य पिछड़ी जातियां	संख्या	15	1	4	4	24
	पंक्ति प्रतिशत	62.5	4.2	16.7	16.7	12.1
	कॉलम प्रतिशत	12.6	2.2	23.5	25.0	-
हिन्दु अनुसूचित जातियां	संख्या	11	12	2	-	25
	पंक्ति प्रतिशत	44.0	48.0	8.0	-	12.6
	कॉलम प्रतिशत	9.2	26.1	11.8	-	-
कॉलम कुल	संख्या	119	46	17	16	198
	प्रतिशत	60.1	23.2	8.6	8.1	100.0

तालिका 2.2

राम जन्मस्थल के सम्बन्ध में क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		हां बाबरी मस्जिद	वहां नहीं	पता नहीं	कहा नहीं जा सकता	पंक्ति कुल
मराठी	संख्या	94	27	14	14	149
	पंक्ति प्रतिशत	63.1	18.1	9.4	9.4	75.3
	कॉलम प्रतिशत	79.0	58.7	82.5	87.5	—
गुजराती	संख्या	7	7	1	1	16
	पंक्ति प्रतिशत	43.8	43.8	6.3	6.3	8.1
	कॉलम प्रतिशत	5.9	15.2	5.9	6.3	—
उत्तर भारतीय	संख्या	12	4	—	1	17
	पंक्ति प्रतिशत	70.6	23.5	—	5.9	8.6
	कॉलम प्रतिशत	10.1	8.7	—	6.3	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	6	8	2	—	16
	पंक्ति प्रतिशत	37.5	50.0	12.5	—	8.1
	कॉलम प्रतिशत	5.0	17.4	11.8	—	—
कॉलम कुल	संख्या	119	46	17	16	198
	प्रतिशत	60.1	23.2	8.6	8.1	100.0

तालिका 2.2 दर्शाती है कि बम्बई के 63.1 प्रतिशत मराठी, 70.6 प्रतिशत उत्तर भारतीय और 43.8 प्रतिशत गुजराती मजदूरों का विश्वास था कि श्रीराम उसी जगह पर जन्मे थे जहां बाबरी मस्जिद थी। कुल मजदूरों का 8.1 प्रतिशत और 8.6 प्रतिशत ने व्यक्त किया कि वे कह नहीं सकते या नहीं जानते कि राम का जन्मस्थान वहीं था जहां मस्जिद खड़ी थी। महाराष्ट्र के मजदूरों के विशाल बहुमत ने कहा कि राम का जन्मस्थान वहीं था जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी। उनके प्रतिवाद का उनके धार्मिक विश्वास से कुछ लेना-देना नहीं था क्योंकि 50.3 प्रतिशत मराठी मन्दिर नहीं जाते। यह प्रतिवाद मुख्यतः भारतीय जनता पार्टी और शिवसेना द्वारा मुद्दे के साम्प्रदायीकरण के प्रभावस्वरूप था। उत्तर भारतीय मजदूरों के बहुमत का प्रतिवाद था कि श्रीराम वहीं जन्मे थे जहां मस्जिद खड़ी थी लेकिन क्या यह उनके धार्मिक विश्वास के कारण था क्योंकि उनमें से 64.7 प्रतिशत मन्दिर जाते थे? (देखें तालिका 2.4)

ध्यान देने लायक है कि इससे अलग हटकर दक्षिण भारतीय और गुजराती मजदूर राजनीतिक दृष्टि से जागरूक दिखाई देते हैं क्योंकि इनमें से 50 प्रतिशत से अधिक ने कहा कि श्रीराम उसी जगह पर पैदा नहीं हुए थे जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी।

तालिका 1.3

बाबरी मस्जिद गिरने के बाद साम्प्रदायिक हिंसा पर जाति आधारित विचार

श्रेणी		*समर्थन*	*समर्थन नहीं*	*पंक्ति कुल*
हिन्दू उच्च जाति	संख्या	16	122	149
	पंक्ति प्रतिशत	10.7	89.3	75.3
	कॉलम प्रतिशत	76.2	75.1	—
हिन्दू अन्य	संख्या	3	21	24
पिछड़ी जातियां	पंक्ति प्रतिशत	12.5	87.5	12.1
	कॉलम प्रतिशत	14.3	11.9	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	2	23	25
	पंक्ति प्रतिशत	8.0	92.0	12.6
	कॉलम प्रतिशत	9.5	13.0	—
कॉलम कुल	संख्या	21	177	198
	प्रतिशत	10.6	89.4	100.0

तालिका : 2.3

बाबरी मस्जिद गिरने के बाद साम्प्रदायिक हिंसा पर क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*समर्थन*	*समर्थन नहीं*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	20	129	149
	पंक्ति प्रतिशत	13.4	86.6	75.3
	कॉलम प्रतिशत	95.2	72.9	—
गुजराती	संख्या	—	16	16
	पंक्ति प्रतिशत	—	100.0	8.1
	कॉलम प्रतिशत	—	9.0	—
उत्तर भारतीय	संख्या	—	17	17
	पंक्ति प्रतिशत	—	100.0	8.6
	कॉलम प्रतिशत	—	9.0	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	1	15	16
	पंक्ति प्रतिशत	6.3	93.8	8.1
	कॉलम प्रतिशत	4.8	8.5	—
कॉलम कुल	संख्या	21	177	198
	प्रतिशत	10.6	89.4	100.0

जाति आधारित विचार तालिका 1.3 और क्षेत्र आधारित विचार तालिका 2.3 से स्पष्ट है कि 89.4 प्रतिशत मजदूर साम्प्रदायिक दंगों के विरुद्ध थे। विभिन्न जातियों और विभिन्न क्षेत्रों के बहुत थोड़े-से (10.6 प्रतिशत) प्रतिशत ने साम्प्रदायिक हिंसा का पक्ष लिया।

ऐसा 19शती के वर्षों से हिन्दू-मुस्लिम विवाद की स्मृतियों के कारण भी हो सकता है। ऐसे विवादों के इतिहास ने उनका ऐसा रवैया बनाया है। यही कारण है कि यह देखा गया कि हिन्दू मजदूरों का थोड़ा-सा प्रतिशत महसूस करता है कि एक दिन हिन्दू राष्ट्र सच्चाई बनेगा। शिव सेना ने साम्प्रदायिक हिंसा का बहुत जोरदार प्रचार किया था।

तालिका 1.4

मन्दिर जाने सम्बन्धी जाति आधारित विचार

श्रेणी		*जाते*	*नहीं जाते*	*पंक्ति कुल*
हिन्दू सवर्ण जाति	संख्या	78	71	149
	पंक्ति प्रतिशत	52.13	47.7	75.3
	कॉलम प्रतिशत	80.4	70.3	—
हिन्दू अन्य	संख्या	16	8	24
पिछड़ी जातियां	पंक्ति प्रतिशत	66.7	33.3	12.1
	कॉलम प्रतिशत	16.5	7.9	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	3	22	25
	पंक्ति प्रतिशत	12.0	88.0	12.6
	कॉलम प्रतिशत	3.1	21.8	—
कॉलम कुल	संख्या	97	101	198
	प्रतिशत	49.0	51.0	100.0

तालिका 1.4 के आंकड़े दर्शाते हैं कि 52.3 प्रतिशत उच्च जाति के और 66.7 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों के मजदूर पूजा के लिए मन्दिर जाते हैं।

ये यह भी दर्शाती है कि 47.7 प्रतिशत उच्च जाति के और 33.3 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों के मजदूर मन्दिर नहीं जाते।

ये आंकड़े मजदूरों के धार्मिक विश्वास की झलक भी देते हैं। इससे यह भी पता चलता है कि मजदूरों ने अपने धार्मिक विश्वास से प्रतिवाद किया था या यह उनकी साम्प्रदायिक विचारधारा का परिणाम है।

अनुसूचित जाति के मजदूरों का विशाल बहुमत 88 प्रतिशत मन्दिर में नहीं जाता।

बम्बई में महाराष्ट्र और दक्षिण भारतीय औद्योगिक मजदूरों की तुलना में उत्तर भारत के औद्योगिक मजदूरों का अत्यधिक प्रतिशत (64.7 प्रतिशत) मन्दिर जाता है।

तालिका 2.1, 2.2 और 204 दर्शाती हैं कि महाराष्ट्र के अधिकतर मजदूर मन्दिर नहीं जाते लेकिन उनमें से अधिकतर ने बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थन किया और कहा कि श्रीराम वहीं जन्मे थे जहां बाबरी मस्जिद खड़ी है। इससे साफ है अधिकतर मराठी मजदूर धार्मिक नहीं थे लेकिन साम्प्रदायिक हो चुके थे। अधिकतर गुजराती मजदूर मन्दिर नहीं जाते लेकिन उन्होंने बाबरी मस्जिद गिराने का विरोध किया। वे इस विश्वास के थे कि श्रीराम उसी स्थान पर नहीं जन्मे जहां बाबरी

तालिका 2.4

मन्दिर जाने के बारे में क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*जाते*	*नहीं जाते*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	74	75	149
	पंक्ति प्रतिशत	49.7	50.3	75.3
	कॉलम प्रतिशत	76.3	74.3	—
गुजराती	संख्या	6	10	16
	पंक्ति प्रतिशत	37.5	62.5	8.1
	कॉलम प्रतिशत	6.2	9.9	—
उत्तर भारतीय	संख्या	11	6	17
	पंक्ति प्रतिशत	64.7	35.3	8.6
	कॉलम प्रतिशत	6.2	9.9	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	11	6	17
	पंक्ति प्रतिशत	37.5	62.5	8.1
	कॉलम प्रतिशत	11.3	5.9	—
कॉलम कुल	संख्या	97	101	198
	प्रतिशत	49.0	51.0	100.0

मस्जिद खड़ी थी। यह उनकी प्रखर राजनीतिक चेतना और दूसरे धर्मों के प्रति उनके आदरभाव को दर्शाता है।

उत्तर भारत के औद्योगिक मजदूर मन्दिर जाते थे और उनका मानना था कि राम जन्म स्थान वहीं है जहां बाबरी मस्जिद है लेकिन उन्होंने इसे गिराने का विरोध किया। यह उनके गहरे धार्मिक विश्वास को उजागर करता है। दक्षिण भारतीय मजदूरों के धार्मिक विश्वासों और उनकी राजनीतिक चेतना ने भी वही प्रवृत्ति दर्शायी जैसे कि राजनीतिक चेतना और दूसरे धर्मों का आदर करने के पक्ष में गुजराती मजदूरों ने।

तालिका 1.5 दर्शाती है कि 60.4 प्रतिशत उच्च जाति के प्रतिवादियों ने मंडल आयोग को लागू करने का विरोध किया। केवल 29.5 प्रतिशत ने ही इस मुद्दे का समर्थन किया।

दूसरी ओर पिछड़ी जातियों के 50 प्रतिशत और अनुसूचित जातियों के 76 प्रतिशत मजदूरों ने इसे लागू करने का समर्थन किया। यह भी सामने आया कि उच्च जातियों के 10.1 प्रतिशत, अन्य पिछड़ी जातियों के 20.8 प्रतिशत और

तालिका 1.5

मंडल कमीशन पर जाति आधारित विचार

श्रेणी		*समर्थन*	*विरोधी*	*नहीं जानते*	*पंक्ति कुल*
हिन्दू सवर्ण	संख्या	44	90	15	149
	पंक्ति प्रतिशत	29.5	60.4	10.1	75.3
	कॉलम प्रतिशत	59.7	9..0	65.2	—
हिन्दू अन्य	संख्या	12	7	5	24
पिछड़ी जातियां	पंक्ति प्रतिशत	50.0	29.2	20.8	12.1
	कॉलम प्रतिशत	16.0	7.0	21.7	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	19	3	3	25
	पंक्ति प्रतिशत	76.0	12.0	12.0	12.6
	कॉलम प्रतिशत	25.3	3.0	13.0	—
कॉलम कुल	संख्या	75	100	23	198
	प्रतिशत	37.9	50.5	11.6	100.0

अनुसूचित जातियों के 12 प्रतिशत ने कहा कि वे नहीं जानते कि उन्हें मण्डल आयोग का समर्थन करना चाहिए था या नहीं।

भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री वी. पी. सिंह ने मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू किया और इसे इस तरह प्रस्तुत किया था कि यह अन्य पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कदम है। मण्डल आयोग ने अन्य पिछड़ी जातियों को 27 प्रतिशत आरक्षण दिया था। भारतीय आबादी के 3 प्रतिशत ब्राह्मणों का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और शिक्षा के संसाधनों का नियन्त्रण है, इन्होंने छात्रों को इकट्ठा करके इस रिपोर्ट को लागू करने का विरोध किया। यह भी कहा जाता है कि वी. पी. सिंह की नजर अन्य पिछड़ी जाति व अनुसूचित जाति के मतों पर थी। इसके प्रभावस्वरूप अन्य पिछड़ी जातियों व अनुसूचित जातियों के औद्योगिक मजदूर इस रिपोर्ट को लागू करने के पक्ष में हैं।

तालिका 2.5

मण्डल कमीशन पर क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*समर्थन*	*विरोधी*	*नहीं जानते*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	59	75	15	149
	पंक्ति प्रतिशत	36.6	50.3	10.1	75.3
	कॉलम प्रतिशत	78.7	75.0	65.2	—
गुजराती	संख्या	3	9	4	16
	पंक्ति प्रतिशत	18.8	56.3	25.0	8.1
	कॉलम प्रतिशत	4.0	9.0	17.4	—
उत्तर भारतीय	संख्या	5	10	1	16
	पंक्ति प्रतिशत	29.4	58.8	11.85	8.6
	कॉलम प्रतिशत	6.7	10.0	8.7	—
दक्षिण भारतीय संख्या		8	6	1	16
	पंक्ति प्रतिशत	50.0	37.5	12.5	8.1
	कॉलम प्रतिशत	10.7	6.0	8.7	—
कॉलम कुल	संख्या	75	100	23	198
	प्रतिशत	37.9	50.5	11.6	100.0

तालिका 2.5 दर्शाती है कि 50 प्रतिशत दक्षिण भारतीय मजदूर इस रिपोर्ट को लागू करने के पक्ष में थे जबकि 50 प्रतिशत से अधिक मराठी, गुजराती और उत्तर भारतीय इसे लागू करने के खिलाफ थे।

चारों क्षेत्रों के कुल 23 प्रतिवादियों यानी 11.6 प्रतिशत का कोई विचार नहीं था। इसके प्रति उदासीन रवैये का कारण या तो यह हो सकता है कि ये मजदूर इस मुद्दे से अनभिज्ञ थे या नहीं जानते थे कि इसका समर्थन करना चाहिए या विरोध।

तालिका 2.6 इस सामान्य विचार को पक्का करती है कि रामजन्मभूमि बाबरी मस्जिद जैसे धार्मिक मुद्दों का, आम लोगों के जीवन में विशेषकर वेतन भोगी मजदूरों में शायद ही कोई महत्त्व हो। कुल 154 प्रतिवादी यानि 77.8 प्रतिशत मजदूरों ने महसूस किया कि धार्मिक मसलों की तुलना में दैनिक जीवन की समस्याएं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। लगभग 9.6 प्रतिशत ने दोनों मुद्दों को बराबर महत्वपूर्ण बताया। 12.6 प्रतिशत ने अपनी गहरी धार्मिक आस्था दर्शाते हुए, धर्म को अधिक महत्ता दी।

तालिका 1.6

दैनिक जीवन की समस्या व मुद्देवार जाति आधारित विचार

श्रेणी		*महत्त्वपूर्ण*	*महत्त्वपूर्ण नहीं*	*दोनों बराबर*	*पंक्ति कुल*
हिन्दू सवर्ण	संख्या	21	113	15	149
	पंक्ति प्रतिशत	14.1	75.8	10.1	75.3
	कॉलम प्रतिशत	84.0	73.4	78.9	—
हिन्दू अन्य	संख्या	2	19	3	24
पिछड़ी जातियां	पंक्ति प्रतिशत	8.3	79.2	12.5	12.1
	कॉलम प्रतिशत	8.0	12.3	15.8	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	2	22	1	25
	पंक्ति प्रतिशत	8.0	88.0	4.0	12.6
	कॉलम प्रतिशत	8.0	14.3	5.3	—
कॉलम कुल	संख्या	25	154	19	198
	प्रतिशत	12.6	77.8	9.6	100.0

दंगों के दौरान जब शहर साम्प्रदायिक उन्माद का शिकार था तो उद्योग बन्द रहने के कारण अधिकांश मजदूर अपने काम पर जाने में असमर्थ थे। मजदूरों की आय घट गई, जिसने उनकी क्रय-शक्ति को कम कर दिया। धार्मिक मसलों से दैनिक जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं होता। बाबरी मस्जिद गिरने से ये मजदूर और आम लोग बुरी तरह प्रभावित हुए। जिन राजनीतिज्ञों ने उनको उकसाया था उनका कुछ नहीं बिगड़ा। अधिकांश औद्योगिक मजदूर, किसी तरह पेट पालकर अपना जीवन बिता रहे हैं। अतः उनके लिए प्रतिदिन की समस्याओं के सामने धार्मिक मुद्दे गौण हैं।

तालिका 2.6 में देखा जा सकता है कि सभी क्षेत्रों के 77.8 प्रतिशत से अधिक मजदूरों ने कहा कि धार्मिक मुद्दों की तुलना में दैनिक जीवन की समस्याएं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। एक भी गुजराती का मन्दिर या मस्जिद मुद्दे से प्राथमिक सरोकार नहीं था।

तालिका 2.6

दैनिक समस्याएं व धार्मिक मुद्दों के बारे में क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*महत्त्वपूर्ण*	*महत्त्वपूर्ण नहीं*	*दोनों बराबर*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	22	111	16	149
	पंक्ति प्रतिशत	14.0	74.5	10.7	75.3
	कॉलम प्रतिशत	88.0	72.1	4.2	—
गुजराती	संख्या	—	15	1	16
	पंक्ति प्रतिशत	—	93.8	6.3	8.1
	कॉलम प्रतिशत	—	9.7	5.3	—
उत्तर भारतीय	संख्या	1	14	2	17
	पंक्ति प्रतिशत	5.9	82.4	11.8	8.6
	कॉलम प्रतिशत	4.0	9.1	10.5	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	2	14	—	16
	पंक्ति प्रतिशत	12.5	87.5	—	8.1
	कॉलम प्रतिशत	8.0	9.1	—	—
कॉलम कुल	संख्या	25	154	19	198
	प्रतिशत	12.6	77.8	9.6	100.0

तालिका 1.7

वोट देने के विचार पर जाति का प्रभाव

श्रेणी		*साम्प्रदायिक पार्टी*	*धर्मनिरपेक्ष पार्टी*	*किसी को नहीं*	*पंक्ति कुल*
हिन्दू उच्च जाति	संख्या	68	77	4	149
	पंक्ति प्रतिशत	45.6	51.7	2.7	75.3
	कॉलम प्रतिशत	81.0	70.6	80.0	—
हिन्दू अन्य पिछड़ी जातियां	संख्या	14	9	1	24
	पंक्ति प्रतिशत	58.3	37.5	4.2	12.1
	कॉलम प्रतिशत	8.0	12.3	20.0	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	2	23	—	25
	पंक्ति प्रतिशत	8.0	92.0	—	12.6
	कॉलम प्रतिशत	2.4	21.1	—	—
कॉलम कुल	संख्या	84	109	5	198
	प्रतिशत	42.4	55.1	2.5	100.0

यह उल्लेखनीय है कि 77 प्रतिवादियों में यानी कुल प्रतिवादियों का 51.7 प्रतिशत मजदूरों में धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट देने का झुकाव है। अन्य पिछड़ी जातियों के 14 प्रतिवादियों ने यानि 58.3 प्रतिशत ने कहा कि वे साम्प्रदायिक पार्टियों को वोट देंगे। इस विचार का सामान्य धारणा से विरोधाभास है कि उच्च जातियों का बहुमत साम्प्रदायिक पार्टियों को और अन्य पिछड़ी जातियों का बहुमत धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट देते हैं। अनुसूचित जातियों के 23 प्रतिवादियों यानी 92 प्रतिशत ने कहा कि वे धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट देंगे। यह इस वास्तविकता को पक्का करता है कि अनुसूचित जातियों के मजदूर राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हैं।

तालिका 2.7

वोट देने के विचार पर क्षेत्र आधारित कारण

श्रेणी		*साम्प्रदायिक पार्टी*	*धर्मनिरपेक्ष पार्टी*	*किसी को नहीं*	*पंक्ति कुल*
मराठी	संख्या	77	67	5	149
	पंक्ति प्रतिशत	51.4	45.0	3.4	75.3
	कॉलम प्रतिशत	91.7	61.5	100.0	—
गुजराती	संख्या	3	13	—	16
	पंक्ति प्रतिशत	18.8	81.3	—	8.1
	कॉलम प्रतिशत	3.6	11.9	—	—
उत्तर भारतीय	संख्या	1	15	—	17
	पंक्ति प्रतिशत	11.8	88.2	—	8.6
	कॉलम प्रतिशत	2.4	13.8	—	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	2	14	—	16
	पंक्ति प्रतिशत	12.5	87.5	—	8.1
	कॉलम प्रतिशत	2.4	112.8	—	—
कॉलम कुल	संख्या	84	109	5	198
	प्रतिशत	42.4	55.1	2.5	100.0

तालिका 2.7 से स्पष्ट है कि महाराष्ट्र के 51.7 प्रतिशत मजदूर साम्प्रदायिक पार्टियों को तथा उनमें से 45 प्रतिशत धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट डालना पसन्द करेंगे। 3.4 प्रतिशत मजदूर किसी भी पार्टी को वोट नहीं डालेंगे। 85 प्रतिशत गुजराती, उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय मजदूरों ने धर्मनिरपेक्ष पार्टियों को वोट देने की इच्छा जताई।

महाराष्ट्र के मजदूरों पर शिवसेना, और भारतीय जनता पार्टी और इनके हिन्दू-राष्ट्र का प्रभाव है। शिवसेना मराठियों के लिए महाराष्ट्र के हितों का भी प्रचार कर रही है। प्रारम्भ में इसने दूसरे राज्यों और क्षेत्रों के मजदूरों के महाराष्ट्र में आने के खिलाफ विरोध प्रकट किया था।

18.8 प्रतिशत गुजराती, 11.8 प्रतिशत उत्तर भारतीयों और 12.5 प्रतिशत दक्षिण भारतीयों ने साम्प्रदायिक पार्टियों को वोट देने को कहा। यह प्रतिशत संकेत करता है कि साम्प्रदायीकरण ने इस क्षेत्र के लोगों पर प्रभुत्व बना लिया है। 3.4 प्रतिशत महाराष्ट्र के मजदूरों ने किसी भी पार्टी को वोट न देने के लिए कहा कि क्योंकि वे महसूस करते हैं कि लोकतन्त्र अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल हुआ है। किसी भी सत्ताधारी पार्टी ने उसके लिए कुछ अलग नहीं दिया क्योंकि किसी भी राजनीतिक पार्टी ने चुनाव के समय की अपनी प्रतिज्ञाएं पूरी नहीं कीं।

तालिका 1.8

चुनावों के बारे में जाति-आधारित विचार

श्रेणी		*समस्याएं हल होंगी*	*समस्याएं हल नहीं होंगी*	*आंशिक समस्याएं हल होंगी*	*कुल पंक्ति*
हिन्दू उच्च जाति	संख्या	10	125	14	149
	पंक्ति प्रतिशत	6.7	83.6	9.4	75.3
	कॉलम प्रतिशत	76.4	74.0	87.5	—
हिन्दू अन्य पिछड़ी जातियां	संख्या	1	21	2	24
	पंक्ति प्रतिशत	4.2	87.5	8.3	12.1
	कॉलम प्रतिशत	7.7	12.4	12.5	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	2	23	—	25
	पंक्ति प्रतिशत	8.0	92.0	—	12.6
	कॉलम प्रतिशत	15.4	13.6	—	—
कॉलम कुल	संख्या	13	169	16	198
	प्रतिशत	6.6	85.4	8.1	100.0

केन्द्र में भारतीय जनता पार्टी के सत्ता में आने पर 85.4 प्रतिशत मजदूरों ने महसूस किया कि उनकी समस्या का समाधान नहीं होगा। 13 प्रतिवादियों यानी 6.6 प्रतिशत ने विश्वास किया कि उनकी समस्या का समाधान होगा। 16 प्रतिवादियों

यानी 8.1 प्रतिशत ने विश्वास किया कि उनकी समस्या का आंशिक समाधान होगा। 16 प्रतिवादियों यानी 8.1 प्रतिशत ने विश्वास किया कि उनकी समस्याओं का आंशिक समाधान होगा।

भारतीय जनता पार्टी ने हिन्दू राष्ट्र की स्थापना के लिए राम जन्म-भूमि-बाबरी मस्जिद मुद्दे के माध्यम से हिन्दू एकता का जोर-शोर से प्रचार किया। हालांकि निष्कर्ष दर्शाते हैं कि बहुसंख्यक समुदाय इस बारे में जागरूक नहीं है कि यदि भारतीय जनता पार्टी आने वाले चुनाव जीत जाती है तो वह उनकी समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है भी?

बहुसंख्यक समुदाय भारतीय जनता पार्टी को इसलिए वोट नहीं देना चाहता क्योंकि वह मान चुका है कि आम जनता का कल्याण करने में किसी भी पार्टी की रुचि नहीं है। उनके लिए राजनीतिक पार्टियों के केवल अपने निहित स्वार्थ हैं। वे वर्षों से इसे देख रहे हैं।

तालिका 2.8

चुनावों पर क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*समस्याएं हल होंगी*	*समस्याएं हल नहीं होंगी*	*आंशिक समस्याएं हल होंगी*	*कुल पंक्ति*
मराठी	संख्या	12	124	13	149
	पंक्ति प्रतिशत	8.1	83.2	8.7	75.3
	कॉलम प्रतिशत	92.7	73.4	81.3	—
गुजराती	संख्या	—	15	1	16
	पंक्ति प्रतिशत	—	93.8	6.3	8.1
	कॉलम प्रतिशत	—	8.9	6.3	—
उत्तर भारतीय	संख्या	—	16	1	17
	पंक्ति प्रतिशत	—	1.94	5.9	8.6
	कॉलम प्रतिशत	—	8.3	6.3	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	1	14	1	16
	पंक्ति प्रतिशत	6.3	87.5	6.3	8.1
	कॉलम प्रतिशत	7.7	8.3	6.3	—
कॉलम कुल	संख्या	13	13	16	198
	प्रतिशत	6.6	85.4	8.1	100.0

भारतीय जनता पार्टी चुनाव जीतकर यदि केन्द्र में सत्ता में आ जाती है तो 169 प्रतिवादियों यानि 85.4 प्रतिशत मजदूरों का मानना है कि उनकी समस्याओं का समाधान नहीं होगा, जबकि 8.1 प्रतिशत महाराष्ट्र और 6.3 प्रतिशत दक्षिण भारत के मजदूरों ने व्यक्त किया कि उनकी समस्याओं का सिर्फ आंशिक समाधान होगा।

तालिका 1.9

उद्योगों में काम करने सम्बन्धी जाति आधारित विचार

श्रेणी		*ठीक*	*गलत*	*कुल पंक्ति*
हिन्दू उच्च जाति	संख्या	20	129	149
	पंक्ति प्रतिशत	13.4	86.6	75.3
	कॉलम प्रतिशत	80.0	74.6	—
हिन्दू अन्य	संख्या	3	21	24
पिछड़ी जातियां	पंक्ति प्रतिशत	12.5	87.5	12.1
	कॉलम प्रतिशत	12.0	12.1	—
हिन्दू अनुसूचित जातियां	संख्या	2	23	25
	पंक्ति प्रतिशत	8.0	92.0	12.6
	कॉलम प्रतिशत	8.0	13.3	—
कॉलम कुल	संख्या	25	173	198
	प्रतिशत	12.6	87.4	100.0

तालिका 1.9 भारतीय जनता पार्टी और शिव सेना के साम्प्रदायिक प्रचार के प्रभाव की ओर संकेत करती है। 198 मजदूरों में से 173 मजदूरों ने मुसलमान मजदूरों को काम से रोकने को गलत ठहराया। थोड़ी-सी संख्या यानि 12.6 प्रतिशत ने कहा कि उनको काम पर आने से रोकना उचित था। उच्च जाति के 13.4 प्रतिशत मजदूरों ने, अन्य पिछड़ी जाति के 12.5 मजदूरों ने और अनुसूचित जाति के 8 प्रतिशत मजदूरों ने कहा कि मुसलमान मजदूरों को काम पर जाने से रोकना चाहिए था। यह रवैया इस तथ्य पर आधारित है कि ये मजदूर शिवसेना के सदस्य थे जिनका उद्योगों में वर्चस्व है। इसके अतिरिक्त शिवसेना से सम्बन्धित मजदूर दंगों में सक्रियता से शामिल थे।

तालिका 2.9

उद्योगों में काम करने के बारे में क्षेत्र आधारित विचार

श्रेणी		*सही*	*गलत*	*कुल पंक्ति*
मराठी	संख्या	23	126	149
	पंक्ति प्रतिशत	15.4	84.5	75.3
	कॉलम प्रतिशत	92.0	72.8	—
गुजराती	संख्या	1	15	16
	पंक्ति प्रतिशत	6.3	93.8	12.1
	कॉलम प्रतिशत	4.0	8.7	—
उत्तर भारतीय	संख्या	—	17	17
	पंक्ति प्रतिशत	—	100.0	8.6
	कॉलम प्रतिशत	—	13.3	—
दक्षिण भारतीय	संख्या	1	15	16
	पंक्ति प्रतिशत	6.3	93.8	—
	कॉलम प्रतिशत	4.0	807	—
कॉलम कुल	संख्या	15	173	198
	प्रतिशत	12.6	87.4	100.0

तालिका 2.9 भारतीय जनता पार्टी और शिव सेना के साम्प्रदायिक विचार के प्रभाव की ओर संकेत करती है। मुसलमानों को फैक्टरियों में काम पर जाने से रोकने की 173 मजदूरों ने निन्दा की।

उत्तर भारत के भी 17 प्रतिशत ने इसे गलत माना। मजदूर उद्योग प्रबन्ध के साम्प्रदायिक व्यवहार के विरुद्ध हैं और राजनीतिज्ञों की इस मंशा के प्रति जागरूक हैं कि वे मजदूरों को साम्प्रदायिक आधार पर बांटने की कोशिश कर रहे हैं।

श्रेणी 3

ट्रेड यूनियन सम्बद्धता पर आधारित विचार

आजकल ट्रेड यूनियनों के नेता निहित स्वार्थों के लिए यूनियन का दोहन करते हैं। अब ट्रेड यूनियनें भारतीय जनता पार्टी, शिवसेना और कांग्रेस जैसी पार्टियों से सम्बद्ध हैं। महाराष्ट्र के अधिकांश उद्योगों में ट्रेड यूनियनों पर शिवसेना का प्रभुत्व है। इस सर्वेक्षण में कुल 198 में से 61 प्रतिवादियों ने यानी 30.8 प्रतिशत मजदूर

ट्रेड यूनियन के सदस्य थे। हालांकि 69.2 प्रतिशत मजदूरों ने अपने को किसी यूनियन के साथ नहीं जोड़ा।

तालिका 3.1

बाबरी मस्जिद का गिरना

श्रेणी		*समर्थन*	*विरोध*	*पंक्ति कुल*
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	32	29	61
	पंक्ति प्रतिशत	52.5	47.5	30.8
	कॉलम प्रतिशत	53.2	27.1	—
गैर ट्रेड यूनियन	संख्या	59	78	137
	पंक्ति प्रतिशत	43.1	56.9	69.2
	कॉलम प्रतिशत	64.8	72.9	—
कॉलम कुल	संख्या	91	107	198
	प्रतिशत	46.0	54.0	100.0

उपरोक्त तालिका स्पष्ट दर्शाती है कि 32 ट्रेड यूनियन सदस्य यानी 52.5 प्रतिशत मजदूरों ने बाबरी मस्जिद गिरने का समर्थन किया, जबकि 29 यानी 47.5 प्रतिशत ट्रेड यूनियन के सदस्यों ने इसका विरोध किया। जिन्होंने बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थन किया वे शिव सेना की ट्रेड यूनियन से सम्बन्धित हैं। जो इसका विरोध कर रहे थे वे गैर-शिव सेना ट्रेड यूनियन से सम्बन्धित थे। 59 गैर ट्रेड यूनियन सदस्यों ने यानी 43.1 प्रतिशत ने बाबरी मस्जिद गिराने का समर्थन किया, जबकि 78 यानी 56.7 प्रतिशत गैर-ट्रेड यूनियन सदस्यों ने इसके गिराने का विरोध किया। इससे निष्कर्ष निकलता है कि गैर-ट्रेड यूनियन मजदूर कम दुराग्रही थे। मजदूर भारतीय जनता पार्टी की इस चाल को समझते थे कि वह उनमें साम्प्रदायिक आधार पर विभाजन करना चाहती है।

तालिका 3.2 स्पष्ट करती है कि 119 मजदूर आश्वस्त थे कि राम जन्म स्थान वही था जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी, इनमें उच्च जाति एवं मध्य जाति के अधिकतर मराठी और उत्तर भारतीय थे।

16 प्रतिवादियों यानी 8.1 प्रतिशत का विचार था कि राम जन्म स्थान कहां है इस बारे में वे कुछ कह नहीं सकते, 8.6 प्रतिशत नहीं जानते कि श्रीराम का जन्म स्थान कहां है, और 23.3 प्रतिशत आश्वस्त थे कि राम का जन्मस्थान उसी जगह नहीं था, जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी। उनकी ट्रेड यूनियन स्थिति से अलग अधिकतर मजदूर प्रेरित दिखाई देते हैं।

तालिका 3.2

श्रीराम का जन्म स्थान

श्रेणी		जहां बाबरी मस्जिद स्थित है	वहां नहीं	नहीं जानते	कह नहीं सकते	पंक्ति कुल
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	34	5	4	8	61
	पंक्ति प्रतिशत	55.7	24.6	6.6	13.1	30.8
	कॉलम प्रतिशत	28.6	32.6	23.5	50.0	—
गैर सदस्य	संख्या	85	31	13	8	137
	पंक्ति प्रतिशत	62.0	22.6	9.5	5.8	69.2
	कॉलम प्रतिशत	71.4	67.4	76.5	50.0	—
कॉलम कुमल	संख्या	119	46	17	16	198
	प्रतिशत	60.1	23.2	8.6	8.1	100.0

तालिका 3.3

बाबरी मस्जिद गिराने के कारण साम्प्रदायिक हिंसा

श्रेणी		*समर्थक*	*समर्थन नहीं*	*पंक्ति कुल*
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	6	55	61
	पंक्ति प्रतिशत	9.8	902	30.8
	कॉलम प्रतिशत	28.6	31.1	—
गैर सदस्य	संख्या	15	122	137
	पंक्ति प्रतिशत	10.9	89.1	69.2
	कॉलम प्रतिशत	71.4	68.9	—
कॉलम कुल	संख्या	21	177	198
	प्रतिशत	10.6	89.4	100.0

मजदूरों के बहुमत 177 ने यानी 89.4 प्रतिशत ने, ट्रेड यूनियन सदस्य और गैर-ट्रेड यूनियन सदस्य दोनों ने, साम्प्रदायिक हिंसा का समर्थन नहीं किया, 90. 2 प्रतिशत ट्रेड यूनियन से सम्बन्धित और 89.1 प्रतिशत गैर ट्रेड यूनियन मजदूरों ने हिंसा का समर्थन नहीं किया। थोड़े से प्रतिशत, कुल मजदूरों के 10.6 प्रतिशत ने हिंसा का समर्थन किया, जो दो समुदायों के बीच विवाद के इतिहास के प्रचार से बने रवैये के कारण नजर आती है।

तालिका 3.4

मन्दिर में पूजा करना

श्रेणी		*जाते हैं*	*नहीं जाते*	*पंक्ति कुल*
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	36	25	61
	पंक्ति प्रतिशत	59.0	41.0	30.8
	कॉलम प्रतिशत	37.1	24.8	—
गैर ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	61	76	137
	पंक्ति प्रतिशत	44.5	55.5	69.2
	कॉलम प्रतिशत	62.9	75.2	—
कॉलम कुल	संख्या	97	101	198
	प्रतिशत	49.0	51.0	100.0

यह पाया कि ट्रेड यूनियन के 36 सदस्य यानी 59 प्रतिशत मन्दिर जाते हैं, जबकि 61 में से 25 मजदूर मन्दिर नहीं जाते। गैर ट्रेड यूनियन मजदूरों में से 44.5 प्रतिशत मन्दिर जाते हैं और 55.5 प्रतिशत मन्दिर नहीं जाते।

तालिका 3.5

मण्डल कमीशन

श्रेणी		*समर्थन*	*विरोध*	*नहीं जानते*	*पंक्ति कुल*
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	26	32	3	61
	पंक्ति प्रतिशत	42.5	52.5	5.9	30.8
	कॉलम प्रतिशत	76.9	74.0	87.5	—
गैर ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	49	68	20	137
	पंक्ति प्रतिशत	35.8	49.2	14.6	69.2
	कॉलम प्रतिशत	65.3	68.0	87.0	—
कॉलम कुल	संख्या	75	100	20	198
	प्रतिशत	37.9	50.5	11.6	100.0

तालिका 3.5 दर्शाती है कि ट्रेड यूनियन के सदस्य व गैर सदस्य मजदूरों के 50 प्रतिशत ने मण्डल कमीशन का विरोध किया। ट्रेड यूनियन के 4.9 प्रतिशत और गैर ट्रेड यूनियन के 14.6 प्रतिशत मजदूरों ने कहा कि वे नहीं जानते कि उनको रिपोर्ट का समर्थन करना चाहिए या नहीं। इसके दो कारण हो सकते हैं। या तो ये मुद्दे के बारे में पूरी तरह नहीं जानते थे या फिर ये किसी तरफ नहीं होना चाहते थे। यद्यपि अन्य पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के अधिकतर मजदूर मण्डल आयोग के पक्ष में थे।

तालिका 3.6 के आंकड़े जाति और धर्म पर अधारित विचार की प्रवृत्ति के सामान पक्का करते हैं। अधिकतर मजदूरों का अपने जीवनयापन की दैनिक समस्याओं से मुख्य सरोकार है। वे शायद ही धर्म या धार्मिक मुद्दों की परवाह करते हैं। 9.6 प्रतिशत मजदूरों का विचार था कि धार्मिक और दैनिक जीवन की समस्याएं दोनों का बराबर महत्त्व है। वे तीनों जातियों से हैं और ट्रेड यूनियनों के सदस्य नहीं हैं। प्रतिवाद दर्शाता है कि मजदूरों का थोड़ा-सा प्रतिशत साम्प्रदायिक शक्तियों की गिरफ्त में है।

तालिका 3.6

धार्मिक मुद्दे बनाम दैनिक समस्याओं का महत्त्व

श्रेणी		महत्त्वपूर्ण	महत्त्वपूर्ण नहीं	दोनों बराबर	पंक्ति कुल
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	11	44	6	61
	पंक्ति प्रतिशत	18.0	72.1	9.8	30.8
	कॉलम प्रतिशत	44.0	28.6	31.6	—
गैर ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	14	110	13	137
	पंक्ति प्रतिशत	10.2	80.3	9.5	69.2
	कॉलम प्रतिशत	56.0	71.4	68.4	—
कॉलम कुल	संख्या	25	154	19	198
	प्रतिशत	12.6	77.8	9.6	100.0

तालिका 3.7

चुनाव प्रणाली

श्रेणी		साम्प्रदायिक पार्टी को	धर्मनिरपेक्ष पार्टी को	किसी को नहीं	पंक्ति कुल
ट्रेड यूनियनों के सदस्य	संख्या	30	29	2	61
	पंक्ति प्रतिशत	49.2	47.5	3.3	30.8
	कॉलम प्रतिशत	35.7	26.6	40.0	—
गैर ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	54	80	3	137
	पंक्ति प्रतिशत	39.4	58.4	2.2	69.2
	कॉलम प्रतिशत	64.3	73.4	60.0	—
कॉलम कुल	संख्या	84	109	5	198
	प्रतिशत	42.4	55.1	2.5	100.0

अधिकतर ट्रेड यूनियन सदस्य साम्प्रदायिक पार्टियों को वोट देते नजर आते हैं। इसी समय गैर ट्रेड यूनियन सदस्य यानी 58.4 प्रतिशत ने धर्मनिरपेक्ष पार्टियों

को वोट दिए। साम्प्रदायिक पार्टियों को वोट देना इस तथ्य का परिचायक है कि काफी ट्रेड यूनियनों के सदस्य शिवसेना यूनियनों से सम्बन्धित हैं। तो भी 198 में 109 धर्मनिरपेक्ष हैं जबकि 42.4 प्रतिशत साम्प्रदायिक हैं। जब तक उनको साम्प्रदायिक मुद्दों के अभियान से बचाया नहीं जाएगा उनकी धर्मनिरपेक्ष प्रवृत्ति धीरे-धीरे साम्प्रदायीकरण में बदल जाएगी। यह इसलिए क्योंकि धार्मिक मुद्दे आसानी से साम्प्रदायिक उन्माद में बदल जाते हैं।

तालिका 3.8

चुनाव

श्रेणी		*समस्या समाधान होगा*	*समस्या समाधान नहीं होगा*	*आंशिक समाधान होगा*	*पंक्ति कुल*
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	4	51	6	61
	पंक्ति प्रतिशत	6.6	83.6	9.8	30.8
	कॉलम प्रतिशत	30.8	30.2	37.5	—
गैर ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	9	118	10	137
	पंक्ति प्रतिशत	6.6	86.1	7.3	69.2
	कॉलम प्रतिशत	69.2	69.8	62.5	—
कॉलम कुल	संख्या	13	194	16	198
	प्रतिशत	6.6	85.4	8.1	100.0

यह महत्त्वपूर्ण है कि 85 प्रतिशत मजदूर सोचते हैं कि यदि चुनावों के बाद भारतीय जनता पार्टी सत्ता में आई तो उनकी समस्याओं का कोई समाधान नहीं होगा। इनमें से 83.6 प्रतिशत ट्रेड यूनियन के सदस्य हैं और 86.1 प्रतिशत ट्रेड यूनियन के सदस्य नहीं हैं। 6 प्रतिशत मजूदरों का विचार है कि यदि आने वाले चुनाव में भारतीय जनता पार्टी चुनाव जीत जाती है तो उनकी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। यह थोड़ी-सी संख्या भारतीय जनता पार्टी के रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद मुद्दे के प्रचार से प्रभावित है।

तालिका 3.9

मुसलमान श्रमिकों को उद्योग में आने से रोकना

श्रेणी		सही	गलत	पंक्ति कुल
ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	9	52	61
	पंक्ति प्रतिशत	14.8	85.2	30.8
	कॉलम प्रतिशत	36.5	30.1	—
गैर ट्रेड यूनियन सदस्य	संख्या	16	121	137
	पंक्ति प्रतिशत	11.7	88.9	69.2
	कॉलम प्रतिशत	64.2	69.9	—
कॉलम कुल	संख्या	25	173	198
	प्रतिशत	12.6	87.4	100.0

173 मजदूरों यानी 87.4 प्रतिशत मजदूरों ने मुसलमान मजदूरों को उद्योगों में घुसने से रोकने की निन्दा की। दंगों में इतनी हिंसा और मौतों के बावजूद भी 12.6 प्रतिशत मजदूरों ने विचार प्रकट किए कि मुसलमान मजदूरों को उद्योगों में न घुसने देना उचित था। इसका कारण राजनीतिक पार्टियों का साम्प्रदायिक प्रचार है।

निष्कर्ष

यह माना जाता है कि रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद विवाद ने लोगों की चेतना को साम्प्रदायिक कर दिया है। इसी मान्यता के तहत हमने औद्योगिक मजदूरों पर साम्प्रदायिक दंगों के प्रभाव को देखने के लिए यह अध्ययन किया। जैसा कि हमारे अध्ययन के निष्कर्ष संकेत करते हैं कि यह शुभ लक्षण हैं कि अधिकतर हिन्दू मजदूरों के दिमाग उस हद तक साम्प्रदायिक नहीं हुए जिस हद तक माना जा रहा था।

अधिकतर औद्योगिक मजदूरों का मानना है कि राम का जन्म-स्थान ठीक उसी जगह पर हुआ था, जहां बाबरी मस्जिद खड़ी थी। यह उनके धार्मिक विश्वास को दर्शाता है क्योंकि वे अपने क्षेत्र के मन्दिर में जाते हैं। केवल थोड़ी-सी संख्या पूर्वाग्रही है। अपने इस विश्वास के बावजूद कि श्रीराम का जन्म ठीक उसी स्थान पर हुआ था जहां बाबरी मस्जिद खड़ी है, अधिकतर मजदूरों के मन में दूसरे धर्मों के प्रति आदर भाव है। यह इस तथ्य से निष्कर्ष निकलता है कि विशाल संख्या में मजदूर बाबरी मस्जिद के गिराने और साम्प्रदायिक हिंसा के विरुद्ध थे। विभिन्न जातियों और धर्मों के अधिकांश औद्योगिक मजदूरों ने साम्प्रदायिक हिंसा का समर्थन

नहीं किया। ट्रेड यूनियन या गैर-ट्रेड यूनियन के मजदूर मुसलमान मजदूरों को उद्योगों में घुसने न देने के विरुद्ध थे। आमतौर पर मजदूर रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद जैसे धार्मिक मुद्दों की परवाह नहीं करते। उनका मुख्य सरोकार अपनी दैनिक जीवन की समस्याओं से है।

यह हैरानी पूर्ण नहीं है कि अधिकांश अनुसूचित जाति के मजदूर मण्डल कमीशन की रिपोर्ट को लागू करने के पक्ष में थे। यह रिपोर्ट अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए थी क्योंकि इसने उनके लिए 27 प्रतिशत आरक्षण लागू किया। 20 प्रतिशत अन्य पिछड़ी जातियों के प्रतिवादियों ने मण्डल कमीशन की इस रिपोर्ट का विरोध किया। यह दर्शाता है कि वे रिपोर्ट के फायदों के प्रति जागरूक नहीं थे।

इस सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकला कि अधिकतर औद्योगिक मजदूरों में राजनीतिक चेतना व्याप्त है। अधिकतर प्रतिवादियों के रुझान से पता चलता है कि राजनीतिज्ञों द्वारा साम्प्रदायिक मुद्दों के माध्यम से राजनीतिक प्रचार अभियान मजदूरों के साम्प्रदायीकरण करने में प्रभावी नहीं हुआ था।

आम जनता में साम्प्रदायिक उन्माद पैदा करने के लिए राजनीतिज्ञों ने साम्प्रदायिक मुद्दों का इस्तेमाल किया। इसलिए सुझाव यह है कि प्रत्येक राजनीतिज्ञ को साम्प्रदायिक मुद्दों के प्रचार के लिए कानूनी ढंग से रोका जाना चाहिए। तब तक आम जनता को साम्प्रदायीकरण का शिकार होने से रोकने के लिए राजनीतिक शिक्षा देना जरूरी है।

परिशिष्ट I

भारत में साम्प्रदायिक दंगों में मौत 1950–1994

वर्ष	घटनाओं की संख्या	मरे					में मरे				घायल					में घायल				गिरफ्तार				कुल
		हि	मु	पु	अ	कु	पुगो	छु	अत	कु	हि	मु	पु	अ	कु	पुगो	छु	अत	कु	हि	मु	अ	कु	
1950	1	16	34	–	1	51	–	–	–	–	110	146	–	–	256	–	–	–	–	1339	166	154	1659	1966l
1961	1	–	–	–	–	55	–	–	14	14	–	–	–	–	158	–	–	–	–	–	–	–	1003	1230
1962	1	–	14	–	–	14	–	–	14	14	–	–	–	–	64	–	–	–	–	–	–	–	–	92
1964	2	–	–	–	7	638	56	–	–	56	–	53	5	4	763	11	–	–	11	1	–	–	–	1169
1967	4	1	2	–	–	176	3	–	–	3	20	–	142	–	422	–	–	–	–	–	–	–	1000	1601
1968	7	–	–	–	–	62	3	3	–	6	–	–	–	–	92	–	–	–	–	–	–	–	1133	1293
1969	3	–	–	–	–	431	26	–	–	26	11	–	–	–	11	–	–	–	–	–	–	–	2381	2849
1970	5	–	19	–	–	145	1	–	19	20	–	–	–	–	7	7	–	–	7	–	–	–	–	179
1972	2	–	–	–	–	23	5	–	–	5	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	28
1973	1	–	–	–	–	9	–	–	–	–	–	–	–	–	40	–	–	–	–	–	–	–	600	649
1974	1	–	–	–	–	10	–	–	–	–	–	–	–	–	300	–	–	–	–	–	–	–	–	310
1978	5	–	11	–	–	43	10	3	3	16	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	59
1979	5	–	–	–	–	–	192	–	–	–	–	–	–	–	531	–	–	–	–	–	–	–	1215	1938
1980	11	–	2	3	–	172	7	–	19	26	–	–	–	–	7	–	–	–	–	–	–	–	1	206
1981	2	–	–	–	–	75	–	–	–	–	–	–	–	–	100	–	–	–	–	–	–	–	782	957
1982	20	–	–	–	–	1	1	–	–	1	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	600	602
1984	26	11	–	4107	3341	32	–	–	127	32	–	–	–	–	11	–	–	11	11	–	–	–	–	3395

1985	1	–	6	–	–	43	6	–	8	14	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	57
1986	8	14	–	–	–	121	–	–	13	13	–	–	97	–	200	–	–	97	–	–	–	–	–	334
1987	4	72	110	–	–	372	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	572
1989	1	–	–	–	–	100	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	100
1990	6	35	–	–	–	1301	–	–	–	–	–	–	–	–	4000	–	–	–	–	–	–	–	4001	9302
1991	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	7500	–	–	7500	7500
1992	13	–	800	–	–	1215	–	–	–	–	–	–	–	–	500	–	–	–	–	3000	–	–	8000	14,215
1993	3	–	–	–	–	315	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	3700	4015
1994	1	–	–	–	–	1	–	–	1	1	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–	2
1994	7	11	12	6	–	40	10	18	–	28	48	25	23430			55	2	–	57	11	59	–	420	975
	134	149	998		7115	8906	150	6	218	247	141	199	244	4	11,662	18	0	108	29	11,840	366	154	33,776	54,620

स्रोत :

1. कीसिंग्स कंटम्प्ररी आर्काइव्स कीसिंग्स पब्लिकेशन, लन्दन डब्ल्यू एल एम 5 आर एन 1948-50, 1961-64, 1967-72, 1974-75, 1978-75, 1978-82, 1984-90, 1993-94
2 डाटा इण्डिया (1994), वैशाली कुलकामी एण्ड एस. हरिहरन
3. हुबली ड्रिस्टीब्यूटर्स 'एन इन्वेसिटीगेटिव रिपोर्ट', प्रकाशित द्वारा द सेण्टर फॉर स्टडी ऑफ सोसाइटी एण्ड सेक्यलूरिज्म 'सेक्यूलर डेमोक्रेसी' वाल्यूम XIII, नं. 6 सितम्बर 1994, असगर अली इंजीनियर बंगलौर डिस्टरबेंसस–लिंगवस्टिक ऑर कम्यूनल?'' प्रकाशित द्वारा सेन्टर ऑफ स्टडी सोसाइटी एण्ड सेक्यूलरिज्म, द हिन्दू, 17-19, अक्तूबर 1994, और द टाइम्स ऑफ इण्डिया, अक्तूबर 19, 1994

नोट–

हि = हिन्दु, मु = मुस्लिम, पु = पुलिस, अ = अन्य, पुगो = पुलिस गोलीबारी में, छु = छुरेबाजी में, अत = अन्य तरीके से, कु = कुल

●●●

अनुक्रमणिका

प्रमुख कृतियाँ

द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ इस्लाम

इस्लाम एंड मुस्लिम्स–क्रिटिकल पर्सपेक्टिव्स

द बोहराज़

इस्लाम एंड इट्स रेलिवेंस टु आवर एज

राइट्स ऑफ विमेन इन इस्लाम

कम्युनलिज़्म एंड कम्युनल वायलेंस इन इंडिया

इथनिक प्राब्लम इन साउथ एशिया

असगर अली इंजीनियर : जन्म—10 मार्च, 1940। सिविल इंजीनियरिंग में स्नातक; हिंदी, उर्दू, मराठी, गुजराती, फारसी, अरबी एवं अंग्रेजी भाषाओं का ज्ञान। बड़ी संख्या में पत्र–पत्रिकाओं में खोजपूर्ण लेख एवं विवेचनात्मक टिप्पणियां। तमाम देशों जैसे अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, स्विटज़रलैंड, जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन, आस्ट्रिया, थाइलैंड, मलेशिया, यमन, इंडोनेशिया, श्रीलंका, पाकिस्तान, मिश्र, हांगकांग इत्यादि में भाषण के लिये आमंत्रित। **सम्मान**—1993 में कलकत्ता विश्वद्यालय ने डी.लिट. प्रदान की; भारत सरकार का राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भावना पुरस्कार; महाराणा मेवाड़ फाउंडेशन का हकीम खां सूर पुरस्कार; न्यू लीडर्स कमेटी चेन्नई द्वारा अन्तर्धामिक सद्भावना पुरस्कार। *इंडियन जर्नल ऑफ सेक्युलरिज़्म* का सम्पादन।

इतिहास बोध प्रकाशन